वर्ष 39, अंक-3, मई-जून, 2016

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698	वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
महानिदेशक	:	23378103 23370471	भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23370633
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228	अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1 अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370391
प्रशासन अनुभाग	:	23370834	अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849	हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3388, 3347

गगनांचल

मई–जून, 2016

प्रकाशक

सी. राजशेखर

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली

संपादक

नम्रता कुमार

उप-महानिदेशक

सहायक संपादक

डॉ. पूजा खिल्लन

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002

ई-मेल : ddgnk.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	: ₹	500
	यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	: ₹	1200
	यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि. नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

हमारे अभिलेखागार से
बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की
गतिविधियों की एक झलक 4

लेख

ऋतुराज वसन्त 10
डॉ. दादूराम शर्मा

आगरा किला–जो खुद को कभी न बचा सका 14
राजकिशोर शर्मा 'राजे'

दलित प्रश्न और रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि 16
राजीव कुमार

जन-जन की भाषा हिन्दी : बिन बैसाखी 19
बद्रीनारायण तिवारी

संस्कृत के अमर ग्रन्थों के अनुवाद एवं अनुसृजन से
हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में संजीवनी शक्ति 21
प्रो. जी. गोपीनाथन

भारतीय राज्यव्यवस्था में किसान 24
डॉ. जयपाल सिंह

हिन्दी (राजभाषा) का सम्मान राष्ट्रभाषा बनाने में ही है 26
आर. स्वामीनाथन

सुविख्यात शैलीकार : रामवृक्ष बेनीपुरी 28
राजेन्द्र परदेसी

सांस्कृतिक विरासत 31
डॉ. हीरालाल बाछोतिया

कुछ प्राचीन प्रमुख सूर्य मन्दिर 33
प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा

विश्व में हिन्दी 35
आचार्य डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त

चित्रलेखा : सवाल पाप और पुण्य का 38
प्रो. कैलाशनारायण तिवारी

राष्ट्रीय जागरण के प्रेरणापुंज : पंडित माखनलाल चतुर्वेदी 42
डॉ. कल्याण प्रसाद वर्मा

आचार्य शिवपूजन सहाय : ललित निबन्ध के विशिष्ट शैलीकार 44
डॉ. अनिल कुमार

लौट रहा है रेडियो का स्वर्ण युग 47
सुभाष सेतिया

अंगिका लोकगीतों की सांस्कृतिक चेतना 51
प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय

साक्षात्कार

कोई भी पुरस्कार कवि का मूल्यांकन नहीं कर पाता (ज्ञानपीठ पुरस्कार कवि केदारनाथ सिंह से राजेन्द्र उपाध्याय की बातचीत) 56
राजेन्द्र उपाध्याय

रपट

पत्रकार कवि स्व. श्री विद्यासागर वशिष्ठ की 32वीं पुण्यतिथि पर आयोजित गोष्ठी 59
सतीश सागर

कहानी

भरण-पोषण 61
डॉ. मोहन तिवारी 'आनंद'

फरिश्ता 66
प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा

उसका विद्रोह 70
किशन लाल शर्मा

किट्टू 72
विभा खरे

व्यंग्य-कथा

शरीफ आदमी 76
जसविंदर शर्मा

लघु कथाएँ

दवा/सौदा/प्रार्थना/भूख/छह रुपए 78
सुनील गज्जाणी

चलो अच्छा हुआ 80
डॉ. शोभा अग्रवाल 'चिलबिल'

कविता/गीत/गज़ल/दोहे/नवगीत

गीत 81
डॉ. कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'

मन पर दोहे 82
योगेश्वर नारायण शर्मा

डोगरी कविताएँ—पल/उदासी 82
प्रो. ललित मगोत्रा (हिन्दी अनुवाद : कृष्ण शर्मा)

राष्ट्रीय एकता को समर्पित मुक्तक/गज़ल 83
चाँद शेरी

गज़ल 84
राजेन्द्र तिवारी

कविताएँ—कुरुक्षेत्र/पड़ाव/दस्तक/पेच/जीवन संध्या 85
विमल सहगल

कविताएँ—क्योंकि मैं तदर्थ हूँ/मुझे आपत्ति है/लाल बत्ती 86
डॉ. सरोज कुमारी

कविताएँ—यात्रा पथ के सोपान/सूर्य दृष्टि/जीवन का क्रय-विक्रय 87
स्वदेश भारती

हाँफ उठे अवरोध 87
डॉ. राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर'

पुस्तक-समीक्षा

ज्ञानवृद्ध गुरु की खेती-बारी 88
डॉ. वेदप्रकाश सिंह

प्रेरणास्रोत मनीषी की आत्मकथा 93
बल्लभ डोभाल

संपादक की ओर से

भारत बहुभाषिक एवं बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है। जब हम राष्ट्र की बात करते हैं तो राष्ट्र एक व्यापक शब्द है जिसमें भाषा, संस्कृति, भौगोलिक क्षेत्र के साथ नागरिक जिम्मेदारी अभिन्न अंग है। हमारा अतीत भी सिर्फ व्यतीत कालखण्ड न होकर वर्तमान की वह जड़ें हैं जिससे हमने संस्कार ग्रहण किए हैं। लेकिन हम विकास के प्रवाह में अपने अतीत से कटते जा रहे हैं और सिर्फ वर्तमान पर केन्द्रित होते जा रहे हैं। हालांकि वर्तमान में जीना कोई बुरी बात नहीं है। आज जिस परिप्रेक्ष्य में हम जीवनयापन कर रहे हैं वहाँ धन का अपहरण दिनोंदिन हो रहा है। लेकिन इससे भी दुखद है कि हमारी आत्मा का भी अपहरण हो रहा है। संवेदनहीनता इसका जीता-जागता उदाहरण है। हमारे आज के परिवेश में भौतिक चीजों का महत्त्व बढ़ा है किन्तु मनुष्य का महत्त्व घटता जा रहा है। यह चिंतनीय एवं विचारणीय है। हमारे देश की विभूतियों ने ईश्वर के द्वारा निर्मित सबसे पवित्र संसाधन मनुष्य को माना है। लेकिन दुर्भाग्य है कि आज पूँजी ब्रह्म के रूप में और मुनाफा मोक्ष के रूप में स्वीकृत हो रहा है। सब कुछ अपने अस्तित्व में है लेकिन मनुष्य के चरित्र और कार्यप्रणाली में गिरावट हो रही है। बात हमने अतीत की की थी तो संभवतः जयंतियाँ इस देश में हम इसलिए मनाते हैं ताकि अपने देश के पूर्वजों के कर्मों से ऊर्जा के साथ-साथ एक जीवनदृष्टि प्राप्त कर सकें। भारत अब तक विकास के पथ पर अग्रसर इसलिए है क्योंकि अपने अतीत से वह अब तक निरपेक्ष नहीं रहा है।

साहित्य जीवन-दर्शन है और इस जीवन-दर्शन को समझने के लिए 'गगनांचल' के इस अंक में शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, माखनलाल चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा जैसी साहित्यिक विभूतियों के रचनात्मक अवदानों के साथ-साथ किसानी जीवन की समस्या, पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी का संस्मरण, वरिष्ठ पत्रकार रामबहादुर राय से बातचीत, ज्ञानपीठ प्राप्त कवि केदारनाथ सिंह से साक्षात्कार और कुछ लघु कथाएँ, कविताएँ, खासकर युवा पीढ़ी के प्रतिनिधियों की रचनाशीलता को प्रमुख प्रदान की गई है। पाठकों की प्रतिक्रियाएँ हमारी असली पूँजी एवं ताकत हैं।

(नम्रता कुमार)
उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

हमारे अभिलेखागार से

बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की गतिविधियों की एक झलक

प्रो. जी.ई.जी. कैटलिन (यू.के.) द्वारा व्याख्यान (23 जनवरी, 1963)

एम.ए.जे. बाउर (नीदरलैंड) द्वारा चित्र-प्रदर्शनी (20-28 दिसम्बर, 1963)

सुश्री मार्गरेट केन्यात्ता (केन्या) का दौरा (दिसम्बर 1963 - जनवरी 1964)

सुश्री मार्गरेट केन्यात्ता (केन्या) का दौरा (दिसम्बर 1963 - जनवरी 1964

सोवियत मुस्लिम प्रतिनिधियों का दौरा (अप्रैल, 1964)

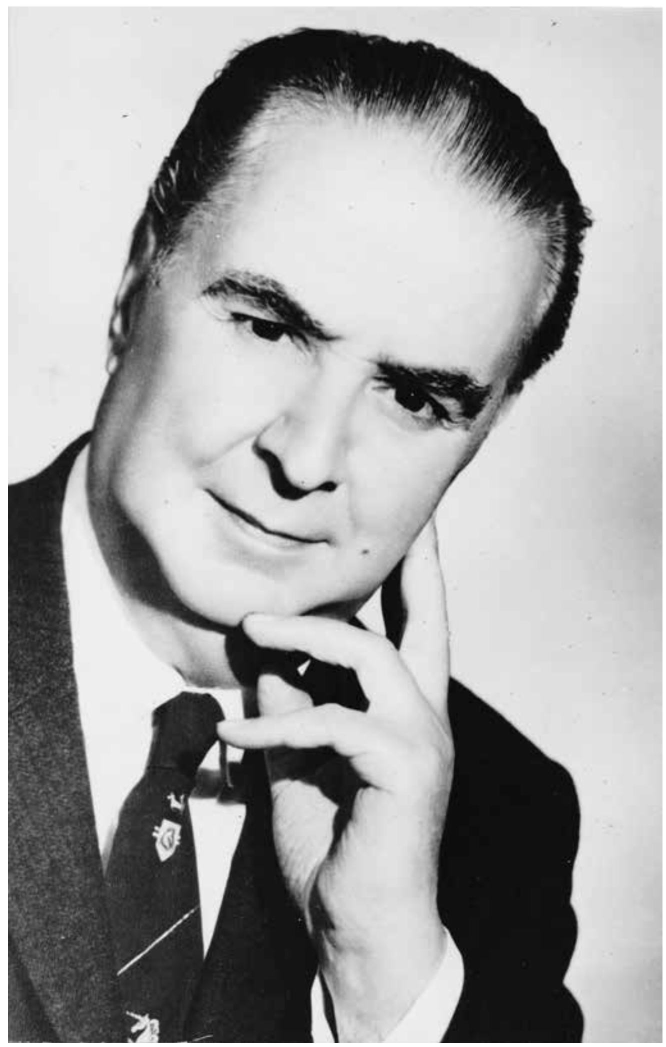

श्रीमती एवं श्री सी. मोवेल्ली (मैक्सिको) द्वारा संगीत-गायन (अक्टूबर 16, 1964)

ऋतुराज वसन्त

डॉ. दादूराम शर्मा

डॉ. दादूराम शर्मा को कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन द्वारा 'भोज पुरस्कार' के साथ ही अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। इनकी अभी तक तीन कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। 300 से अधिक ललित, विचारात्मक एवं शोध निबन्धों के साथ-साथ एकांकी, कहानियाँ, कविताएँ एवं व्यंग्य प्रकाशित हो चुके हैं और प्रकाशित हो रहे हैं।

''शिशिर के पतझड़ से अपर्णा हुई वनस्पतियों का तप पूर्ण हुआ। रक्त किसलयों में उनका यौवन प्रस्फुटित पुष्पों में उनके हृदय का सहज उल्लास फूट पड़ता है, सुरभित सुमनों के हार लेकर वे सज-धजकर स्वागत के लिए प्रस्तुत हैं, कोकिल पंचम स्वर में प्रशस्ति गीत गा रहा है, गुंजारते मधुकर मंत्रोच्चार कर रहे हैं, शीतल मंद सुगंध पवन पंखा झलते हुए चल रहा है और चहचहाते पक्षियों की जयध्वनि से आकाश मुखरित हो रहा है क्योंकि ऋतुराज वसन्त अपने सहचर कुसुमायुध कामदेव के साथ पदार्पण कर रहा है। उत्तरायण होते सूर्य की किरणों में सुखद उष्णता आ गई है, प्रकृति के कण-कण से और वृक्ष-वल्लरियों के पोर-पोर से अल्हड़ यौवन की आह्लादक मादकता छलकी पड़ रही है, जिसके प्रभाव से सभी चेतन प्राणी मदविह्वल हो उठे हैं धवल चंद्रिका के भार से बोझिल पवन धीर-धीरे चल रही है—

''चाँदनी के भारन दिखात उनयो-सो,
चन्द्रगंध ही के भारन बहत मंद-मंद पौन''

महाप्राण 'निराला' के शब्दों में—

''लता-मुकुल-हार गंध-भार
भर बही पवन मंद-मंदतर।
जागी नयनों में वन-यौवन की माया!
सखि, वसन्त आया।।''

वसन्त में रात और दिन का परिमाण बराबर हो जाता है, शिशिर के शीत का प्रकोप शांत हो जाता है और गर्मी का प्रारम्भ न हो पाने से वसन्त ऋतु सर्वाधिक सुखद होती है। वसन्त ऋतुराज कहलाता है। यह यौवन का, सौन्दर्य का, आकर्षण का, आह्लादकता और मादकता का पर्यायवाची है। जब यह आता है तो वृक्ष पुष्पित होकर वातावरण में अपनी हंसी और सुगन्ध बिखेरने लगते हैं, सरोवरों में कमल खिल जाते हैं, नवयुवतियों का यौवन उफान लेने लगता है, वायु सुवासित हो जाती है, ठंड न पड़ने से संध्याकाल सुखद हो जाता है और दिन सुंदर और सुखद लगने लगते हैं। इस प्रकार वसन्त में सब कुछ चारू से चारूतर हो जाता है—

''द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखा प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः
सर्वप्रिये चारूतरं वसन्ते।।''
—'ऋतुसंहार' (कालिदास)

पद्माकर के अनुसार—भौरों की गुंजार में पहले की अपेक्षा कुछ अधिक मादक विशिष्टता आ जाती है, तरुणों के अल्हड़ यौवन में आकर्षक उफान आ जाता है और पक्षियों के कलरव में भी विशेष मादक मिठास भर जाती है—

''औरे भांति कुजन में गुंजरत भौर-भीर
औरे डौर झौरन में बौरन के ह्वै गए।
कहैं पद्माकर सु औरे भांति गलियान,
छलिया छबीले छैल औरे छबि छ्वै गए।।
औरे भाँति विहग समाज में आवाज होति,
अबै ऋतुराज के न आज दिन द्वै गए।
औरे रस, औरे रीति, औरे राग औरे रंग,
औरे तन और मन औरे वन ह्वै गए।।''

कालिदास के अनुसार—शीतलहर से मुक्त सुखदायक पवन मंजरियों से लदी आम की डालियों को हिलाता हुआ, कोकिल के मधुर स्वर को दिशाओं में फैलाता हुआ और लोगों के हृदयों को हरता हुआ बहने लगता है—

''आकम्पयन् कुसुमिताः सहकारशाखाः
विस्तारयन् परभृतस्य वचांसि दिक्षु।
वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां
नीहारपातविगमात् सुभगो वसन्ते।।''

मदिर गंधभार से अलसाए कुंजसमीर को बिहारी मतवाले हाथी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। गुंजार करती भ्रमर-पंक्ति जिसके गले में टुनुन-टुनुन करती घंटियाँ हैं और जिसके कपोलों से मधु (पुष्पों का रस) रूपी मद जल चू रहा है—

''रनित भृंग घंटावली झरत दान मधुनीर।
मंद-मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज समीर।।''

तो कभी सुदूर दक्षिण देश से आने वाला मलयानिल उन्हें थकित बटोही के रूप में दिखाई देता है, जिसके शरीर से मकरंद कण रूपी पसीने की बूँदें चू रही है और जो प्रत्येक पेड़ के नीचे विश्राम कर-करके अपनी थकान मिटाता हुआ धीरे-धीरे उत्तर दिशा में अपने मंतव्य की ओ बढ़ रहा है—

''चुवत स्वेद मकरंद कन
तरु-तरु तर विरमाय।
आवत दच्छिन देस तैं
थकित बटोही बाय।।''

कविवर देव ने सूचित किया है कि वसन्त को वृक्ष के पलने पर किसलयों की कोमल शय्या पर सुलाया जाता जाता है, रंग बिरंगे फूलों का झवला उसके शरीर की शोभा में चार चाँद लगा देता है, पवन उसके पलने को झुलाता है, मोर अपने मनोहर नृत्य द्वारा और शुक सम्भाषण करके उसका मनोरंजन करते हैं, कोयल सुरीले स्वर में उसे लोरी सुनाती है कंजकली रूपी नायिका (नागरी महिला) लतारूपी साड़ी का पल्ला अपने सिर पर डालकर उस बच्चे की डीठ (नजर) उतारती है और गुलाब प्रातःकाल अपने प्रस्फुटित होते हुए पुष्पों से चटाक की ध्वनि करके (चुटकी बजाकर) उसे जगाता है—

''डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झंगूला सोहे तन छवि भारी दै।''

''पवन झुलावै, केकी कीर बहरावै देव
कोकिल हलावै हुलसावै करतारी दै।
पूरित पराग सौं उतारो करै राई लोन,
कंजकली नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन पहीपजू को बालक वसन्त ताहि,
प्रातहि जगावै गुलाब चटकारी दै।।''

रसिक गोविन्द भी ''नजर उतारने'' का उल्लेख करते हैं—

''मुखरित पल्लव फूल
सुगंध परागहि झारत।
जुग मुख निरखि विपिन
मनु राइलोन उतारत।।''

कालिदास वसन्त को आक्रामक योद्धा के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसने आम्र मंजरियों के तीखे तीर और भ्रमरावली का धनुष लेकर कामी जनों पर हमला बोल दिया है—

''प्रफुल्ल-चूतांकुर-तीक्ष्ण-सायकः
द्विरेकमाला-विलसद्धनुर्गुणः।
मनांसि बेद्धुं सुरत-प्रसंगिनां
वसन्त योद्धा समुपागतः प्रिये।।''

तो बेनी कवि उसे कामदेव रूपी अंग्रेज सम्राट का दुर्दान्त आक्रमणकारी सेनापति बतलाते हैं, जो बंदूक-तोप आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर विरहिणी अबलाओं पर टूट पड़ा है—

''घायनि कुसुम केसू किसलय कुमेदान,
कोकिला कलापकारी कारतूस जंगी है।
तौपें विकरारें जे बेपात भई डारैं,
दारूधूरि धारैं और गुलाब गोला जंगी है।।
बेनीजू प्रवीन कहैं मंजरी संगीन पौन,
बाजत तंदूर भौंर तूर तासु संगी है।
बैरी बलवान विरहीन अबलान पर,
आयो है वसन्त कम्पू मदन फिरंगी है।।''

मैथिल-कोकिल विद्यापति ने ऋतुराज के ठाट-बाट का बड़ा ही मनोहर और आकर्षक चित्र खींचा है—वसन्त राजा के समान बड़े ठाट-बाट के साथ वनस्थली में प्रवेश करता है, वृक्ष उसके लिए नव पल्लवों का सिंहासन प्रस्तुत करते हैं, माथे पर कुसुमों का छत्र लगा देते हैं, आम्र मंजरियाँ मुकुट बन जाती हैं, मोर स्वागत में नाचने लगते हैं, पक्षीगण स्वस्ति वाचन करने लगते हैं, कुसुम परागों का श्वेत वितान (चँदोवा) तन जाता है, कुंदलता की पताकाएँ फहराने लगती हैं, गुलाब उसका तरकस और अशोक पल्लव बाण बन जाते हैं—

''नृप-आसन तव पीठल पात।
कांचन कुसुम छत्र धर माथ।।
मौलि रसाल मुकुल भेल ताय।
सम्मुख कोकिल पंचम गाय।।
सिखिकुल नाचत अलिकुल जंत्र।
द्विजकुल आन पढ़ आसिस मंत्र।।
चंडातप उड़े कुसुम पराग।
मलय पवन सह भेल अनुराग।।
कुंदकली तरु घएल निसान।
पाटल तूण असोक दल बान।।''

सेनापति ने भी वसन्त को समस्त साज-वाज के साथ प्रकृति के रंगमंच पर पदार्पण करने वाले श्रीसम्पन्न सम्राट् के रूप में प्रस्तुत किया है—

''वरन-वरन तरु फूले उपवन वन
सोई वतुरंग संग दल लहि।''
बंदी जिमि बोतल विरद वीर कोकिल है,
गुंजत मधुपगन गुन गहियत है।।
आवै आसपास पुहुपन की सुवास सोई,
सौधे कै सुगंध माँझ सने रहियत है।
शोभा को समाज 'सेनापति' सुख साज
आज आवत वसन्त ऋतुराज कहियत है।।''

रसिक गोविन्द का वसन्त तो एक दानशील राजा है—

''फूल फलन के भार डार झुकियों छवि साजै।
मनु पसारि दई भुजा देन फल पथिकन काजै।।
मधु मकरंद लुब्ध अलि मुदित मत्त मन।
विरद पढ़त ऋतुराज नृपति के मनु बंदी जन।।''

मधु-माधव (चैत्र-बैशाख) वसन्त के दो माह माने गए हैं। किन्तु वसन्त का अवतरण तो आम की मादक मंजरियों और अशोक के रक्त किसलयों और पुष्पों के साथ ''वसन्त पंचमी'' से ही हो जाता है। ऐसी कवि-मान्यता या कवि-प्रसिद्धि है कि अशोक वसन्त पंचमी के दिन सुंदरियों के महावर-रंगे रूनझुनाते नूपुरों वाले चरणों के प्रहार से पुष्पित होता है किन्तु 'कुमार सम्भव' के अनुसार भगवान शिव का तपोभंग करने के लिए कामदेव द्वारा असमय में उपस्थित किए गए वसन्तकाल में तो अशोक अपने कोमल किसलयों के साथ अपने आप सुंदरियों के सनुपूर चरणताड़न के बिना ही पुष्पित हो उठा था—

''असूतसद्यः कुसुमान्यशोकः
स्कन्धात प्रभृत्येव सपल्ल्वानि।
पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां
सम्पर्कमासिंजित-नूपुरेण।।''

अब पलाश की बारी है। पतझड़ से मृतप्राय-सी लगने वाली इसकी शाखाओं में लाल-गुलाबी पुष्पगुच्छों के रूप में नव जीवन फूट पड़ा है। यह आपाद-मस्तक मनभावन सुमनों से लद गया है। अनुराग में रंगे पलाश का रोम-रोम हँस रहा है। इसके फूलों को किंशुक कहा जाता है। ब्रजभाषा के 'केसू' और खड़ी बोली के 'टेसू' इसी के तद्भव रूप हैं। प्रकृति-प्रेमी

कवियों को किंशुक बड़े ही आकर्षक और कामोद्दीपक प्रतीत हुए हैं। कालिदास ने उन्हें आग की लपटों से उपमित किया है। किंशुकों के रक्त परिधान में सजी वन-भूमि नववधू-सी सुशोभित होने लगती है–

''आदीप्त-बह्नि-सदृशैः मरुतावधूतैः
सर्वत्र किंशुक-वनैः कुसुमावनम्रैः।''
''सद्यो वसन्तसमये हि समाचितेयं
रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमिः।।''
–ऋतुसंहार

'कुमारसम्भव' में वे इसकी द्वितीया के चन्द्र जैसी वक्राकार पंखुड़ियों को नायक वसन्त द्वारा नायिका वनस्थली के अंगों पर बनाये गये नखक्षत बतलात हैं–

''बालेन्दुवक्राण्यविकास–भावाद्
वभुः पलाशान्यतिलोहितानि।''
''सद्यो वसन्तेन समागतानां
नखक्षतानीय वनस्थलीनाम्।।''

और गीत गोविन्दम् जयदेव किंशुकदलो को युवाओं के हृदयों को विदीर्ण करने वाले कामदेव के पैने नाखूनों से उममित करते हैं– ''युवजन हृदय-विदारण-मनसिज-नखरुचि-किंशुक-जाले।'' तो जायसी के अनुसार ''कुसुम धन्वा कामदेव के तीखे तीरों से विद्ध विरहीजनों के क्षत-विक्षत अंगों से जो रक्त की धारा निकली है, उसी में डूबकर वनस्पतियों के पल्लव और पलाश के पुष्प लाल हो उठे हैं–

''पंचम विरह पच सर मारै।
रकत रोइ सगरो वन ढारै।।
बूड़ि उठे सब तरुवर पाता।
भींजि मजीठ टेसु वन राता।।''

किंशुकों के वृन्तों से जुड़ी घुंडियाँ श्यामवर्ण की होती है जिस पर लाल-लाल पखुड़ियाँ बड़ी ही फबती हैं। लगता है, जैसे किंशुकों को काले रंग में रंगकर लाल स्याही में डुबो दिया गया हो–

''लाल-लाल केसू फूलि रहे हैं विसाल संग,
श्याम रंग भेंटि मानो मसि में मिलाए हैं।''

नीचे से काले और ऊपर से लाल किंशुकों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो विरहीजनों को जलाने के लिए कामदेव ने ढेर सारे कोयले प्रज्वलित कर लिए हैं, जो आधे तो सुलगकर दहकने लगे हैं और आधे अभी सुलग नहीं पाए हैं–

''आधे अनसुलगि सुलगि रहे आधे मानो,
विरहीदहन काम क्वैला परचाये हैं।''
–'सेनापति'

नीचे की घुंडी वाले काले हिस्से की बिना सुलगे कोयले से और ऊपर के लाल दलों की दहकते अंगारों से उत्प्रेक्षा कितनी अनूठी बन पड़ी है। कहीं ये कोयले पूरी तरह प्रज्वलित हो उठे तो बेचारे विरहियों का क्या होगा? विरहिणी ब्रजांगनाएं अपने प्रियतम कृष्ण को मथुरा नगर से ब्रज की वनभूमि में लौट आने के लिए इन्हीं मादक दाहक रक्त पुष्पों से पुष्पित हो जाने के समाचार को अंतिम और अचूक संदेश के रूप में उद्यव के द्वारा प्रेषित करती है–

''ऊघो, यह सूधो सो संदेशो कहि दीजे भलो,
हमारे ह्याँ न फूले वन कुंज हैं।
किंसुक गुलाब कचनार और अनारन की
डारन पै डोलत अंगारन के पुंज हैं।।''

और उद्यव उनकी ओर से कृष्ण से मथुरा के राजकीय ऐश्वर्य को छोड़कर ब्रज चले चलने की पुरजोर सिफारिश करने लगरते हैं–

''ए ब्रज चंद चलौ किन वा
ब्रज लूकैं वसंत की ऊकन लागीं।
त्यों, पद्माकर, पैखो पलासन
पावक-सी मनौ फूंकन लागीं।।''

विद्यापति ने टेसू की प्रकृति नायिका की मांग में भरे सिंदूर से उपमित किया है–

''टेसू कुसुम सिंदूर सम भास''

और कविवर पन्त के अनुसार पुष्पित पलाश के रूप में वसन्त की समग्र कामनाएँ ही जैसे मूर्तिमान हो उठती हैं। सैकड़ों अन्य पुष्पों का सम्मिलित सौन्दर्य भी उसके कुसुम-वैभव की बराबरी नहीं कर सकता, उसने तो प्रकृति में सर्वत्र नवजीवन की ज्वाला धधका दी है–

''वर्ण-वर्ण की हरीतिमा का
वन में भरा विकास।
शत-शत पुष्पों के रत्नों की
रत्नच्छटा पलाश।
प्रकट नहीं कर सकती यह
वैभव पुष्कल उल्लास।
वर्णस्वरों से मुखर तुम्हारे
मौन पुष्प अंगार।
यौवन के नवरक्त तेज का
जिनमें मदिर उभार।।
हृदय रक्त ही अर्पित कर
मधु को अर्पण श्री
तुमने जग में आज जला दी
दिशि-दिशि जीवन-ज्वाल।।''

वसन्त में सरसों के खेत के खेत जब पीले पुष्पों से आच्छादित हो जाते हैं तो उनका नयनाभिराम सौन्दर्य मन को मोह लेता है। लगता है, धरती नववधू के समान पीली साड़ी पहन कर अपने यौवन में इठला रही हो–

''फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग।
वधू वसुधा पुलकित अंग-अंग''।
–'सुभद्रा कुमारी चौहान'

तो मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में–

''फूटा यौवन फाड़ प्रकृति की
पीली-पीली चोली''।
–'साकेत'

प्रकृति में वृक्ष-लताओं का मिलन-दृश्य उपस्थित हो जाता है। नवयौवना लताएं अपने प्रियतम वृक्षों से स्वयमेव लिपट जाती हैं और मंद पवन से हिलते पल्लव रूपी मधुर अधरों से प्रेमालाप करने लगती हैं–

''पर्याप्त-पुष्प-स्तवक-स्तनाभ्यः
स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्र-
शाखाभुजबन्धनानि।।''
–'कुमारसम्भव' (कालिदास)

महाप्राण निराला के अनुसार गुंजारते भ्रमर और 'कुहू-कुहू' करती कोयल मानो उच्च स्वर में इनके मोहकप्रणय-व्यापार का अनुमोदन करने लगते हैं–

''किसलय-वसना नव वयलतिका, मिली
मधुर प्रिय -डार तरुपतिका
मधुपवृन्द वन्दी पिक स्वर नभ सरसाया।
सखि वसन्त आया।।''

महादेवी वर्मा भी मादक वसन्त रजनी को आमंत्रण देने लगती हैं, जो तारों को अपनी वेणी में गूँथकर चन्द्रमा को शिरका आभूषण (शीशफूल) बनाकर और धवल चन्द्रिका का घूँघट डाले अपनी बाँकी चितवन से ओस बिंदुओं के मोती बरसाती हुई क्षितिज से धीरे-धीरे धरा पर उतरती है–

''धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी।
तारकमय नव बेणीबंधन,
शीश फूल शशि का कर नूतन,
रशिमवलय सित घन अवगुंठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से
अपनी। पुलकती आ वसन्त रजनी।।''

वसन्त के संदर्भ में कवियों ने अपनी मादक गंध से कोकिल को मद-विह्वल कर सुरीली तान छेड़ने को विवश कर देने वाली आम्रमंजरियों की महिमा गायी है, रक्त पुष्पों से लदे पलाश, अशोक और कर्णिकार ने उनकी दृष्टि को लुब्ध और उनके मन को मुग्ध किया है। किन्तु छूट गया है वन्य वृक्ष मधूक (महुआ), जो सतपुड़ा के वनवासियों की सम्पत्ति है। इसके फूल महुआ कहलाते हैं, ये मधुररस से लबालब भरे होते हैं। इनसे मदिरा बनाई जाती है और वनवासियों के भोजन की भी आपूर्ति होती है। इनकी मदिर गंध सारे वन-प्रदेश को मादकता से भर देती है। चैत्र के प्रभातों में मधूक पुष्प प्रचुर मात्रा में झरझर कर पेड़ों के नीचे की भूमि को ढँक देते हैं। सूर्योदय होने पर वनवासी महिलाएँ और बच्चे इन हल्के पीले फूलों को बीनकर टोकरियों में भरकर घर ले आते हैं। महुओं के फूलते ही सतपुड़ा के प्रकृतिजीवी वनवासियों का सहज उल्लास समूह नृत्यों और समूह गीतों में फूट पड़ता है। कविवर भवानी प्रसाद मिश्र ने इसी अनकहे पृष्ठ को खोला है–

''इन वनों के खूब भीतर,
चार मुर्गे चार तीतर,
पालकर निश्चिवंत बैठे,
विजन वन के मध्य पैठे,
झोपड़ी पर फूस डाले,
गोंड़ तगड़े और काले
जबकि होली पास आती,
सरसराती घासगाती और महुए से
लपकती मत्त करती वास आती।
गूँज उठते ढोल इनके,
गीत इनके गोल इनके।
सतपुड़ा के घने जंगल।
ऊँघते अनमने जंगल।।''

अपने सीमित किंवा नगण्य संसाधनों में जीवन का भरपूर रस लेने वाले इन वनवासियों की तुलना में समग्र सुख-सुविधाओं के बीच रहकर भी कमिओं का रोना रोते रहने वाले सभ्य शहरी मानव कितने दयनीय हैं।

अपने परिवार के पेट की आग बुझाने के लिए दिन-रात काम को खटते धूमिल के 'मोचीराम' को भले ही वासंती प्रकृति में अपने व्यवसाय की प्रतिच्छाया दीख पड़ती हो किन्तु वसन्त उसके ह्रदय के अज्ञात कोने को गुदगुदाए बगैर नहीं रहता और अनजाने में ही वसन्त की सहज मादकता उसके क्रिया-कलापों को प्रभावित कर जाती है–

''अब आप वसन्त को ही लो–
यह दिन को ताँत की तरह तानता है।
पेड़ों पर लाल-लाल पत्तों के हजारों सुखतल्ले
धूप में सीझने के लिए लटकाता है।
सच कहता हूँ, उस समय राँपी की मूठ को
हाथ में सँभालना मुश्किल हो जाता है।।
मन किसी झुँझलाये हुए बच्चे-सा काम पर
आने से बार-बार इनकार करता है।''
–'मोचीराम' कविता

प्रकृति के ध्वंस पर विकसित हुई है आधुनिक नगर सभ्यता जब प्रकृति ही नहीं तो उसे उल्लास और अनुराग से आपूरित करने वाला वसन्त नगरों के परिवेश में कैसे मिलेगा? वसन्त के आने और जाने का आभास शहरी व्यक्ति को कैसे हो पाएगा? रामविलास शर्मा के शब्दों में–

''वीरान हो चुके हैं सब बगीचे और
जिवह कर डाले गये हैं सारे के सारे दरख्त।
विकास के नाम पर–उग आया है शहर में
सीमेन्ट का बियावान जंगल अमलतास,
आम और पलाश की तो बात ही क्या,
दिखाई नहीं देतीं दूर-दूर तक
सरसों की झूमती कतारें तक।।
भला बताओ, अब कैसे सोचें-समझें बेचारे
लोग कि कब आकर गुजर गया चुपचाप
इस शहर से कमबख्त वसन्त?''

आज अपने दैनंदिन जीवन की जटिल समस्याओं में बुरी तरह उलझे आम आदमी को प्रकृति में होने वाले इन आकर्षक ऋतुपरिवर्तनों पर दृष्टि डालने का अवकाश ही कहाँ है? लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या और उसके लिए फैलते हुए बस्तियों के सैलाब और कारखानों के विकराल जाल प्रकृति को लीलते जा रहे हैं। बेचारे वसन्त को अब पैर टिकाने के लिए जगह की तंगी हो रही है। वह लँगड़ाते हुए आता है और आहें भरते हुए चला जाता है। किन्तु तथाकथित सभ्य मानव ने बड़ी जल्दी अपनी गलती का एहसास कर लिया है और प्रकृति के पर्यावरण को संतुलित करने के लिए वृक्षारोपण में संलग्न हो गया है। अब वह दिन दूर नहीं जब धरती फिर वृक्ष-लताओं से हरी-भरी हो जाएगी और ऋतुराज पूर्ववत्‌राजसी ठाठ-बाट के साथ पदार्पण करेगा।

महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी
जिला–सिवनी (म.प्र.) 480661

आगरा किला—जो खुद को कभी न बचा सका

राज किशोर शर्मा 'राजे'

आगरा दुर्ग की विशालता व सुदृढ़ता के कारण इसकी गणना देश के प्रमुख दुर्गों में होती है मगर अकबर द्वारा अपनी राजधानी में निर्मित यह दुर्ग कभी भी अपनी रक्षा न कर सका। इसे संयोग भी कह सकते हैं और इसका दुर्भाग्य भी।

लेखक इतिहास एवं समाजशास्त्र आदि विषयों में एम.ए. हैं। तवारीख-ए-आगरा, अश्क, दर्द, बुद्धिमान, भारत में अंग्रेज आदि पुस्तकों के रचनाकार हैं।

भारत किलों का देश है। मध्यकालीन इतिहास एक प्रकार से किलों का इतिहास है। उस वक्त विजय तब तक पूर्ण नहीं मानी जाती थी जब तक शत्रु का किला हाथ न आ जाए। इसके लिए महीनों और कभी-कभी वर्षों तक किलों पर घेरा पड़ा रहता था। देश के दुर्गम दुर्गों में असीरगढ़, चित्तौड़गढ़, कालिन्जर, चुनार, दौलताबाद (देवगिरी), रोहितासगढ़ आदि के किलों का प्रमुखता से उल्लेख मिलता है।

भारत में मुगल सत्ता स्थापित होने पर सबसे पहले विशाल व सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण मुगल सत्ता के वास्तविक संस्थापक अकबर द्वारा अपनी राजधानी आगरा में सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में करवाया गया जिसमें 35 लाख रुपए व्यय हुए। इसके बाद अकबर ने लाहौर, इलाहाबाद आदि स्थानों पर भी दुर्गों का निर्माण करवाया।

लाल पत्थरों से निर्मित आगरा का किला जमुना नदी के किनारे, सत्तर फुट ऊँची प्राचीरों से घिरा है। प्राचीरों से तोपों व बन्दूकों द्वारा प्रहार करने की बेहतरीन व्यवस्था है। किले की सुरक्षा हेतु उसमें भारी भरकम बुर्जों के निर्माण के साथ-साथ अकबर द्वारा किले के चारों ओर गहरी खाई भी बनवाई गई थी परन्तु अकबर का यह दुर्गम विशाल किला कभी भी शत्रु से अपने स्वामी की रक्षा न कर सका।

सन् 1657 में शाहजहाँ की बीमारी के दौरान शहज़ादों के मध्य छिड़े उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब ने किले पर घेरा डाला और किले में पानी की आपूर्ति बन्द कर दी तो किले में निवास कर रहे शाहजहाँ को पुत्र के आगे किले का समर्पण करना पड़ा। रमजान 1068 हिजरी (8 जून 1658) को औरंगजेब के ज्येष्ठ पुत्र सुल्तान मोहम्मद ने किले पर कब्जा करके अपने पितामह शाहजहाँ को बन्दी बना लिया।[1] किला शाहजहाँ को बचा न सका।

इसके बाद 27 मई 1719 (20 रजब, 1331 हिजरी) को जब सैय्यद बंधुओं ने रफी-उद-दौला को दिल्ली में गद्दी पर बैठाया तो आगरा के किले में बन्द औरंगजेब के पौत्र व शहज़ादे अकबर के पुत्र निकूसियर ने मित्रसेन नामक अपने सलाहकार के परामर्श पर स्वयं को बादशाह घोषित करते हुए अपने नाम का खुतवा पढ़वा लिया। तब दिल्ली से सैय्यद बंधु अली हुसैन खाँ ने आगरा आकर किले को घेर लिया और तोपों से गोले बरसाए। किले को

भारी नुकसान पहुँचा और मात्र तीन दिन में किला अली हुसैन खाँ के हाथों में आ गया। निकूसियर बन्दी बना लिया गया। मित्रसेन ने आत्महत्या कर ली। किले में अली हुसैन खाँ को नूरजहाँ को बहुमूल्य आफताबा, सोने के काम हुए पन्ने जड़ा एक तकिया व शाहजहाँ द्वारा मुमताज की कब्र पर चढ़ाई जाने वाली बहुमूल्य मोतियों की चादर के साथ बड़ी मात्रा में धन भी हाथ लगा।[2]

मई, सन् 1761 के अन्तिम सप्ताह में भरतपुर के शासक सूरजमल ने आगरा के किले को घेरने के लिए अपनी सेना भेजी और शीघ्र ही स्वयं भी आगरा की ओर चल पड़ा। मात्र एक सप्ताह में 12 जून, 1761 को किला उसके कब्जे में आ गया। किले से प्राप्त सम्पत्ति व तोपों आदि को सूरजमल द्वारा भरतपुर व डीग के किले में भेज दिया गया।[3] आगरा दुर्ग पर किसी गैर मुस्लिम द्वारा कब्जा किए जाने का यह पहला अवसर था।

जाटों के नियंत्रण में दुर्ग तेरह वर्ष रहा। नाममात्र के मुगल सम्राट शाह आलम के वजीर नजफ खाँ ने फरवरी 1774 को किले की घेराबन्दी करके उस पर पाँच हजार गोले बरसाए। किले का एक बुर्ज ढह गया। किला पुनः एक बार अपनी रक्षा न कर सका। 18 फरवरी, 1774 को किले पर नजफ खाँ का अधिकार हो गया।[4]

सन् 1785 में माधवराव सिंधिया ने जब अपने सिपहसालार राया जी पाटिल को, मुगल सम्राट शाह आलम की अनुमति से, आगरा किले को हस्तगत करने को भेजा तो किलेदार शुजादिल खाँ ने उसे किला सौंपने से इन्कार कर दिया। फलस्वरूप किले पर आक्रमण किया गया।

संदर्भ–

1. मुन्तखब-उल-लुबाब, जिल्द 2, पृष्ठ 32, लेखक–खाफी खाँ।
2. भारत का इतिहास, जिल्द 7, पृष्ठ 347, लेखक–इलियट एवं डाउसन।
3. महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृष्ठ 200, लेखक–डॉक्टर पी.सी. चान्दावत।
4. मुगल साम्राज्य का पतन, जिल्द 3, पृष्ठ 67, लेखक–जदुनाथ सरकार।

126, नारायण विहार, सिकन्दरा,
आगरा-282007 (उ.प्र.)

रचनाकारों से अनुरोध

- **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि ई-मेल से भेज रहे हों तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।**
- **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।**
- **रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रेषित करें।**
- **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।**
- **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।**
- **रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।**
- **आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया ddgnk.iccr.nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।**

दलित प्रश्न और रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि

राजीव कुमार

लेखक हैदराबाद युनिवर्सिटी से सम्बद्ध हैं। लेखन में रुचि। आधुनिक विमर्शों जैसे दलित विमर्श आदि का इतिहास की दृष्टि से मूल्यांकन एवं विश्लेषण।

हिन्दी आलोचना पर किसी भी तरह की गंभीर चर्चा रामचन्द्र शुक्ल के बिना संभव नहीं है। जैसा कि हम जानते हैं बालकृष्ण भट्ट, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्मित और विकसित आलोचना को रामचन्द्र शुक्ल ने पहली बार व्यवस्थित रूप प्रदान किया। साहित्य के साथ आलोचना के गंभीर सामाजिक-सांस्कृतिक दायित्व का बोध सर्वप्रथम रामचन्द्र शुक्ल ने विकसित किया।

आज जिस तरह से दलित विमर्श पर विचार किया जा रहा है उस तरह से रामचन्द्र शुक्ल ने निश्चित रूप से विचार नहीं किया है। इसके बावजूद निर्गुण-मत, कबीर, रैदास, दादू आदि पर विचार करते हुए, इससे संबंधित विषयों पर अपने कुछ विचार अवश्य प्रकट किए हैं। उन्होंने अपने इतिहास-ग्रन्थ के अंतर्गत पूर्व-मध्यकाल भक्तिकाल (सं. 1375-1700), प्रकरण-एक में लिखा है, ''इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति रस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। उनके द्वारा यह बहुत ही आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव

रामचन्द्र शुक्ल

का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया। उनका 'निर्गुणपंथ' चल निकला जिसमें नानक, दादू, मलूकदास आदि अनेक संत हुए।''[1]

इस उद्धरण से हम समझ सकते हैं रामचन्द्र शुक्ल कबीर की महत्ता को स्वीकार तो करते हैं, परंतु उनका रुख बहुत सकारात्मक नहीं है। इसी कारण वह जोर देकर लिखते हैं, 'उनका निर्गुणपंथ चल निकला'। कबीर ने कोई पंथ चलाने का निर्णय किया था या नहीं इस पर विचार करने की आवश्यकता है परंतु निम्न श्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाने के कार्य को रामचन्द्र शुक्ल कबीर की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि मानते हैं। आज भी दलित विमर्श कबीर से अपनी परंपरा को इसलिए जोड़ पाता है क्योंकि कबीर निम्न श्रेणी की जनता (जाहिर है उसमें अधिकांशतः दलित और दमित जाति एवं वर्ग के लोग आते हैं) में आत्मगौरव का भाव जगा पाने में सक्षम हैं।

रामचन्द्र शुक्ल कबीर के इस ऐतिहासिक योगदान के महत्व को इसलिए स्वीकारते हैं क्योंकि इसी कारण निम्न श्रेणी की जनता सगुण भक्ति की तरफ उन्मुख हुई। उनकी दृष्टि में भक्ति का ऊँचा सोपान संभवतः यही था। रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, ''इन संतों के ईश्वर ज्ञान स्वरूप और प्रेम स्वरूप ही रहे, धर्म स्वरूप न हो पाए। ईश्वर के धर्म स्वरूप को लेकर, उस स्वरूप को लेकर, जिसकी रमणीय अभिव्यक्ति लोक की रक्षा और रंजन में होती है, प्राचीन वैष्णव भक्ति मार्ग की राम भक्ति शाखा उठी। कृष्ण भक्ति शाखा केवल प्रेम स्वरूप ही लेकर नई उमंग से फैली।''[2] स्पष्ट है कि राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा की तुलना में उन्हें निर्गुण भक्ति शाखा कम महत्वपूर्ण लगती थी।

रामचन्द्र शुक्ल के विश्लेषण में अंतर्विरोध स्पष्ट दिखाई पड़ता है। वे निर्गुण मत के महत्व को अस्वीकार भी नहीं कर पाते और उनके सामाजिक अवदान को स्वीकार भी नहीं कर पाते। निर्गुण भक्ति धारा का विरोध करते हुए भी उनके महत्व को रेखांकित करना नहीं भूलते। यथा ''यह सामान्य भक्ति मार्ग एकेश्वरवाद का एक अनिश्चित स्वरूप लेकर खड़ा हुआ, जो कभी ब्राह्मणवाद की ओर ढलता था और कभी पैगंबरी खुदावाद की ओर। यह 'निर्गुण पंथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी ओर ले जाने वाली बसे पहली प्रवृत्ति जो लक्षित हुई वह ऊँच-नीच और

जाति-पांति के भाव का त्याग और ईश्वर की भक्ति के लिए मनुष्य मात्र के समान अधिकार का स्वीकार था।''[3]

अर्थात् उस समय के समाज में जाति के आधार पर भेदभाव मौजूद था। नीची समझी जाने वाली जातियों को जाति के आधार पर अपमान और अन्याय का शिकार होना पड़ता था। इसका नकार निर्गुण पंथ के संत कवि कर रहे थे परंतु रामचन्द्र शुक्ल के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं था। निर्गुण मत को मानने वाले कवियों का चिंतन उन्हें धर्मस्वरूप नहीं प्रतीत होता था। इसलिए इनका महत्व लोक-रक्षक राम एवं लोक-रंजक कृष्ण की भक्ति करने वालों की तुलना में कम महत्व का था। इसके बावजूद कबीर की कविता की शक्ति और उसके सामाजिक महत्व को स्वीकार करते हैं। कबीर के बारे में विचार करते हुए वे लिखते हैं, ''उपासना के बाह्य स्वरूप पर आग्रह करने वाले और कर्मकांड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लों दोनों को उन्होंने खरी-खोटी सुनाई और राम रहीम की एकता समझा कर हृदय को शुद्ध प्रेममय करने का उपदेश दिया। देशाचार और उपासना विधि के कारण मनुष्य-मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है उसे दूर करने का प्रयास उनकी वाणी बराबर करती रही।''[4] परंतु इसकी अगली ही पंक्ति में लिखते हैं, ''यद्यपि वे पढ़े-लिखे न थे पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य-चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं।''[5] कबीर का पढ़ा-लिखा न होना उन्हें निराश करता है तो कबीर की प्रतिभा उन्हें चमत्कृत करती है। इसके बावजूद उनके विश्लेषण से पता चलता है कि बाह्याचारों और कर्मकांडी पंडितों-मुल्लाओं की कबीर द्वारा की जाने वाली आलोचना उन्हें उत्साहित करती थी। मनुष्य-मनुष्य के बीच का कृत्रिम विभेद रामचन्द्र शुक्ल को कतिपय प्रीतिकर नहीं था। उनकी इस दृष्टि को दलित-दृष्टि न भी कहें तो मानवतावादी दृष्टि तो कहा ही जा सकता है। दलित अस्मिता का प्रश्न भी मूलतः मानवतावाद पर ही आधारित है।

रामचन्द्र शुक्ल की निर्गुण पंथ की आलोचना शिक्षित जनता और शिक्षित कवियों पर आकर ठहर जाती है। इसे हम एक बड़े आलोचक की अपनी सीमा भी मान सकते हैं। कबीर का पढ़ा-लिखा न होना उन्हें जहाँ दुःखी एवं निराश करता है वहीं सुंदरदास का शिक्षित होना ही, उनकी नजर में सुंदरदास को निर्गुण पंथ का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि बना देता है। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा, ''निर्गुण पंथियों में यही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्हें समुचित शिक्षा मिली थी और जो काव्यकला की रीति आदि से अच्छी तरह परिचित थे। अतः इनकी रचना साहित्यिक और सरस है।... संत तो ये थे ही पर कवि भी थे।''[6] किसी रचना के साहित्यिक और सरस होने को प्रमाणित करने वाली रामचन्द्र शुक्ल की यह कसौटी थोड़ी विवादपूर्ण है। इसी आधार पर वे न सिर्फ कबीर को बल्कि समस्त निर्गुण-मार्गी कवियों को ही नकारे जाने का प्रस्ताव रखते हैं, ''जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है निर्गुण-मार्गी संत कवियों की परंपरा में थोड़े ही ऐसे हुए हैं, जिनकी रचना साहित्य के अंतर्गत आ सकती है। शिक्षितों का समावेश कम होने से इनकी वाणी अधिकतर सांप्रदायिकों के ही काम की है, उसमें मानव जीवन की भावनाओं की वह विस्तृत व्यंजना नहीं है जो साधारण जन समाज को आकर्षित कर सके।''[7]

इस तरह से तो रामचन्द्र शुक्ल की मानवतावादी दृष्टि पर भी सवाल खड़ा हो सकता है परंतु उनके एक अत्यंत महत्वपूर्ण परंतु किंचित अचर्चित लेख 'जाति-व्यवस्था' का संज्ञान यहाँ पर जरूरी प्रतीत हो जाता है। 'जाति-व्यवस्था' नामक लेख रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों का संग्रह 'चिंतामणि' भाग-4 में पहली बार शामिल होता है। यह मूल रूप से अंग्रेजी में लिखा गया है एवं अपूर्ण भी है। अनुमानित तौर पर 1924 ई. में लिखे गए इस लेख में रामचन्द्र शुक्ल 'जाति-व्यवस्था' की कई बुनियादी खामियों की तरफ इशारा करते हैं। इस लेख की पहली पंक्ति है, ''जाति संस्था ने प्रजाति की शुद्धता को सुरक्षित रखने का असफल प्रयत्न किया है।''[8] जाति-व्यवस्था की अभिशप्तता को रेखांकित करने का प्रयास जिस तरह से आधुनिक दलित आलोचकों ने किया है, लगभग उसी स्वर में रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, ''जाति-व्यवस्था के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इसने मनुष्य का स्तरों और श्रेणियों में रूढ़ विभाजन कर दिया है।''[9] लगभग चुनौती देते हुए स्वर में वह इस सोपानबद्ध जाति-व्यवस्था का विरोध करते हुए जाति व्यवस्था के समर्थकों की यह कहकर भर्त्सना करते हैं कि समर्थक-सदस्य इस रूढ़ व्यवस्था को ठीक नहीं कर सकते। मनुष्य-मनुष्य का यह विभेद, रामचन्द्र शुक्ल को तनिक भी स्वीकार्य नहीं है। तभी तो वह हर जाति द्वारा अपने से नीची जाति ढूँढने की अभिशप्त रीति के सूत्रपात का जिम्मेदार ब्राह्मणवाद को मानते हैं, ''कुलीन और ऊपर से दैवीय कहे जाने वाले ब्राह्मण अन्य सबको हेय दृष्टि से देखते हैं। क्रमशः प्रत्येक जाति अपने से नीची जाति को तुच्छ समझती है।''[10] अपने से तथाकथित नीची जाति को तुच्छ समझने की प्रवृत्ति ही जाति व्यवस्था एवं ब्राह्मणवाद को खाद-पानी देने एवं मजबूती से जिलाए रखने का कार्य करती है। ''इस प्रकार जाति-व्यवस्था हार्दिक सहयोग या प्रतिक्रिया, प्रेम, विश्वास और परस्परिक प्रभाव या आचरण की स्वतंत्रता के अवरोध का कारण बनती है।''[11] रामचन्द्र शुक्ल सच्चे राष्ट्रवादी थे जिनका राष्ट्रवाद किसी अंधी या भ्रांतिमूलक अवधारणा पर अवलम्बित नहीं था बल्कि जीवित लोगों एवं उनके सुख-दुःख को केन्द्र में रखकर चलता था। तभी तो वे 'जाति-व्यवस्था' को समुचित रूप से समाप्त करने की अनिवार्यता पर जोर देते हैं, ''इसे (जाति-व्यवस्था) यदि समाप्त

नहीं किया गया तो भारतीय संस्कृति और शिष्टता, राष्ट्रभक्ति और देशभक्ति की मृत्यु निश्चित है।''[12]

आजादी प्राप्ति के बाद उनकी यह बात ज्यादा अच्छी तरह से सच साबित हुई। रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि में मनुष्य केन्द्र में है। तभी तो वह समझ सके कि जाति-व्यवस्था कर्म पर आधारित न होकर जन्म के वैशिष्ट्य पर आधारित है। ''वे कर्म के आधार पर नहीं जन्म के वैशिष्ट्य से ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं और जब तक वे इस वैशिष्ट्य का उपयोग करते हैं तब तक किसी अन्य के वैशिष्ट्य या अच्छाई के बारे में बिल्कुल नहीं सोचते।''[13] इस संदर्भ में उनका यह विचार कि हर व्यक्ति के लिए उसकी जाति ही पहली और अन्तिम सच्चाई है, समसामयिक वास्तविकता प्रतीत होती है। उन्होंने लिखा, ''ऐसे व्यक्ति मनुष्य-मनुष्य के मध्य बन्धुत्व की भावना से रहित होकर अपनी ही जाति या वर्ग की उन्नति में रुचि लेते हैं। उनका आदर्श वाक्य है—हमारी जाति प्रथम हमारी जाति अंतिम।''[14] मिथ्या विभाजनों पर अवलम्बित इस भ्रांतिपूर्ण एवं अन्यायी व्यवस्था के कर्णधारों की राजनीति को भी वे बखूबी समझते हैं। उन्होंने लिखा है, ''वे निर्धन पददलितों की कीमत पर खुद को समृद्ध करते हैं, आनन्द लेते हैं और अज्ञानी जनसमूह की सामान्य भ्रांतियों को बढ़ाते हैं। इससे भी अधिक ये पंडित अनुशासन या शासन के नाम पर उनके लिए हर प्रकार की गालियाँ और अनाप शनाप बकवास रचते हैं।''[15]

रामचन्द्र शुक्ल की यह व्यावहारिक आलोचना उन्हें दलित विमर्श के आज के आलोचकों की कतार में शामिल कर देती है। सामान्य तौर पर ऐसा तेवर उनकी भाषा में कम ही दिखाई पड़ता है। असल में वे जाति के दंश को राष्ट्र-दंश के रूप में देखते थे। वे चाहते थे कि उनका देश भी सभ्यता के उच्चतर सोपानों को हासिल करे परंतु जाति व्यवस्था सबसे बड़ी बाधा के रूप में सम्मुख खड़ी थी। ''...सभ्यता के अभियान में योरोप और अमेरिका के साथ सम्मानपूर्वक टिके रहने के लिए भारत अपना उचित अंश प्राप्त करे। मार्ग में बाधा की तरह उपस्थित होकर जाति व्यवस्था हमें जीवन की आधुनिक अवस्थाओं की इन आवश्यकताओं के साथ सहज अनुकूलन नहीं करने देती।''[16]

आज तक जाति व्यवस्था का दंश हमें ऐसे किसी अभियान में शामिल नहीं होने देता। सामाजिक प्रगति की दृष्टि से हम लगातार पिछड़ते गए हैं। क्योंकि ''एक अच्छा समाज समग्रता में सुसंबद्ध होता है—विभाजित या उप-विभाजित रूप में नहीं, जैसा कि वर्तमान में है। यहाँ कुछ बुद्धिमान व्यक्तियों को दी गई सत्ता और उनके द्वारा उसका दुरुपयोग, कर्तव्य और उत्तरदायित्व के भाव को, यथार्थ और सौंदर्य के संपूर्ण बोध को मंद कर देता है फिर पाश्चात्य सभ्यता की बराबरी कैसे हो?''[17] रामचन्द्र शुक्ल की यह बात आज भी शब्दशः सत्य प्रतीत होती है।

संदर्भ–

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 36
2. वही, पृ. सं. 36
3. वही, पृ. सं. 36
4. वही, पृ. सं. 44
5. वही, पृ. सं. 44
6. वही, पृ. सं. 48-49
7. वही, पृ. सं. 51
8. ओमप्रकाश सिंह (संपादक), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली-4, पृ. सं. 202
9. वही, पृ. सं. 202
10. वही, पृ. सं. 202
11. वही, पृ. सं. 202
12. वही, पृ. सं. 202
13. वही, पृ. सं. 202
14. वही, पृ. सं. 202
15. वही, पृ. सं. 203
16. वही, पृ. सं. 203
17. वही, पृ. सं. 203

हॉस्टेल-एमएच-ई (एनेक्सी), कमरा नं. 15,
यूनिवर्सिटी ऑफ हैदराबाद, गाचिडोवली,
हैदराबाद-500046

जन-जन की भाषा हिन्दी : बिन बैसाखी

बद्रीनारायण तिवारी

जाने-माने विद्वान एवं लेखक। समसामयिक एवं सामाजिक मुद्दों पर लेखन।

भारतवर्ष एक ऐसा देश है जो विभिन्नताओं से पूर्ण है। प्रकृति की अपार सम्पदा से समृद्ध भी है। इसके कारण प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान की इन प्रस्तुत पंक्तियों में भारत का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन कराते हैं—

''यदि मुझे समग्र विश्व पर यह जानने के लिए दृष्टि डालनी पड़े कि वह कौन सा देश है जिसे प्रकृति ने अपनी सम्पूर्ण सम्पदा, शक्ति और सुन्दरता प्रदान की है, कुछ अंशों में जो पृथ्वी पर स्वर्ग ही है तो मैं भारत की ओर इंगित कर दूंगा। यदि मुझसे पूछा जाए कि इसके उपहारों को पाकर आकाश के किस भाग के नीचे मानव मस्तिष्क ने पूर्णतः विकास किया है और जीवन की महानतम समस्याओं पर विचार करके उनमें से कुछ का समाधान खोजा है और जिन्होंने प्लेटो तथा काण्ट का अध्ययन किया है, उनका ध्यानाकर्षण किया है तो मैं भारत की ओर इंगित कर दूंगा। और यदि मुझे अपने से ही पूछना पड़े कि हम यहाँ योरोप में जो यूनानी, रोमन एवं सीमेटिक जाति यहूदियों के विचारों पर ही पले हैं, कहाँ के साहित्य से अपने आन्तरिक जीवन को अधिक पूर्ण अधिक विस्तृत सार्वभौमिक तथा वास्तव में मानुषिक बना सकते हैं, ऐसा जीवन जो केवल उसी जीवन के लिए न हो बल्कि एक नवल परिवर्तन से युक्त सनातन जीवन से मुक्त हो तो मैं फिर भारत की ओर इंगित कर दूंगा।'' ये शब्द जर्मन विद्वान मैक्समूलर की ''इण्डिया कैन टू टीच अस'' में लिखे हैं।

संविधान के भाग 17 की धारा-343(1) में वर्णित है—''संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।'' संविधान सभा के दौरान हिन्दी पर बहस 12 सितम्बर, 1949 को अपराह्न 4:00 बजे से आरम्भ हुई और 14 सितम्बर, 1949 को सायं समाप्त हुई। हिन्दी को राजभाषा मानने के पश्चात् तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था—''आज पहली बार ऐसा संविधान बना है जिसमें हमने एक भाषा रखी है जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी। हम केन्द्र में जिस भाषा का प्रयोग करेंगे, उससे हम एक दूसरे के निकटतर आते जाएंगे।''

हिन्दी की लोकप्रियता के लिए भारत के इन सभी राज्यों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का समर्थन किया था—उत्तराखण्ड, जम्मू कश्मीर, उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, तामिलनाडु, बिहार, छत्तीसगढ़, मणिपुर, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, हरियाणा, झारखण्ड, सिक्किम, चण्डीगढ़, गोवा, पंजाब, अण्डमान निकोबार, उड़ीसा, मेघालय।

इसके अतिरिक्त विश्व के अनेक ऐसे देश हैं जहाँ भारतीय मूल के अप्रवासी नागरिकों की आबादी उस देश की आबादी की 40 प्रतिशत या उससे अधिक है। वहाँ हिन्दी एक सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है। उनमें ये देश आते हैं—मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गयाना, त्रिनीडाड, टुबेगो, पाकिस्तान, बंगलादेश, भूटान, नेपाल। अब जीवन रक्षक दवा की अंग्रेजी कम्पनियां भी हिन्दी में दवा का नाम देने लगी हैं।

स्वाधीनता के 68 वर्षों के बाद भी हिन्दी जो जन-जन की भाषा है। इसी भाषा में हिन्दी सिनेमा ने बालीवुड का रूप लिया है जो अमरीका के हालीवुड के बाद विश्व में दूसरे स्थान पर है। भारत की हिन्दी निकट भविष्य में जिस प्रकार चीन जैसे विशाल देश में अपने पैर पसार रही है उसके पीछे भूमण्डलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत हो रहा है। इसी प्रकार अमेरिका में दो करोड़ से अधिक भारतीय मूल के लोग प्रवास करते हैं। वहाँ हिन्दी विकास हेतु अनेक संस्थाएँ भी सक्रिय हैं। अमेरिका के लगभग 75 विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई हो रही है, जबकि वहाँ के हॉर्वर्ड, पेन, मिशिगन, वेल आदि विश्वविद्यालयों में हिन्दी का शिक्षण हो रहा है। अमेरिका में हिन्दी लेखकों एवं कर्मियों की बड़ी संख्या है जो विभिन्न गोष्ठियाँ तथा कवि-सम्मेलन भी आयोजित करते रहते हैं।

संसार के अनेक विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षण के साथ ही शोध कार्य करने पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त होती है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग होने के अलावा अध्ययन-अध्यापन की भी समुचित व्यवस्था है। इनमें निम्नांकित देशों में अमेरिका,

कनाडा, क्यूबा, मेक्सिको, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, हॉलैण्ड, बेल्जियम, आस्ट्रिया, पोलैण्ड, चेक, हंगरी, रोमानिया, बुलगारिया, उक्रेन, स्विटजरलैण्ड, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, म्यामार, चीन, जापान, क्रोशिया, पाकिस्तान, दक्षिण अफ्रीका, बंगलादेश, तजाकिस्तान, तुर्की, आस्ट्रेलिया, थाईलैण्ड, दक्षिण कोरिया, मंगोलिया, उज्बेकिस्तान, अफगानिस्तान, अर्जेन्टीना, इक्वेडोर, अल्जेरिया, इण्डोनेशिया, ईरान, इराक, यूगांडा, ओमान, ग्वाटेमाला, जमाइका, जांबिया, तंजानिया, कजाकिस्तान, कतर, कुवैत, केन्या, क्रोट डी इबोइरे, नाइजीरिया, निकारागुआ, न्यूजीलैण्ड, पनामा, पेरू, पैरागुवे, फिलिपींस, बहरीन, ब्राजील, मलेशिया, मिस्र, मेडागास्कर, मोजांबिक, मोरक्को, सउदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, सिंगापुर, सूडान, सेशेल्स, स्पेन, हांगकांग, होंडूरास, मौरिटानिया, यमन, लीबिया, लेबनान, बेनेजुएला आदि में भी कम ज्यादा हिन्दी जानने वाले लोग हैं।

संसार में सबसे बड़े जनतंत्र की भाषा के रूप में हिन्दी को ही मान्यता प्राप्त हुई है। हिन्दी बोलने-समझने वाले को विश्व के सबसे बड़े भाषा-भाषियों के रूप में मान्यता प्राप्त है किन्तु मानसिक रूप से भारतीय मानसिक दासता के कारण अंग्रेजी को सिरमौर भाषा मान बैठे हैं।

सर्वाधिक प्रश्न न्यायपालिका के सर्वोच्च न्यायालय आदि में यही उठता है कि देश की न्यायपालिका में अंग्रेजी के अलावा किसी भाषा के शब्द नहीं हैं। जबकि स्वाधीनता के अड़सठ वर्षो में इलाहाबाद उच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति प्रेम शंकर गुप्त ने लगभग साढ़े चार हजार निर्णय हिन्दी में देकर एक कीर्तिमान स्थापित किया। इसके लिए अमेरिका के न्यूयार्क में आयोजित आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में सम्मानित भी किए गए। इलाहाबाद उच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति श्री महावीर सिंह ने भी न्यायमूर्ति गुप्त जी की परम्परा पर आधारित हिन्दी में निर्णय देना प्रारम्भ किया। बिहार उच्च न्यायालय पटना में न्यायमूर्ति श्री बी.एल. यादव ने देश की प्राचीन संस्कृत भाषा में निर्णय देकर अंग्रेजी मिथक को तोड़ा। विडम्बना की बात है कि अंग्रेजी भाषा के समर्थकों से जब इन प्रश्नों का उत्तर देने को कहते हैं कि रूस का उच्चतम न्यायालय रूसी भाषा में निर्णय देता है। जापान का उच्चतम न्यायालय जापानी भाषा में ही सम्पूर्ण कार्य करता है। जर्मनी, इजरायल और फ्रांस अपनी जर्मन, हिब्रू, फ्रेंच भाषाओं का, भारत के सन्निकट नेपाल भी अपने न्यायालय तथा शासकीय भाषा नेपाली और देवनागरी लिपि में गर्वपूर्वक करता है। नेपाल की जो गाड़ियाँ भारत में कार्यरत हैं उनकी नाम पट्टिकाओं में देवनागरी लिपि में गाड़ी का नम्बर लिखा रहता है। इतना अवश्य स्वाधीनता के बाद जनपदीय निचली अदालतों में हिन्दी भाषा में निर्णय देने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है।

शताब्दियों पूर्व हिन्दी साहित्य खड़ी बोली के आदि कवि अमीर खुसरों की रेखांकित पंक्तियाँ कितनी प्रेरणादायक हैं–

''तुर्क हिन्दुतानियम मन हिन्दी गोयम जवाब। शक्र, मिस्री न दारम, क़ज़ अरब गोयम सुखन।।''

यानि मैं हिन्दुस्तान का तुर्क हूँ और हिन्दी में उत्तर देता हूँ। मेरे पास मिश्री की मिठास नहीं कि मैं अरबी में बात करूँ।

'मानस संगम', महाराज प्रयाग नारायण मंदिर, शिवाला, कानपुर-208001 (उत्तर प्रदेश)

संस्कृत के अमर ग्रन्थों के अनुवाद एवं अनुसृजन से हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओ में संजीवनी शक्ति

प्रो. जी. गोपीनाथन

प्रो. जी. गोपीनाथन, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व कुलपति रह चुके हैं। सम्प्रति : अध्ययन एवं स्वतंत्र लेखन।

संस्कृत दुनिया की ऐसी प्राचीन भाषा है जिसमें वेद, पुराण, काव्य, आयुर्वेद, ज्योतिष, योग आदि वैज्ञानिक शाखाओं, उपनिषद्, भगवद्गीता जैसे दार्शनिक ग्रन्थों, पंचतन्त्र जैसे कथा साहित्य एवं ज्ञान-विज्ञान के अन्य अनेक विषयों से सम्बन्धित मौलिक साहित्य मौजूद है। यह साहित्य प्राचीन भारत की समुन्नत संस्कृति की उपज है। मध्यकाल के सामन्ती युग तक आते-आते संस्कृत के इन ग्रन्थों के बारे में जानने वाले लोग बहुत ही दुर्लभ हो गए थे। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन भारतीय नवजागरण का पहला चरण है जिसमें उपनिषद्, रामायण, भगवद्गीता, भागवत जैसे ग्रन्थों में प्रतिपादित अध्यात्म विज्ञान को सर्वसुलभ बनाने के लिए एक जनांदोलन हुआ। भक्त कवियों ने भारत की जन भाषाओं में इन ग्रन्थों का अनुवाद और अनुसृजन प्रस्तुत किया। अनुसृजन एक तरह की पुनर्रचना है जिसमें सौन्दर्यपरक नयी व्याख्या एवं नव-निर्माण होता है। इस प्रक्रिया के द्वारा ही भारत की प्रान्तीय भाषाओं में श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण हुआ और ज्ञान और भक्ति की धारा जनता के बीच बह निकली।

आधुनिक भारत में पश्चिमी ढंग की शिक्षा के प्रसार, मुद्रण की सुविधा, बाइबिल का अनुवाद, शेक्सपियर के नाटकों एवं यूरोपीय कथासाहित्य के रूपान्तर से आधुनिक भारतीय साहित्य को एक नवजीवन प्राप्त हुआ। लेकिन जैसा कि सर्वविदित है, आधुनिक भारत का नवजागरण राजा राममोहन राय द्वारा उपनिषद् ग्रन्थों का अनुवाद और व्याख्या, स्वामी दयानन्द द्वारा वेदों के सार रूप में 'सत्यार्थ प्रकाश' का प्रकाशन, कालिदास, भवभूति, भास आदि के नाटकों की खोज और प्रान्तीय भाषाओं में अनुवाद, बौद्ध ग्रन्थों के रूपान्तर, टैगोर जैसे महान कवियों द्वारा उपनिषदीय दर्शन की व्याख्या और अनुसृजन, स्वामी विवेकानंद की वेदान्त और योग दर्शन की व्याख्याएँ, तिलक, गाँधी, श्री अरविंदो द्वारा भगवद्गीता की व्याख्याएँ जैसे ऐतिहासिक महत्व के कार्यों द्वारा संभव हुआ।

बौद्ध काल में पाली सामान्य बोलचाल की भाषा थी, इसलिए श्री बुद्ध ने अपने विचारों को पाली के माध्यम से प्रचारित किया। श्री शंकराचार्य के समय में विद्वानों के बीच आदान-प्रदान के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था। मध्यकाल तक आते-आते प्रादेशिक भाषाओं के बीच सम्पर्क के लिए एक सामान्य भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग होने लगा था। इसलिए शंकराचार्य के बाद भक्ति आन्दोलन के जो आचार्य दक्षिण से उत्तर की ओर गए, जैसे वल्लभाचार्य, रामानुज संप्रदाय के परवर्ती आचार्य, रामावत संप्रदाय के आचार्य रामानन्द और निम्बार्क, मध्व आदि सम्प्रदायों के आचार्यों ने हिन्दी भाषा का सहारा लेकर भक्ति का प्रचार-प्रसार भारत में सर्वत्र किया। ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, कबीर, सूर, तुलसी, रैदास, मीरा आदि की हिन्दी कविताओं ने भक्ति आन्दोलन को जनता के बीच फैलाने में मदद की। आधुनिक युग में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन, आर्य समाज के द्वारा हिन्दी को अपना प्रचार-माध्यम बनाना, गाँधीजी द्वारा प्रवर्तित हिन्दी प्रचार आन्दोलन आदि के कारण वैचारिक आदान-प्रदान एवं सांस्कृतिक नवोत्थान में हिन्दी भाषा ज्यादा सहायक हुई। संस्कृत केवल विद्वानों तक सीमित रह गयी जबकि सामान्य जनता की सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार-प्रसार बढ़ता गया। गाँधीजी द्वारा तुलसीदास के रामचरितमानस को महत्व दिए जाने के कारण दक्षिण की भाषाओं में भी तुलसी रामायण के अनुवाद निकले। मानस के मलयालम अनुवादक महाकवि वेण्णिक्कुलम ने अपने अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि गाँधीजी का एक लेख पढ़कर ही उन्हें तुलसी रामायण के अनुवाद की प्रेरणा मिली थी। उल्लेखनीय है कि संस्कृत के रामायणों से बढ़कर रामचरितमानस ने ही फीजी, मारिशस, सूरिनाम आदि देशों में बसे भारतीय प्रवासियों के बीच भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखा। वैसे अंग्रेजी, फ्रैंच, जर्मन, डच आदि भाषाओं में आए संस्कृत के आध्यात्मिक ग्रन्थों के कारण विश्व भर में एक आध्यात्मिक तरंग पैदा हुई है, यह भी एक ऐतिहासिक सत्य है।

जहाँ तक हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय

भाषाओं का प्रश्न है, संस्कृत इन भाषाओं के लिए बहुत बड़ा सांस्कृतिक एवं साहित्यिक स्रोत है। यहाँ तक कि पश्चिमी व्यावहारिक आलोचना के प्रभाव के बावजूद रस, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य आदि संस्कृत के आलोचना सिद्धान्त समकालीन भारतीय साहित्य में भी स्वीकार किए जाते हैं। हिन्दी के साथ विशेष सुविधा यह है कि देवनागरी लिपि एवं तत्सम और तद्भव शब्दावली के कारण वह संस्कृत के बहुत निकट है। संस्कृत के शास्त्र ग्रन्थों, दार्शनिक ग्रन्थों एवं श्रेष्ठ काव्य साहित्य एवं पुराणों के अर्थ-ग्रहण में संस्कृत पाठों की हिन्दी में लिखित गद्य व्याख्याएँ एवं भाष्य संदर्भ ग्रन्थों के रूप में काम आते हैं। मलयालम के प्रसिद्ध आलोचक एवं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान प्रो. सुकुमार आषीकोड ने जिन दिनों उपनिषदों पर 'तत्वमसि' नामक ग्रन्थ लिखा, तब उपलब्ध सारी हिन्दी व्याख्याओं का भी उपयोग किया था। यह इन पंक्तियों के लेखक को याद आ रहा है। चौखम्भा सीरीज, गीता प्रेस गोरखपुर की व्याख्याएँ आदि संस्कृत से आकर ग्रन्थों को समझने में सभी भाषाओं के पाठकों को सहायक बनाते हैं।

पद्य में लिखे गए रामायण, भागवत, महाभारत आदि के अनुसृजन भारतीय भाषाओं में गद्य व्याख्याओं से ज्यादा लोकप्रिय रहे हैं। वाल्मीकि रामायण को उपजीव्य मानने पर भी तमिल कवि कंबर का रामायण एक ऐसा अनुसृजन है, जिसको कवि ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं और प्रक्षिप्त अंशों को जोड़कर मौलिक काव्य जैसा बना दिया है। तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस की रचना यद्यपि वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण के आधार पर की है, फिर भी जैसा उन्होंने प्रारम्भ में बताया है, नानापुराण, निगम, आगम सम्मत प्रसिद्ध रामायण में जो प्रतिपादित है, उसके अलावा अन्यत्र से भी सामग्री ग्रहण कर उन्होंने एक ऐसा भाषा काव्य रचना जिसमें उनको मौलिक रचना जैसा सृजन-सुख प्राप्त हुआ। बंगाल के रामायणकार कृत्तिवास ने अपने कृत्तिवास रामायण में शाक्त दर्शन के अनुसार रामायण की कथा को नया मोड़ दिया है। एषुत्तच्छन के मलयालम अध्यात्म रामायण में 'बोधहीन सामान्य पाठक' की भी समझ में आ जाए इस दृष्टि से अद्वैत वेदान्त की व्याख्या रामकथा के संदर्भ में की गयी है। विशिष्ट गेय शैलियों और नयी व्याख्याओं के कारण ये सब रामायण वाल्मीकि के रामायण से भिन्न हो जाते हैं। आधुनिक हिन्दी कवि मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत', निराला की 'राम की शक्ति पूजा', नरेश मेहता का 'संशय की एक रात' जैसे काव्यों में रामायण की कथा का अनुसृजन और नयी व्याख्याएँ हम देख सकते हैं। वाल्मीकि रामायण का सम्पूर्ण अनुवाद नवजागरण काल में मराठी में वामन लेले, हिन्दी में द्वारका प्रसाद शर्मा, तमिल में नटेश शास्त्री और मलयालम में वल्लत्तोल ने किया है। लेकिन भारत के सामान्य पाठक कंबन, तुलसीदास, एषुत्तच्छन, सरलादास आदि द्वारा किए गए रामायण के अनुसृजनों का पाठ करना ज्यादा पसंद करते हैं।

मध्यकाल से ही भारत का भागवत् का अनुवाद और अनुसृजन आधुनिक भारतीय भाषाओं को समृद्ध बना रहा है। पोतन्ना का तेलुगु भागवत्, सूरदास का सूरसागर आदि भागवत् के लोकप्रिय अनुसृजन के उदाहरण हैं। भागवत् के दशम स्कन्ध का रूपान्तर 'कृष्णगाथा' नाम से चेरुश्शेरी ने शृंगार एवं हास्य रस मिश्रित शैली में मलयालम में किया है। एकनाथ के मराठी भागवत् को दार्शनिक व्याख्या के कारण विशिष्ट माना जाता है। भागवत् की प्रबन्ध शैली की तुलना में सूरदास की पद-रचना की शैली संगीत, काव्य-सौन्दर्य और भक्ति के कारण विशिष्ट लगती है। सूरदास ने अपने भ्रमरगीत प्रसंग में निर्गुण निराकार ब्रह्म की तुलना में सगुण, साकार, प्रेमस्वरूप श्रीकृष्ण की भक्ति को ज्यादा सहज और सरल बताया है। भागवत् की कथाओं को आधुनिक भारतीय कवि नया रूप-भाव देकर मिथकीय काव्यों की रचना करते हैं जिससे श्रीकृष्ण का चरित आज भी प्रासंगिक लगता है।

महाभारत के अनुवाद एवं अनुसृजन की परंपरा आधुनिक भारतीय भाषाओं में अक्षुण्ण रही है। उदाहरण के लिए नन्नय के तेलुगु महाभारत को अनुवाद से भी बढ़कर अनुसृजन या मौलिक रचना का दर्जा दिया जाता है। एषुत्तच्छन ने महाभारत का संक्षिप्त काव्यानुवाद किया है जो अपने काव्य-सौन्दर्य के कारण ज्यादा मान्य है। महाभारत का छन्दोबद्ध अनुवाद करने वाले कुञ्जिकुट्टन तंपुरान ने ज्यादातर वृत्तानुवृत्त अनुवाद करके मलयालम को समृद्ध बनाया है। महाभारत के उपाख्यानों का मिथकीय आविष्कार आधुनिक कवि करते रहे हैं जैसे दिनकर का 'रश्मिरथी', धर्मवीर भारती का 'अन्धा युग' आदि।

कालिदास, भवभूति, भास आदि की रचनाओं का अनुवाद भारतीय नवजागरण को गतिशील बनाने में सहायक रहा है। शेक्सपियर आदि पश्चिमी नाटककारों के नाटकों के अनुवादों ने ही शायद संस्कृत के इन महान रचनाकारों की रचनाओं के अनुवाद के लिए अनुवादकों को प्रेरणा दी थी। नवजागरण काल में सारी भारतीय भाषाओं में कालिदास के काव्यों और नाटकों का अनुवाद अत्यन्त लोकप्रिय विषय रहा है। कालिदास के रघुवंश का अनुवाद सीताराम शास्त्री ने और मेघदूत का अनुवाद महावीर प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी (मेघदूत एक पुरानी कहानी) आदि ने हिन्दी में किया है। शंकर कुरूप जैसे कवियों के मेघदूत के नवसृजन चर्चित रह हैं। ठाकुर जगमोहन सिंह ने ऋतुसंहार और मेघदूत का अनुवाद किया था। कालिदास के शांकुतल के प्रसिद्ध अनुवाद हिन्दी में राजा लक्ष्मण सिंह

और मलयालम में राजराज वर्मा तथा अन्य अनेक लोगों के रहे हैं। भास के नाटकों की खोज और गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशन भारतीय नवजागरण की एक अद्भुत घटना थी। राष्ट्रीय भावधारा के मलयालम कवि वल्लत्तेल ने स्वप्न वासवदत्त का अनुवाद 1914 में किया था। मैथिलीशरण गुप्त ने भास के ज्यादातर नाटकों का हिन्दी में रूपान्तर किया था। गुजराती के भी राष्ट्रीय भावना के कवि केशवलाल ध्रुव ने स्वप्न वासवदत्त और मध्यम व्यायोग का अनुवाद किया। प्रसिद्ध मराठी कवि किराट ने मराठी में, नंजुड स्वामी ने कन्नड़ में और शेषाद्री अय्यर ने तमिल में भास के नाटकों का अनुवाद किया। कावालं नारायण पणिक्कर ने भास के नाटकों का नाट्य रूपान्तर रंगमंच पर प्रस्तुत कर समकालीन भारतीय रंगमंच को गतिशीलता प्रदान की है। समकालीन रंगमंचीय आन्दोलन के कारण शूद्रक के मृच्छकटिक और भास के स्वप्न वासवदत्त की अनेक लोकप्रिय प्रस्तुतियाँ हिन्दी में की गयी हैं।

संस्कृत के पंचतंत्र, कथासरित्सागर, उपनिषदीय कथाएँ, बौद्ध जातक कथाएँ आदि के रूपान्तर भारतीय कथा साहित्य को समृद्ध बनाते रहे हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के मिथकीय उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' बाणभट्ट के कथा साहित्य का मिथकीय रूपान्तर है। दूरदर्शन और अन्य दृश्य-श्रव्य माध्यमों में संस्कृत के काव्यों और कथा साहित्य के रूपान्तर और अनुसृजन की अनंत संभावनाएँ बढ़ गयी हैं। रामायण और महाभारत जैसी प्रस्तुतियाँ सम्पर्क भाषा हिन्दी में लोकप्रिय हो रही हैं। संस्कृत के अमर ग्रन्थों के अनुवाद और अनुसृजन और नव सृजन की इस प्रक्रिया द्वारा संस्कृत और हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच जो अन्तःसम्बन्ध है, उसको और भी गहन बनाया जा सकता है। भारतीय भाषाओं के बाल साहित्य को संस्कृत साहित्य के रूपान्तर से और भी सम्पन्न बना सकते हैं। इससे हमारी संस्कृति की धारा नयी पीढ़ी तक पहुँचेगी।

(पूर्व कुलपति, महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा)
सौपर्णिका, काक्कंचेरी, कालिकट यूनिवर्सिटी
पोस्ट-673635 (केरल)

भारतीय राज्यव्यवस्था में किसान

डॉ. जयपाल सिंह

डॉ. जयपाल सिंह चिंतनशील युवा आलोचक एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के दयाल सिंह कॉलेज (प्रातः) में हिन्दी के सहायक प्रोफेसर हैं। 'दिनकर' पर केन्द्रित दो पुस्तकें सद्यः प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा, लेख का निरंतर प्रकाशन। लेखक हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के कई कॉलेजों में अध्यापन कार्य के साथ-साथ 'पुस्तक-वार्ता' पत्रिका के सहायक संपादक रह चुके हैं।

अभी हाल में ही ''अमर शहीदों की स्मृति'' में आयोजित ''भारतीय राज्यव्यवस्था में किसान'' विषय पर केन्द्रित संगोष्ठी में शरीक होने का मौका मिला। हालांकि सभा मुख्य तौर पर अपनी पवित्र भावना से अमर शहीदों को याद करने के लिए इकट्ठा हुई थी लेकिन चूँकि वे तमाम अमर शहीद गाजीपुर के शेरपुर गाँव के किसान थे जिन्होंने अंग्रेजी औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति के लिए संघर्ष किया था। हम भूल जाते हैं कि धरती पुत्र इन किसानों की स्थिति आज जैसी है वैसी औपनिवेशिक समय में भी नहीं थी। कम से कम किसानों ने उस समय आत्महत्याएँ नहीं की थी हालांकि प्राकृतिक आपदाएँ उनके जीवन को प्रभावित करती रही हैं।

अब तक देश की कोई भी सरकार सही मायने में किसानों के सन्दर्भ में उचित कदम या ध्यान नहीं दे पाई है। यह सर्वाधिक केन्द्रीय सवाल है। धरती धैर्य को धारण करती है और काफी धैर्य-जतन से किसान अन्न उपजाते आ रहे हैं।

हमारी राज्यव्यवस्था में किसानों की भूमिका कहाँ से तय की जाए इसकी समीक्षा और पड़ताल करने की आवश्यकता है। भारत को कृषि प्रधान देश कहा जाता है। लेकिन हम भूल जाते हैं कि यह वाक्य अंग्रेजों का दिया हुआ है। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व यह देश सर्व-सम्पन्न था जहाँ कुटीर, कपड़ा उद्योग, बर्तन उद्योग सहित कई ग्रामीण उद्योगों की भूमिका थी और विश्व अर्थव्यवस्था में उसका महत्वपूर्ण हस्तक्षेप भी रहा है हालांकि वह ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी जिसमें कृषि महत्वपूर्ण अंग था लेकिन विश्व के अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप को खत्म करने के लिए अंग्रेजों ने सोची-समझी चतुराई के कारण इसे कृषि प्रधान देश घोषित कर दिया।

वरिष्ठ पत्रकार पद्‌मश्री राम बहादुर राय ने कहा कि अंग्रेजों द्वारा 1860-61 के कानून के तहत जमींदारी प्रथा की शुरुआत होती है। यानि जमींदारी प्रथा की शुरुआत अंग्रेजों की देन है। किसानों की समस्या के प्रति किसी ने ध्यान नहीं दिया।

आजादी की लड़ाई का सपना मुख्य तौर पर गाँधीजी के सपनों का भारत से सम्बन्ध स्थापित करता है। गाँधीजी के सपनों का मुख्य सरोकार ग्रामीण व्यवस्था ग्राम स्वराज्य या गाँवों में बसता है। हमारी संसदीय प्रणाली में किसानों की हितों के बात आज तक किसी राजनेताओं ने नहीं की।

गौरतलब है लोहिया जी ने हमारे संविधान को देखा तो कहा अभी हमारे पास जो संविधान है उसी से काम चलाते हैं और बाद में देखा

जाएगा। यह हमारी तब की बड़ी भूल थी। अंग्रेजों के कारण ही इस देश के किसानों की हालत बदतर हुई। हमारा संविधान और संसदीय प्रणाली मुख्य तौर पर अंग्रेजों की मानसिकता से संचालित हो रही है। एक तरह से अंग्रेजी औपनिवेशिक मानसिकता की छायाप्रति ही है। काफी योजना बनी पर वह साकार न हो सकी।

हालांकि सहजानंद सरस्वती से लेकर अवध के बाबा रामदेव ने किसानों के हितों की लड़ाईयाँ जरूर लड़ीं, किन्तु हालात ज्यों की त्यों ही हैं। आजादी के 69 वर्ष पूरे होने को हैं लेकिन वामपंथी विचारधारा जो अपने को किसान हिमायती घोषित करती है उन्होंने भी किसानों के साथ धोखा किया। इसका उदाहरण सिंगूर और नंदीग्राम हैं।

इस संदर्भ में आगे वरिष्ठ पत्रकार-संपादक श्री रामबहादुर राय ने बेबाक टिप्पणी करते हुए कहा कि कांग्रेस पार्टी में थोड़ा बहुत राजीव गाँधी सरकार किसान हितों की चिन्ता करती दिखाई पड़ी।

किसानों के सन्दर्भ में प्रो. आनन्द कुमार का सही कहना है कि आज किसानी कोई नहीं करना चाहता है इसके पीछे पाँच कारण हैं जो किसानों के पाँच शत्रु भी हैं—(1) कॉरपोरेट जगत, (2) दाम नीति, (3) पानी, (4) बिजली, (5) राजनीतिक दल। किसानी जीवन को सर्वाधिक क्षति कॉरपोरेट जगत से ही हुई है या यूँ कहें कि भूमण्डलीकरण के बयार से जन्मा बाजारवाद ने पूँजी का विस्तार किया और पूँजी के हथियार से कॉरपोरेट जगत ने जबरन किसानों की जमीन हथिया ली, मजबूरी में किसानों के हाथों जमीन खिसकती चली गई। दूसरी तरफ कृषि क्षेत्र पंजाब से खिसक कर बिहार के लोगों के हाथ चला गया। पंजाब जो कृषि के लिए चर्चित राज्य था वहाँ की पीढ़ी का एक पैर पंजाब में है तो अकूत सम्पत्ति के लिए दूसरा पैर इंग्लैण्ड और अमेरिका की नागरिकता प्राप्त करने में बढ़ चुका है।

किसानी जीवन को दूसरी हानि एक निर्धारित दाम नीति न होने के कारण हुआ है। किसानों को अन्न उपजाने का अधिकार तो है किन्तु अन्न बेचने का निर्धारण उसके हाथ में नहीं है। अब तक कोई ऐसी सरकारी नीति नहीं बनी है जो उचित मूल्य पर उसके अनाज को खरीद कर भण्डारण कर सके। कहते हैं संभावित तीसरा विश्वयुद्ध पानी को लेकर होगा, इस बात पर विचार बाद में होगा, लेकिन भारतीय किसान को इस देश में कोई भी सरकार पानी मुहैया नहीं करा सकी है।

ठीक इसी तरह बिजली की समस्या किसानों की अब तक की बड़ी समस्या है, जो खेती के लिए अपरिहार्य है। खेत, खलिहान और खदान से लेकर जल, जमीन, जंगल तक उनसे जबरन छीने जा रहे हैं। जरा अंदाजा लगाइए कि किसानों की स्थिति कैसी होगी। आज किसानों की स्थिति 'पानी बीच मीन प्यासी' जैसी होती जा रही है। अन्न उपजाने वाला भरपेट अन्न के लिए मोहताज है।

किसानों की समस्या का पाँचवा मूल कारण राजनीतिक दल है। राजनीतिक दल भी किसानों का प्रबल शत्रु रहे हैं। भारत के तमाम राजनीतिक दलों के लिए जाति सामाजिक और राजनीतिक पूँजी है। भारतीय राजनीतिक दलों ने किसान-हितों की बजाए अस्मिता की राजनीति अपरिहार्य कारणों से की है। किसान उनके लिए वोट बैंक ही हैं। सन् 1942 की क्रांति के बारे में विवेकी राय का श्वेत पत्र अवश्य पढ़ने की जरूरत है। जिसमें हिन्दुस्तान के किसान और गाँव के बारे में उनकी समझ स्पष्ट तौर पर उजागर होती है। आज के तमाम दल मुख्य तौर पर भारत के राजनीतिक लोकतंत्र के विस्तार को अनदेखा कर रहे हैं। किसानों के प्रति उठाए गए कोई भी कदम या तो सतही हैं या दोयम दर्जे के हैं। एक आखिरी बात जो रामबहादुर राय ने कही कि किसानों के प्रति हमारी जो स्थापनाएँ या मान्यताएँ हैं, उनकी समीक्षा की माँग समय और समाज कर रहा है क्योंकि किसान स्वयं एक व्यवस्था है। वह स्वाभिमानी, कर्मठ और ईमानदार की व्यवस्था रही है।

अंग्रेजों के आखिरी वायसराय जवाहरलाल नेहरू रहे हैं क्योंकि वे ही अंग्रेजों की मानसिकता का पोषक और विस्तारक माने जाते रहे हैं। देश को अब तक वायसराय ही मिले हैं और अब तक देश में प्रधानमंत्री के पद पर वायसराय की शृंखला चल रही है।

अंततः भारतीय राज्यव्यवस्था में किसानों की भूमिका तय करनी है तो हिन्दुस्तान के प्रत्येक गाँव की जमीन को उस गाँव के किसान को सौंप देनी चाहिए और तभी भारतीय किसान के जीवन को बचाया भी जा सकता है। भारतीय किसानों की मुक्ति से ही आजादी की लड़ाई के सपनों को पूरा किया जा सकता है। आज महानगरीय जीवन में धोखा, दुःख उठाने वाले भी गाँव की तरफ नहीं जाना चाहते हैं। कुछ तो शर्म और कुछ महानगरीय जीवन में सुख-भोगने वाले लोग अब किसानी जीवन से मुक्ति चाहते हैं।

दुर्भाग्य है कि जो पीढ़ी पढ़-लिख चुकी है वह भी किसानी नहीं करना चाहती है। अब सन् 1950 के दशक की तरह राजनीति का आदर्श भी नहीं बचा है, न राजनीति में देवीलाल हैं और न चौधरी चरण सिंह। देखना होगा किसानों की समस्या का समाधान सही मायने में हमारी वर्तमान सरकार किस हद तक पार कर पाती है। यह सवाल आसन्न चुनौती की तरह हमारे सामने खड़ा है।

36, डूप्लेक्स, द्वितीय तल, जोसन भवन,
गुड़मण्डी, दिल्ली-110007

हिन्दी (राजभाषा) का सम्मान राष्ट्रभाषा बनाने में ही है

आर. स्वामीनाथन

पन्द्रह वर्ष पूर्व एल.आई.सी. की नौकरी से सेवानिवृत्त। सम्प्रति हिन्दी स्कूल और वाचनालय चला रहे हैं। हिन्दी की वर्कशाप व कार्यशालाएँ भी आयोजित करते हैं ।

हम लोग हिन्दी के लिए राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा तथा राजभाषा तीनों संज्ञाओं का प्रयोग इनमें बिना कोई भेद मानते हुए करते हैं जबकि ये तीनों शब्द अलग-अलग अर्थों के द्योतक हैं। आज हिन्दी को इन तीनों ही नामों से अभिहित किया जा सकता है क्योंकि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा और राजभाषा तीनों ही है। 14 सितम्बर, 1949 के पहले हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तथा सम्पर्क भाषा तो थी, लेकिन यह केन्द्र सरकार की राजभाषा नहीं थी।

संविधान सभा ने 14 सितम्बर, 1949 को हिन्दी को केन्द्र सरकार की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया और इस प्रावधान को भारतीय संविधान के भाग 17 में सम्मिलित किया गया। इस भाग में 343 से 351 संख्यक कुल नौ अनुच्छेद हैं।

अभी भारत की जनसंख्या एक अरब से भी ऊपर हो गई है। एक अनुमान के अनुसार अभी हिन्दी बोलने वालों की संख्या पचास करोड़ मानी जा रही है। यह केवल हिन्दी बोलने वालों की संख्या है। इसके अतिरिक्त देश के अधिकतर राज्यों में द्वितीय तथा तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी बोलने तथा समझने वालों की एक बड़ी संख्या भी है। इस तरह हिन्दी देश के एक बहुत बड़े भू-भाग की भाषा प्रमाणित होती है। यही कारण है कि हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा भी मानी जाती है।

हिन्दी को सम्पर्क भाषा तथा राष्ट्रभाषा का दर्जा किसी कानूनी या राजकीय घोषणा के तहत प्राप्त नहीं हुआ है, अपितु इसे यह गौरवमय पद जनता-जनार्दन के स्वीकरण से प्राप्त हुआ है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार गाँधी जी को देश में 'महात्मा' तथा 'राष्ट्रपिता' एवं जयप्रकाश नारायण को 'लोकनायक' कहकर संबोधित किया गया।

ऐसा संयोग बहुत कम देखने में आता है कि किसी देश में एक ही भाषा सम्पर्क भाषा, राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा तीनों ही रूपों में एक साथ प्रयुक्त होती है। यह विरल गौरव हिन्दी को ही प्राप्त है। यह इसकी शक्ति तथा लोकमान्य होने के प्रमाण हैं।

भारत में आम आदमी हिन्दी का सम्पर्क भाषा तथा राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग सुदीर्घ काल से करता चला आ रहा है। आम आदमी इसमें अपनी प्रगति निहित पाता है लेकिन जब से हिन्दी को केन्द्र में राजभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ है इसे राजनीति के राहु केतु शुरू से ही लगातार ग्रसते चले आ रहे हैं।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने देश को एक 'राजभाषा' दी थी। यह भारत की जनता को संविधान द्वारा दिया गया सबसे बड़ा आश्वसन था। इससे एक आशा यह बँधी थी कि यह स्वतंत्र देश अब अपनी ही भाषा में सोचेगा, बोलेगा, लिखेगा और काम करेगा। भारत के स्वतंत्र होने पर बी.बी.सी. द्वारा मांगे गए संदेश के उत्तर में गाँधी जी ने केवल एक वाक्य कहा था, ''दुनिया से कह दो कि गाँधी अंग्रेजी भूल गया।'' साफ है कि गाँधी जी तो यही चाहते थे कि भारत अब अपनी ही भाषा में काम करे, अंग्रेजी में नहीं।

संविधान के द्वारा दिये गए इस आश्वासन और महात्मा गाँधी जी के इस कथन के पीछे यही मंशा थी कि अपनी भाषा के अभाव में भारत कभी भी एक सच्चा तथा मजबूत राष्ट्र नहीं बन सकेगा। यह सारी दुनिया जानती है कि हमारे प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू यूरोप तथा अंग्रेजी भाषा पर किस कदर लट्टू थे।

वह किसी भी भारतीय भाषा को अंग्रेजी के समतुल्य महत्व देने को भी तैयार नहीं थे। यही वजह है कि उन्होंने राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास के लिये उन दायित्वों के निर्वाह में उदासीनता दिखलाई, जिन दायित्वों के निर्वाह का भार संविधान ने प्रधानमंत्री नेहरू को सौंपा था।

संविधान ने उनकी सरकार को हिन्दी के सर्वांगीण विकास तथा अंग्रेजी से पूर्ण मुक्ति के लिए पन्द्रह वर्षों की मोहलत दी थी। संविधान ने यह निर्दिष्ट कर यिा था कि 26 जनवरी, 1965 से अंग्रेजी केन्द्र सरकार की राजभाषा नहीं रहेगी। लेकिन पं. नेहरू ने इस मोहलत को अंग्रेजी के अतिरंजित गुणगान में व्यतीत कर दिया। वह हर मंच से लोगों को यह बताते रहे कि अंग्रेजी के बिना यह देश टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा और हम प्रगति की दौड़ में पिछड़ जाएंगे।

उनके इस हिन्दी-विरोधी रुख और भाषणों से अहिन्दी भाषी राज्यों के नेताओं को हिन्दी के विरोध का मौका तथा प्रोत्साहन दोनों मिल गये। इसी का लाभ विशेष रूप से तमिलनाडु ने उठाया और वहाँ हिन्दी-विरोध की नींव पर खड़ी एक अलग प्रकार की क्षेत्रीय राजनीति चल पड़ी।

इस कथित हिन्दी विरोध का लाभ उठाते हुए अपने बहुमत के बल पर पं. नेहरू जी ने सन् 1963 में संसद से एक विधेयक पारित करवा लिया। यह शीघ्र ही अधिनियम भी बन गया। इस अधिनियम में यह कहीं भी अंकित नहीं है कि अंग्रेजी में कब तक राजभाषा बनी रहेगी। स्पष्ट है कि संविधान ने भारत की जनता को अपनी ही भाषा में राजकाज चलाने की गारंटी दी थी, उस गारंटी का अपहरण देश

के प्रधानमंत्री ने ही कर लिया और अंग्रेजी को अनंत काल के लिए पिछले दरवाजे से केन्द्र की राज्यभाषा बनवा दिया। इतिहास की दृष्टि में यह देश के साथ किया गया एक विश्वासघात है, जिसकी मिसाल दुनिया में और कहीं नहीं मिल सकती।

किसी भी राष्ट्र के लोगों को आपस में जोड़ने वाली जो चीज होती है, वह भाषा ही होती है। हमारे यहाँ देशवासियों द्वारा अनेक भाषाएँ तथा बोलियाँ बोली एवं समझी जाती हैं। लेकिन पूरे देश में ऐसी कोई अखिल भारतीय भाषा नहीं है, जिसे सभी क्षेत्रों के लोग समान रूप से बोल और समझ सकें। यह सम्मान न हिन्दी को प्राप्त है और न अंग्रेजी को।

अंग्रेजी शिक्षित समुदाय के बीच प्रचलित भाषा तो है लेकिन इसका प्रयोग करने वालों की संख्या देश की जनसंख्या के अनुपात में अत्यन्त नगण्य है। प्रशासन चलाने का काम इसी वर्ग के हाथ में है। एक अखिल भारतीय सम्पर्क भाषा के अभाव में देश में भावात्मक तथा राष्ट्रीय एकता अब तक स्थापित नहीं हो सकी है। यह सच भी है।

विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका तीनों ही क्षेत्रों में अंग्रेजी का बोलबाला कायम है। इसका अर्थ यह है कि इन तीनों निकायों का सम्पर्क जनता से सीधे नहीं है। जनता का इन तीनों निकायों से सीधे सम्पर्क नहीं है। जनता जो भाषा बोलती है उस भाषा का प्रयोग न न्यायपालिका करती है, न कार्यपालिका और न विधायिका, ये तीनों जिस भाषा का प्रयोग करती हैं उस भाषा से जनता पूर्णतः अनभिज्ञ है। इस प्रकार जनता तथा न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं विधायिका के बीच एक ऐसी खाई है जो दोनों को आपस में कभी भी मिलने नहीं देती।

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक प्रगति के लिये यह आवश्यक है कि वहाँ की जनता सभी राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहभागी बने। पर भारत में जनता की ऐसी सहभागिता देखने को नहीं मिलती; क्योंकि यहाँ एक ऐसी सम्पन्न भाषा का अभाव है जो पूरे देश में सबके द्वारा बोली और समझी जाती हो। हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में संवैधानिक मान्यता तो दी गई, किन्तु सन् 1965 के बाद भी अंग्रेजी को राजभाषा बनाये रखने के प्रावधान के कारण यह मामला अब और भी उलझ गया है।

जब राजभाषा हिन्दी की बात की जाती है तो यह कभी नहीं समझा जाना चाहिए कि केवल हिन्दी की ही चिन्ता की जा रही है या फिर हिन्दी किसी के ऊपर लादी जा रही है।

वस्तुतः राजभाषा हिन्दी के भविष्य के साथ सभी भारतीय भाषाओं का भविष्य भी जुड़ा है। जिन-जिन राज्यों ने अपने यहाँ अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषाओं को राजभाषा का दर्जा दिया है, वहाँ उन भाषाओं को वैसी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जैसी कठिनाइयों के बीच में आज हिन्दी को केन्द्र सरकार के कार्यालयों में गुजरना पड़ रहा है। केन्द्र सरकार भाषा की लड़ाई में अंग्रेजी और हिन्दी के बीच है। राज्यों में यह लड़ाई प्रादेशिक भाषाओं तथा अंग्रेजी के बीच है। आज अंग्रेजी पूरे देश पर हावी है।

देश की भाषा से जुड़ा हुआ एक महत्वपूर्ण प्रश्न राष्ट्रीयता का भी है। जब राष्ट्रीयता की बात सामने आती है तो यह बात भी खुलकर सामने आती है कि सभी भारतीयों के बीच राष्ट्रीयता की वह भावना दिखाई नहीं देती, जो उनमें दिखाई देनी चाहिये। आज हम इससे संबंधित समाचारों को अखबारों में भी पढ़ते हैं। इस संबंध में मैं मार्क टुली के एक लेख की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करना चाहता हूँ। मार्क टुली बी.बी.सी. के पूर्व भारतीय संवाददाता रह चुके हैं। एक लेखक के रूप में इन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। मूलतः ये अंग्रेज हैं, पर भारत को इन्होंने बहुत पास से देखा और समझा है। अपने लेख भारत में अंग्रेजी की भूमिका में ये लिखते हैं कि ''निश्चित रूप से एक विदेशी भाषा की नींव पर भारतीय राष्ट्रीयता का निर्माण नहीं हो सकता। अमेरिका और आस्ट्रेलिया की तरह भारत कोई भाषाविहीन संस्कृति वाला देश नहीं है। उसकी एक प्राचीन सभ्यता है जिसकी भाषाएँ समृद्ध हैं और जिनकी जड़ें गहरी हैं तथा जो उपनिवेशवाद के बावजूद जीवित बनी रही है।''

भारत में आज भी अंग्रेजी जानने वालों की संख्या हमारी कुल आबादी के दो प्रतिशत से ज्यादा नहीं है। इसलिये सर्वप्रमुख मुद्दा यह है कि क्या वे दो प्रतिशत लोग ही इस देश पर शासन करते रहेंगे? क्या ऐसे शासन तंत्र को प्रजातंत्र मानना प्रजातंत्र की हँसी उड़ाना नहीं है? वस्तुतः यह व्यवस्था साम्राज्यवादी, सामंतवादी तथा तानाशाही व्यवस्था से भी बदतर प्रमाणित हो रही है। इस तंत्र में नौकर ही मालिक बन जाता है और वह अपने मालिक को ही नौकर बने रहने पर मजबूर कर देता है। इस नग्न सत्य को समझने में और समय बर्बाद करना अपने सर्वनाश को स्वयं आमंत्रण देने के समान है। यह केवल राजभाषा हिन्दी या भारतीय भाषाओं के भविष्य का ही प्रश्न नहीं है, यह तो हमारे प्रजातंत्र एवं स्वाधीनता के भविष्य से जुड़ा हुआ एक यक्ष प्रश्न है और उसका उत्तर हमें ही देना है।

महात्मा गाँधी जी ने कहा है ''अंग्रेजी का मोह जब तक हमारे दिल से नहीं छूटेगा, हमारी भाषाएँ कंगाल रहेंगी, यानि हम कंगाल रहेंगे, यानि यह देश कंगाल रहेगा।''

राजभाषा हिन्दी के मामले में हमने पाँच दशक बनाने और तरह-तरह की बहानेबाजियाँ में गुजार दिये। हम स्वतंत्र भारत के नागरिक होकर भी अंग्रेजी (नौकरशाही) के गुलाम बने हुए हैं।

क्या इक्कीसवीं सदी का भारत भी इसी प्रकार पराधीन और भाषाविहीन बना रहेगा? नहीं अब यह दौर और आगे नहीं चलने का है। इस दर्द को लोग अब समझने लगे हैं। भाषा विहीनता की दशा को भारतीय अप्रवासी अब हम से भी ज्यादा समझने लगे हैं। भाषा के मामले में सोचने-समझने की वह प्रक्रिया देश का भाग्य ही बदल सकती है। इसलिए भारत को भाषाई स्वतंत्रता की यह लड़ाई अब लड़नी ही होगी। ऐसा किए बिना इक्कीसवीं शताब्दी भारत की शताब्दी कभी भी नहीं बन पाएगी।

जय भारत—जय हिन्दी।

14/8, राजेश्वरी नगर, मलियाडुतुरै,-609001
(तमिलनाडु)

मूल्यांकन

सुविख्यात शैलीकार : रामवृक्ष बेनीपुरी

राजेन्द्र परदेसी

वरिष्ठ लेखक राजेन्द्र परदेसी पिछले तीन दशक से लेखन में सक्रिय। कई पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति इंजीनियर।

रामवृक्ष बेनीपुरी महान विचारक, चिन्तक एवं क्रान्तिकारी साहित्यकार, पत्रकार एवं सम्पादक थे। उनका जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर जनपद के बेनीपुर गाँव में 22 सितम्बर, 1899 को एक कृषक परिवार में हुआ था। बेनीपुर गाँव में अवतरित होने के कारण उन्होंने अपने नाम के साथ बेनीपुरी उपनाम जोड़ लिया। उनके पिता कुलवंत सिंह साधारण किसान थे। उनकी माँ उनकी बाल्यावस्था में दिवंगत हो गई थी। चार-पाँच वर्ष बाद उनके ऊपर से पिता की छाया भी उठ गयी। अतः उन्हें प्रारम्भ से ही कष्टों एवं नियति के थेपेड़ों को झेलना पड़ा।

इनका बचपन अपने मामा के संग बंशीपचड़ा गाँव में बीता। इनके मामा धर्मपरायण स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके यहाँ कभी सुखसागर तो कभी रामायण की कथा होती रहती थी। फलतः किशोर रामवृक्ष बेनीपुरी में अनायास ही भक्ति-भावना और साधना पुष्पित एवं पल्लवित होने लगी। वे प्रतिदिन पूजा-पाठ, चंदन लेप और रामायण का पाठ करने लगे। इसी पाठ ने उनके बाल-हृदय में साहित्यिकता का जो दीप प्रज्वलित किया, वह दिन दूनी और रात चौगुनी प्रकाश पुंज से अनवरत जगमगाता रहा निष्कम्प, निर्धूम।

बंशीपचड़ा गाँव की सघन अमराइयों की मंजरियाँ, लीची के फलों की लालिमा,

शाद्वल के दूर्वादलों की हरीतिमा तथा विस्तृत नीलाकाश की निर्मलता की अतृप्त सौंदर्यानुभूति से वे बरबस रसाप्लावित होते रहे।

अकस्मात् अध्ययन हेतु अपने बड़े ममेरे बहनोई के साथ बेनीपुर पहुँचे। तब उन्हें नया परिवेश मिला। यहीं उन्होंने सर्वप्रथम अंग्रेजी वर्णमाला सीखी। परन्तु उर्दू-फारसी जो मामा के यहाँ पढ़ी वह छूट गई। वहाँ के विद्यालय के प्रधानाचार्य को अपनी कविता सुनाते, जो पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती। तभी किशोर बेनीपुरी के मन में कविता करने की उमंग हिलोरे मारने लगती। परिणामतः वह भी साहित्य सृजन की ओर उन्मुख हुए।

वह प्रथम महायुद्ध (1914-18) का रोमांचकारी समय था। इसी समय उनके गाँव में पत्र-पत्रिकाएँ आतीं, उनमें लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल आदि की चर्चा प्रमुखता से रहती। एक ओर युद्ध, दूसरी ओर देशभक्ति और स्वाधीनता की उमगें नौजवानों में हिलोरें मारने लगीं। किशोर बेनीपुरी भी प्रभावित हुए। वह मचल पड़े और कूद पड़े गाँधी के तत्कालीन असहयोग आन्दोलन में और अपनी आगे की पढ़ाई को होम कर दिया इस आन्दोलन में। वह जयप्रकाश नारायण के सहयोगी और समाजवादी आन्दोलन के सूत्रधार बने। बिहार में समाजवाद के प्रथम प्रकल्प किसान आन्दोलन के अग्रणी, युवकों के हृदय में संघर्ष की आग फैलाने वाले, न कभी झुके, न कभी टूटे—बने रहे सर्वदा ओजस्वी और निर्भीक विद्रोही। फलतः उन्हें बार-बार जेल की यात्राएँ करनी पड़ीं।

अपने 'अम्बपाली' नाटक के शीर्षक 'मेरी अम्बपाली' में उन्होंने स्वयं लिखा है—"अब वे दिन नहीं भूले हैं, जब हजारीबाग सेंट्रल जेल के वार्ड नम्बर-एक के सामने सघन आम्र विटप के तने से उंगठकर, मैं अपनी अम्बपाली की रचना किया करता था। सामने फूलों से लदे मोतिये और गुलाब के झाड़ थे। ऊपर आसमान पर बादलों की घुड़दौड़ होती थी, और इधर मेरी लेखनी कागज पर घुड़दौड़ करती थी।"

बालपन से ही बेनीपुरी जी में हिन्दी साहित्य रचना के प्रति रुझान था। उन्होंने स्वयं लिखा है—"बचपन में ही मेरा झुकाव नाटक रचना की ओर झुका। हाईस्कूल के चौथे या तीसरे वर्ग में ही मैंने एक नाटक लिखा जिसे

लंगोटिया यारों को सुनाया था। उन्हें पसंद आया, उसे खेलने का आयोजन हुआ, और एक मारवाड़ी दोस्त ने उसे छपवाने के लिए चार रुपए चंदा भी उगाहा था।''

रामवृक्ष बेनीपुरी राजनीतिज्ञ और बहुमुखी प्रतिभा के प्रखर एवं अद्‌भुत शैली के प्रबुद्ध साहित्यकार थे। उन्होंने विविध प्रकार की रचनाओं से हिन्दी साहित्य को महिमामंडित तो किया ही, साथ ही हिन्दी साहित्य रचना के प्रथम नई शैलीकार के रूप में मान्यता भी प्राप्त की। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र और यात्रा-वर्णन के साथ अनेकों पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया है। उनकी प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाओं की संख्या साठ से भी अधिक है। उनकी प्रकाशित कृतियों में—पतितों के देश में (उपन्यास), चिंता के फूल (कहानी-संग्रह), माटी की मूरतें (रेखाचित्र), अम्बपाली (नाटक), नेत्रदान (नाटक), जंजीर और दीवारें (संस्मरण), गेहूँ और गुलाब (निबंध और रेखाचित्र का संकलन) और पैरों में पंख (यात्रा वर्णन) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त लाल तारा, कैदी की पत्नी, सीता की माँ, संघमित्रा, अमर-ज्योति, तथागत, रामराज्य, सिंहविजय, गाँव के देवता, नया समाज विजेता आदि भी उल्लेखनीय हैं। संपादक के रूप में उन्होंने तरुण भारत (साप्ताहिक), किसान मित्र (साप्ताहिक), बालक (मासिक), युवक (मासिक), लोक संग्रह, कर्मवीर, योगी, जनता, हिमालय, नई धारा, चून्नू-मून्नू इत्यादि का भी संपादन किया। इन पत्र-पत्रिकाओं में वे स्वतंत्र एवं निर्भीक होकर अपनी बात रखते थे।

'अम्बपाली' रामवृक्ष बेनीपुरी की सर्वप्रथम नाट्य-कृति है। अम्बपाली बौद्ध युग की अतिप्रसिद्ध नारी है। वह अपने अकथनीय सौन्दर्य एवं स्वभाव के कारण वृज्जियों के सबसे चर्चित एवं प्रिय उत्सव—फाल्गुनी, उत्सव में वैशाली के वृज्जि संघ की राजनर्तकी के पद पर निर्वाचित हो जाती है। वह अपने नृत्य कौशल से वृज्जि संघ के नागरिकों को विमोहित करती रहती है। उसकी प्रशंसा सुनकर मगध का अधिपति सम्राट अजातशत्रु वैशाली पर आक्रमण कर उसको अपनी राजनर्तकी बनाना चाहता है। परंतु उसको मुँह की खानी पड़ी। खाली हाथ लौटना पड़ा। अंत में अम्बपाली बुद्धत्व प्राप्त कर बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेती है। बौद्ध भिक्षुणी बनकर बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में तल्लीन हो जाती है।

रेखाचित्र संग्रह 'माटी की मूरतें' के एक रेखाचित्र 'मंगर' के माध्यम से एक परिश्रमी, किन्तु स्वाभिमानी, अति कुरूप, किन्तु अन्दर से सुन्दर कृषक मजदूर की करुण जीवन गाथा को अत्यधिक मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। शब्द चित्रकार बेनीपुरी ने मंगर उनका हलवाहा है, वह खेतों में हल चलाता है और जब खाने के लिए डेढ़ रोटियाँ मिलती हैं, तो उसमें से आधी रोटी के टुकड़े कर मालिक के ही बैलों को खिला देता है। जिनसे वह खेत जोतता रहता है।

एक दूसरे शब्द चित्र 'चरवाहा' में किसी जंगली छोटे जानवर या पक्षी को मारकर कंडे की आँच में उसे संतृष्णा दृष्टि से भुंजते, किन्तु कंडे की आग में झुलसते एक चरवाहे के उल्लास एवं आकांक्षा का अपूर्व चित्र खुले बधार के सुन्दरतम परिवेश में उकेरा गया है। गर्म मांस को खाने के कष्ट, किन्तु उससे मिलने वाली परितृप्ति की मार्मिक प्रस्तुति की गयी है।

'जंजीरें और दीवारें' संस्मरणात्मक पुस्तक में रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने संस्मरण 'रजिया' के चित्रांकन के माध्यम से संवेदनात्मक और मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। रजिया एक मुस्लिम चुड़िहारिन थी। जिससे लेखक को पहली मुलाकात उस समय हुई थी जब वे दोनों बाल स्वभाव के थे। रजिया के साथ लेखक का भावुकता का रिश्ता है। वह एकदम पवित्र और निश्छल धरातल पर खड़ा है। तभी तो रजिया लेखक के साथ मिलने में बिल्कुल संकोच नहीं करती जबकि उसका पति भी उसके साथ रहता है।

कहानी के क्षेत्र में भी बेनीपुरी ने मानक स्थापित किया है। इनकी सर्वाधिक चर्चित 'धूप नहीं छाया' कहानी में तत्कालीन शोषक जमींदार द्वारा एक मजदूर 'मधुआ' का इस प्रकार शोषण होता है कि उसका अंत हो जाता हे। उसके प्रति संवेदना प्रकट करने के बजाए उसी जनवासे में जमींदार द्वारा वेश्या का नृत्य कराया जाता है। इस कहानी के माध्यम से तत्कालीन जमींदारों के शोषण और हृदयहीनता की यथार्थ झलक प्रस्तुत की गई है।

बेनीपुरी के साहित्य में ऐसे सघन पक्ष हैं जिनसे उनके अंतरंग की गहन पहचान होती है। उसमें निहित कलात्मक मूल्यों की रक्षा करते हुए, उसे जन सामान्य से जोड़ता है। जीवन के प्रति विश्वास पैदा कर आंतरिक शक्ति एवं ऊर्जा का संचार करता है।

रामवृक्ष बेनीपुरी कवि नहीं थे। उन्होंने स्वयं स्वीकारा है—''मैं पहले कवि बन गया। तब लेखक हुआ, फिर पत्रकार बन रह गया।'' उनकी कविता लिखने की प्रवृत्ति की झलक 'अम्बपाली' नाटक में अम्बपाली द्वारा गाये गीत से मिलती है—

''कह गई यह चाँदनी
तोड़ यह भव-बंध सारा
तोड़ विधि की निठुर कारा
उड़ चली चल
दूर नभ-तल
स्वर्ग-गंगा के किनारे
आज एक कुटिया बनायें
रास उसके धवल आंगन में
मुदित मन हम रचायें
छूम-छन-छन

मधुर शिंजन
गगन गनवान हो उठे,
बोले धरित्री प्रमादिनी
बोलती थी चांदी''

उपर्युक्त गीत में छायावाद की प्रवृत्ति की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

रामवृक्ष बेनीपुरी का हिन्दी जगत में आविर्भाव तब होता है जब हिन्दी की खड़ी बोली परिनिष्ठित हिन्दी भाषा के रूप में विकसित होने के क्रम में थी। और भाषा शैली के स्वरूप निर्धारण के प्रयोग चल रहे थे। ऐसे समय बिहार में तीन महान गद्य शैलीकार के रूप में—शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी और राजाराधिका रमण प्रसाद का पदार्पण हुआ। बेनीपुरी गद्यात्मक भाषा-शैली के अद्भुत जादूगर थे। उन्होंने हिन्दी भाषा को नये कलेवर में सजाया एवं संवारा तथा उसको लोक-लालित्यपूर्ण बनाया। यह कोई सायास प्रयास नहीं था, फिर भी उसमें सब कुछ मिल जाता है।

उनके पूर्ववर्ती साहित्य में सामाजिक यथार्थ के सतहीपन व्यष्टि, सूत्रबद्ध शैली, विशिष्ट चरित्र एवं घिसे-पिटे मुहावरों में प्रस्तुत किए जाते थे। सबसे प्रमुख बात यह थी कि एक ही ढाँचे के सूत्र पर, जैसा कि चार पैर और पट्टियों को लेकर एक बढ़ई चारपाई बना देता है और उसकी बुनाई हो जाती है। उसमें जो कुछ होता है, बाहरी होता है, भीतरी कुछ भी नहीं रहता है। उस काल के हिन्दी गद्य लेखन में जो प्रायः लिखा जाता था, वह कर्ता, कर्म और क्रिया के व्यवहारिक व्याकरण के सूत्रों के आधार पर वाक्य वैविध्य नहीं के बराबर होता तथा विभिन्न प्रकार के वाक्य विन्यासों का अभाव भी था। ऐसी प्रवृत्तियों से अलग बेनीपुरी ने एक नई शैली विकसित की जिसमें अत्यधिक संवेदना, अनुभूति, तर्क, ज्ञान एवं संप्रेषणीयता है।

शैली दो प्रकार की होती है—समास और प्रसाद। समास शैली में कठिन शब्दों द्वारा मिश्र एवं जटिल वाक्यों से भाषा दुरूह हो जाती है। जिससे लेखक के भाव एवं विचार वाग्जाल में फंसकर अर्थहीन हो जाते हैं। इसके विपरीत प्रसाद शैली में अति साधारण ढंग से सहज एवं सुगम भाषा में छोटे-बड़े वाक्यों को भले ही वह बिना क्रिया, कर्म तथा कर्ता के ही क्यों न हो एक साथ सजाकर रखा जाता है। इसमें मानसिक चंचलता और उद्विग्नता को वह वाणी मिलती है जो पाठक के मर्म को छूकर गुदगुदा देती है। ऐसी ही शैली का सूत्रपात रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपनी साहित्य रचनाओं में किया है। दृष्टव्य है—

''हट्टा-कट्टा शरीर, कमर में भगवा, कंधे पर हल, हाथ में पैना, आगे-आगे बैल का जोड़ा, अपनी आवाज से हट्टास से बैलों को भगाता मेरे खेत की ओर सुबह-सुबह जाता। जबसे मुझे होश है, मैंने मंगर को इसी रूप में देखा है, मुझको ऐसा लगता है।''

—शब्द चित्र 'मंगर' से

हिन्दी में अनोखी रचना-शैली प्रस्तुत करने वाले रामवृक्ष बेनीपुरी जैसा अनूठा चितेरा सम्भवतः अन्य कोई नहीं। इसीलिए इनकी शैली के प्रशंसकों ने उन्हें 'कलम का जादूगर' नाम से अभिहित किया। इन प्रशंसकों में मैथिलीशरण गुप्त, शिवपूजन सहाय, माखन लाल चतुर्वेदी और रामधारी सिंह दिनकर उल्लेखनीय हैं। कविवर दिनकर ने तो कहा है—नाम तो मेरा दिनकर था पर असल सूर्य तो बेनीपुरी थे।

रामवृक्ष बेनीपुरी ने अप्रतिम प्रतिभा एवं साहित्य रचना से ऐसी कृतियाँ हिन्दी साहित्य को प्रदान की हैं जिनका स्थान भाषा, भाव एवं शैली आदि से अनुपम एवं अनुकरणीय है। तभी तो दिनकर ने बेनीपुरी के विषय में कहा है—पंडित रामवृक्ष बेनीपुरी केवल साहित्यकार नहीं थे। उनके भीतर केवल आग नहीं थी, जो कलम से निकल कर साहित्य बन जाती है। वे उस आग के भी धनी थे जो राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों को जन्म देती है, जो परंपराओं को तोड़ती है और मूल्यों पर प्रहार करती है, जो चिंतन को निर्भीक एवं कर्म को तेज बनाती है। बेनीपुरी जी के भीतर बेचैन कवि, बेचैन चिंतक, बेचैन क्रांतिकारी और योद्धा—सभी एक साथ निवास करते हैं।

हिन्दी साहित्य में उनके विशिष्ट योगदान को देखते हुए साहित्य अकादमी ने उनके जन्मशती के अवसर पर 'रामवृक्ष बेनीपुरी संचयन' का प्रकाशन किया है जिसमें इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ संकलित हैं। डॉ. मस्तराम कपूर द्वारा संपादित स्वतंत्रता सेनानी ग्रंथमाला (ग्यारह खण्डों में) में भी इनका विस्तार से उल्लेख करते हुए प्रकाशित किया गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बेनीपुरी ने स्वतः अध्ययन, मनन एवं अनुभूत अनुभवों से साहित्य सम्पदा को पल्लवित एवं पुष्पित किया है। और हिन्दी साहित्याकाश में एक आदर्श शैलीकार के रूप में सुप्रतिष्ठित हो गए। उनकी सादगी और मानवीय भावनाओं ने न केवल उन्हें उत्कृष्ट शैलीकार ही बनाया, वरन् मध्यम एवं निम्न वर्गों के विकास पुरुष के रूप में प्रदर्शित भी किया। जिससे वह साहित्य को जीवन के सन्निकट लाने में समर्थ हुए।

उनका लेखन सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना की दृष्टि से भारतेन्दु युग से विलग एकदम यथार्थवादी प्रतीत होता है। वह राष्ट्रीय चेतना और अंग्रेजी राज की आलोचना के साथ सामाजिक कुरीतियों और सामंती रूढ़ियों पर तीव्रतम प्रहार करते हुए जनवरी 1978 में इस दुनिया से हिन्दी नवजागरण के सजग पुरोधा बनकर चले गये।

44, शिव विहार, फरीदी नगर,
लखनऊ-226015 (उ.प्र.)

सांस्कृतिक विरासत

डॉ. हीरालाल बाछोतिया

डॉ. हीरालाल बाछोतिया जाने-माने कवि, लेखक, शिक्षाविद् हैं। एन.सी.ई.आर.टी. (हिन्दी प्रकोष्ठ) के पूर्व अध्यक्ष एवं लेखन में सक्रिय। कवि, लेखक, भाषाविद्। एन.सी.ई.आर.टी. में एसोसिएट प्रोफेसर तथा हिन्दी प्रकोष्ठ के अध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त। देश के दूरस्थ क्षेत्रों की यात्राओं से लेकर यूरोप, अमेरिका, वेस्टइंडीज (ट्रिनिडाड) की यात्राएँ। हिन्दी अकादमी के साहित्यकार सम्मान सहित अनेक सम्मान-पुरस्कार। कविता, उपन्यास, यात्रा/ यायावरी, भाषा-भाषिक, शोध व शिक्षा सम्बन्धित कई पुस्तकें प्रकाशित। अभ्यास पुस्तिकाओं का निर्माण।

सांस्कृतिक विरासत पर बात करने से पहले संस्कृति क्या है पर विचार करना समीचीन होगा। '**दी कंसेप्ट ऑफ कल्चर**' नामक पुस्तक में क्लाइड और विलियम केले ने संस्कृति की व्यापक परिभाषा दी है, ''सामान्यतः संस्कृति एक विवरणात्मक संकल्पना है। इसका एक पक्ष है—मानव के द्वारा सृजन का संचित कोष, पुस्तकें, चित्र, मूर्ति, कलाकृतियाँ, स्थापत्य, संगीत आदि तथा दूसरा पक्ष मानव परिवेश में स्वयं को अनुकूल बनाते चलने की प्रक्रिया (सभ्यता) से संबद्ध भाषा, प्रथा, संस्कार तथा इन तीनों में सिमटी शिष्टाचार, आचरण, धर्म, सदाचार जैसी व्यवस्थाएँ। संस्कृति के ये दोनों पक्ष किसी सभ्यता या समाज में युग-युग को पार करके अपनी जगह बनाते हैं।''

इसमें मानव द्वारा सृजन का कोष प्रमुखतः गुफा चित्रों, स्तूपों, मन्दिरों, मूर्तियों आदि में आज भी देखा जा सकता है। यह सांस्कृतिक विरासत उदाहरणार्थ अजन्ता गुफाओं, कोणार्क मन्दिर, सारनाथ स्तूपों, लिंगराज मन्दिर, महाबलीपुरम्, खजुराहो, कुतुब मीनार, ताजमहल, हवामहल, आदि में सुरक्षित हैं। कतिपय सांस्कृतिक विरासतें इतनी कालजयी हैं कि दुनिया के कोने-कोने से आने वाले पर्यटकों का तांता कभी टूटता नहीं। अजन्ता-एलोरा, बौद्धकालीन सांस्कृतिक विरासत कही जाती है—किन्तु उनका निर्माण और भी प्राचीन माना जाता है। इसी प्रकार मोहन-जो-दारो भले अब भारत में नहीं है किन्तु है तो भारतीय सांस्कृतिक विरासत। इसका निर्माण काल अभी भी निर्धारित नहीं हो पाया है। यहाँ प्राप्य प्रस्तर शिल्प में अंकित पशुपतिनाथ के आधार पर इसे आज से कई हजार साल प्राचीन माना जाता है। यहाँ की लिपि तो अभी भी नहीं पढ़ी जा सकी है। हमारी सांस्कृतिक विरासतें चाहे कोणार्क का सूर्य मन्दिर हो या खजुराहो मन्दिर की मिथुन प्रतिमाएँ, चाहे सारनाथ का बौद्ध स्तूप हो, चाहे दिलवाड़ा के मन्दिर या जयपुर का हवा महल, भारतीय सांस्कृतिक विरासत के अनमोल नमूने हैं। तथापि भारत में सर्वाधिक पर्यटक ताजमहल को देखने आते हैं और विमुग्ध होकर लौटते हैं। दूसरे स्थान पर है कुतुब मीनार जहाँ हर दिन विदेशी पर्यटकों की भीड़ लगी रहती है। यह भी उल्लेखनीय है ये दोनों विरासतें मिली-जुली भारतीय सांस्कृतिक विरासत हैं।

सांस्कृतिक विरासत में पुस्तकें, भाषा, प्रथा, संस्कार आदि में संस्कृति का जीवन्त रूप दिखाई देता है। उदाहरणार्थ पुस्तकों में ऋग्वेद दुनिया की सबसे प्राचीन पुस्तक है जिसमें भारतीय विचारों, चिन्तन, संस्कारों, ज्ञान-विज्ञान आदि का लिखित रूप मौजूद है। सामाजिक-पारिवारिक प्रथाएँ या परम्पराएँ पिछड़ेपन का कारण मानी जाती हैं। विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि तकनीक तथा दृष्टिकोण को बदलने में परम्परा सबसे बड़ी बाधा है। क्योंकि परम्परा आत्मरति पैदा करती है। और इस कारण न समृद्धि आ सकती है न गरीबी दूर हो सकती है। समकालीन भारतीय चिन्तकों में प्रो. श्यामचरण दुबे के अनुसार परम्परा एक बहुआयामी संकल्पना है। यह सनातन तो नहीं होती पर निरन्तरता इसका एक प्रमुख अभिलक्षण है।... पुरातनता के पास ही अनुभव होता है। ...यही अनुभव क्रमशः जातीय स्मृति का रूप ले लेता है। समाज की आंतरिक प्रक्रियाएँ परम्परा का मूल्यांकन एवं पुनर्मूल्यांकन करती हैं, जिससे नई व्याख्याएँ और समसामयिक सन्दर्भ प्रकट होते हैं। आशय यह है कि परम्पराएँ न जड़ होती हैं न स्थिर होती हैं। गत्यात्मकता इनका एक अनिवार्य अंग है। परम्परा में गजब की संवेदनशीलता होती है। भारत में परम्परा को इसी रूप में लिया गया है। पं. विद्यानिवास मिश्र के निबन्ध संग्रह का नाम ही है—'परम्परा बंधन नहीं'। परम्परा का अर्थ स्पष्ट करते हुए विद्यानिवास जी कहते हैं—''परम्परा का अर्थ है पर के भी परे हो, श्रेष्ठ से भी जो श्रेष्ठतर हो, जो न कभी भूत हो न भविष्यत्, जो सतत वर्तमान हो, जो न कभी सिद्ध हो, निरन्तर साध्य हो।'' इस प्रकार भारत में परम्परा को सहेजना और उसकी श्रीवृद्धि करना संस्कृति का सबसे शुभ तथा कमनीय लक्ष्य रहा है। परम्परा से प्राप्त बोध कथाएँ, नैतिक मूल्य तथा लोकाचार हम सबके साथ तथा सब हमारे साथ हो उठते हैं। लेकिन वर्तमान में इन सबके प्रति अरुचि और उपेक्षा का भाव विशेषतः नई पीढ़ी को भ्रमित कर रहा है। आज समाज में फैले अनाचार का एक कारण परम्परा की उपेक्षा और उसके प्रति अनादर का भाव भी है।

नृत्य, संगीत, लोक कथाएँ भी सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य निधियाँ हैं। भरतनाट्यम, कुच्चीपुड़ी, मोहिनी अट्टम आदि नृत्य रूप गुरु-शिष्य परम्परा के अद्भुत नमूने हैं तो कत्थक जैसा नृत्य रूप समन्वित संस्कृति की देन हैं। इसी प्रकार संगीत भले ही राज दरबारों में परवान चढ़ा हो किन्तु रियाज और साधना तथा भारतीय गुरु-शिष्य परम्परा के साथ समन्वित संस्कृति का यह अद्भुत उदाहरण है। नाट्य रूप नौटंकी, भांड, जात्रा, मेलों-पर्वो तो लावनी, नाच आदि का माध्यम लोक कलाएँ लोक में निरन्तर जीवित रहीं और इनके माध्यम से सांस्कृतिक विरासत सदानीरा की तरह प्रवाहित रही हैं। अलाव के चारों ओर बैठकर सर्दी से त्राण पाने और समय काटने में '**कहो कुछ बात, कटे दिन रात**' जैसी लोक धारणा ने लोक कथाओं की परम्परा को जीवित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हर अंचल की अपनी लोक कथाएँ हैं तथापि ज्यादा लोकप्रिय आंचलिक लोककथाएँ थोड़े परिवर्तन के साथ पूरे भारत में विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ '**प्यासा कौआ**' लोक कथा के बीज मोहन-जोदारो की चित्र वीथियों में अंकित कही जाती है। यह कथा भारत की सभी भाषाओं में प्रचलित है और कौवे की बुद्धिमानी का संदेश दे रही है। कथा सरित्सागर वास्तव में पैशाचिक लोक कथाओं का संग्रह है। निश्चय ही इनमें अनुस्यूत सांस्कृतिक सूत्रों को व्याख्यायित करने की जरूरत है। पंचतंत्र की कहानियाँ भी लोक कथाओं का संग्रह कहा जाता है जो थोड़े से हेर-फेर के साथ दुनिया के कई क्षेत्रों में प्रचलित है। आज भी बच्चों के मनोविनोद और खेल-खेल में शिक्षा की दृष्टि से पंचतंत्र बेजोड़ कथा संकलन है जिसमें सांस्कृतिक विरासत का मर्म समाहित है।

भाषा तो संस्कृति का प्राण है। भाषा संस्कृति की संरक्षा भी करती है और हमारी सांस्कृतिक पहचान भी है। भाषा के बारे में हर किसी के पास अपना सिद्धान्त है। कोई इसे व्यवस्था मान कर नियम और व्याकरण के सीमित दायरे में रखना चाहता है। कोई भाषा को आदर्श मानक रूप में स्वीकारने का आग्रह करता है। भाषा शिक्षक यह देखने में ही जुटा रहता है कि भाषा को कैसे सीखा-सिखाया जाए। ये सभी दृष्किोण अपनी सीमा में सही भी हैं किन्तु पूर्णतः तार्किक रूप में व्यक्त नहीं किए गए हैं। वास्तव में भाषा वह है जो हम बोलते हैं अर्थात् भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है। ये प्रतीक यादृच्छिक (आरबिट्रेरी) होते हैं। भाषा और चिन्तन में भी गहरा सम्बन्ध है, पर इसे विश्लेषित कर पाना मुश्किल है। भाषा का मूल कार्य सम्प्रेषण है। लोगों के बीच सम्पन्न होने वाला सम्प्रेषण व्यापार जो भाषा और सिर्फ भाषा द्वारा ही सम्पन्न होता है। शब्द और उसका अर्थ ही सम्प्रेषण है। अत्यन्त प्राचीन काल से देश के पूरे क्षेत्र को जोड़ने का कार्य धर्म प्रचारकों, व्यापारियों, पर्यटकों, साधु-सन्तों और दस्तकारों ने किया। इससे सूचनाओं के सम्प्रेषण के साथ-साथ सांस्कृतिक समागम का भी अवसर मिला और हमारी पहचान देश और देश के बाहर पहुँची।

भाषा की बुनावट में सांस्कृतिक तत्व समाहित हैं। सांस्कृतिक तत्वों में भाषा में प्रयुक्त विनम्रता, मुहावरों, लोकोक्तियों और रिश्ते नाते की शब्दावली में अनुस्यूत मानी जाती है। उदाहरणार्थ प्रणाम, पाँव लागों, नमस्कार आदर देने के लिए प्रयुक्त शब्द हैं। लेकिन प्रणाम बड़ों को तो नमस्कार छोटों या बराबर वालों के लिए प्रयुक्त होते हैं। रिश्ते-नाते की शब्दावली—ताऊ, चाचा, काका, मामा, फूफा, मौसा, जैसे सम्बोधन रिश्तों की सूक्ष्मता दर्शाते हैं। यह सांस्कृतिक पहचान आज 'अंकल' सम्बोधन में सिमट गई है। यह संस्कृति पर आक्रमण का उदाहरण है। खासकर हिन्दी वाले ही हिन्दी को कमजोर करने में लगे हुए हैं। हमारी अपनी शब्दावली इतनी मधुर तथा अर्थ सम्प्रेषण में सार्थक है किन्तु उसकी जगह अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग एक फैशन बन गया। कुछ हिन्दी अखबार जानबूझ कर अंग्रेजी शब्दों को ठूँसने की कोशिश में लगे हुए हैं। टीचरों की स्ट्राइक, लव अफेअर, डबल मर्डर, फेस्टिव सीजन, इंडस्ट्री, पैटर्न जैसे सैकड़ों शब्द हैं जिनके लिए हिन्दी में सहज और सुन्दर शब्द हैं—जैसे शिक्षकों की हड़ताल, प्रेम सम्बन्ध, दोहरी हत्या, त्योहारों का मौसम, उद्योग जगत, पद्धति। यह भी ध्यान देने की बात है अन्य भारतीय भाषाओं में ऐसा घालमेल नहीं है। उदाहरण के लिए मराठी में अंग्रेजी शब्दों के स्थान पर सुन्दर शब्द का इस्तेमाल करने की परम्परा विकसित की जा रही है जैसे—मेडिकल सर्विसेज (वैद्यकीय सेवा), अभियंता (इंजिनियर), स्थानक (स्टेशन), शीत पेय (कोल्ड ड्रिंक), सौन्दर्य प्रसाधन (कॉस्मेटिक्स) जैसे सैकड़ों सुन्दर, सरल शब्द। लेकिन हिन्दी में ऐसे प्रयत्नों का अभाव है न जाने कौन सी हीन भावना है जो हिन्दी वालों को ऐसा करने से रोकती है। 'इवन ऑड नम्बर' के लिए हिन्दी में 'सम-विषम संख्या' जैसे सरल शब्द मौजूद हैं किन्तु न तो इनका प्रयोग किसी ने किया, न किसी का ध्यान इस ओर गया। अखबार वाले और मीडिया 'ऑड-इवन' नम्बर का प्रयोग कर यश लूट रहे हैं। भाषा के प्रति यह उपेक्षा भाव दूर तक असर डाल रहा है। भाषा और साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। साहित्य में सांस्कृतिक विरासत प्राणतत्व की तरह मौजूद है। यह जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों और कहानियों में अत्यन्त मुखर है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर आदि के उपन्यास भी सांस्कृतिक दस्तावेज हैं। आचार्य द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियाँ 'बाणभट्ट की आत्मकथा', चारु चन्द्र लेख, पुनर्नवा और अनामदास का पोथा में चौथी शताब्दी से लेकर 12वीं-13वीं सदी के भारत के सांस्कृतिक इतिहास की कहानी है। नागर जी की कृतियाँ खंजन नयन, मानस का हंस में मध्यकालीन सांस्कृतिक झलक है। ऐसा लेखन आज भी जारी है। संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में ही किसी समाज की जीवन शैली का निर्माण होता है। जीवन शैली में उच्चतम मानव मूल्य आधारित होते हैं। इन मूल्यों का प्रचार-प्रसार शिक्षा के माध्यम से होता है। शिक्षा और संस्कृति का अन्तर्सम्बन्ध सर्वज्ञात है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, "शिक्षा सिर्फ सूचना का स्थानान्तरण नहीं है, यह सूचनाओं को अपने अंदर की अग्नि से पकाना भी है, उसके माध्यम से जीवन के अनेक सत्यों को पाना भी है।" यह अग्नि कुछ और नहीं सांस्कृतिक विरासत ही है।

के-40 एफ, साकेत, नई दिल्ली-110017

कुछ प्राचीन प्रमुख सूर्य मन्दिर

प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा

सेवानिवृत्त स्नातकोत्तर विभागाध्यक्ष–राजनीतिशास्त्र। वरिष्ठ साहित्यकार, अधिस्वीकृत स्वतंत्र पत्रकार। विभिन्न विधाओं में एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

वैदिक साहित्य में सूर्य एक प्रमुख देवता के रूप में प्रतिष्ठित किए गए हैं। उस समय मूर्ति पूजा का प्रचलन सामान्यतः नहीं था। केवल मन्त्रोच्चारण द्वारा ही पूजा अर्चना की जाती थी। सूर्य की उपासना के निमित्त भी अनेक मंत्र वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं। यत्रतत्र उन्हें साक्षात् ईश्वर का प्रतिरूप मानकर भी सम्बोधित किया गया है। वेद का एक प्रमुख मन्त्र है–गायत्री मंत्र। यह मंत्र वास्तव में सूर्य की आराधना का ही मंत्र है। मंत्र इस प्रकार है–ॐ भूर्भुवः स्वः तत्स वितर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्'' अर्थात् देदीप्यमान भगवान सविता (सूर्य) के तेज का हम ध्यान करते हैं। वह (तेज) हमारी बुद्धि का प्रेरक बने।

कालान्तर में जब मूर्ति पूजा की परम्परा व्यापक रूप में फैली तो महाभारत काल के आसपास सूर्य की भी मूर्ति-पूजा प्रारम्भ हुई, जो लोग सूर्य को ही ईश्वर मानते थे, उनका एक अलग पंथ चल निकला, जिसे सौर-पंथ कहते हैं। सूर्य की मूर्तियाँ किस प्रकार बनायी जाएँ, इसके लिए भी छठी शताब्दी में प्रसिद्ध विद्वान वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ वृहत्संहिता में विस्तार से लिखा। उन्होंने बतलाया कि सूर्य की मूर्ति में नाक, कान, जाँध, पिंडली, गाल और छाती आदि ऊँचे होने चाहिएं तथा उनके हाथों में कमल, छाती पर माला, कानों में कुण्डल और मस्तक पर रत्नजड़ित मुकुट होना चाहिए। मूर्ति निर्माताओं ने इन निर्देशों को पूरी तरह माना ही, यह तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी परवर्ती मूर्तिकारों पर इन बातों का प्रभाव अवश्य पड़ा। वैसे वराहमिहिर ने भी यह सब बातें अपनी कल्पना से नहीं कही थीं, अपितु उनसे पूर्व सूर्य की जिस प्रकार की प्रतिमाएँ बनती रही थीं, उन्हीं को अपना आधार बनाकर उन्होंने ये निर्देश दिए थे।

सूर्य की प्रतिमा का पूजन और तदनुसार सूर्य-मन्दिरों के निर्माण की परम्परा शनैः शनैः आगे बढ़ी। कुषाण काल में सूर्य-पूजा की परम्परा काफी अधिक विकसित हो चुकी थी। स्वयं कुषाण सम्राट भी सूर्य के प्रबल उपासक थे। गुप्त सम्राटों के शासनकाल में यह परम्परा और आगे बढ़ी। स्कंदगुप्त (455-467 ईसवी) के शासनकाल में बुलन्दशहर में एक सूर्य मन्दिर भी बनवाया गया। इसके अतिरिक्त गुप्तकाल में मन्दसौर (मालवा), ग्वालियर, इन्दौर तथा आश्रमक (बघेलखण्ड) में भी सूर्य मन्दिर बनाने का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। उस काल की बनी हुई कुछ मूर्तियाँ भी बंगाल में उपलब्ध हैं जिनसे पता चलता है कि वहाँ भी कुछ सूर्य मन्दिर रहे होंगे। 473 ईसवी में दशपुर (वर्तमान दशोर-मालवा) में रेशम बुनने वालों के एक संघ ने भी एक सूर्य मन्दिर बनवाया था, जिसकी जानकारी वहाँ के एक शिलालेख से मिलती है। हर्ष के शासनकाल में सूर्य पूजा की परम्परा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। उस समय तीन दिन का एक अधिवेशन हुआ था, जिसमें प्रथम दिन महात्मा बुद्ध की मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी, दूसरे दिन सूर्य की आराधना की गयी और अन्तिम दिन शिव की पूजा की गयी। सूर्य पूजा का यह उत्कर्ष स्वरूप ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक चलता रहा।

मूर्ति रूप में सूर्य की प्रतिमा का सम्भवतः प्रथम प्रमाण बोधगया की कला में है, जिसका समय लगभग ईसा की प्रथम शताब्दी है। भाजा की बौद्ध गुफा में भी सूर्य की प्रतिमा मिली है, जो इस बात की प्रमाण है कि बौद्धों में भी सूर्य पूजा की परम्परा थी। खंडगिरि (उड़ीसा) की अनन्त गुफा में जो सूर्य प्रतिमा है, उसका समय लगभग दूसरी शताब्दी आंका गया है। सूर्य के प्राचीन मन्दिरों में काश्मीर का मार्तण्ड मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। कल्हण की राजतरंगिणी में इसका विशेष उल्लेख किया गया है। अमरनाथ मार्ग पर मटन तीर्थ में यह मन्दिर स्थित है। किसी समय यह मन्दिर काफी विशाल तथा अत्यन्त प्रसिद्ध था। परन्तु आक्रमणकारी सिकन्दर ने इस मन्दिर को ध्वस्त कर दिया। बाद में इसका जीर्णोद्धार किया गया। इसके बाद भी यह आक्रमणकारियों का शिकार बनता रहा। अब इसके केवल ध्वंसावशेष ही हैं। आठवीं शताब्दी में काश्मीर के ललितादित्य मुक्तापिड़ ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था।

पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र थे साम्ब, जो माता जाम्बवती से उत्पन्न हुए थे। साम्ब अत्यन्त सुन्दर और

आकर्षक थे, परन्तु शाप वश उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था। तब उन्होंने लम्बे समय तक सूर्य नारायण की तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर सूर्य ने उनका सम्पूर्ण रोग हर लिया। इस पर साम्ब ने तीन स्थानों पर सूर्य मन्दिरों का निर्माण करवाकर अपना आभार व्यक्त किया। ये स्थान थे—कोणार्क, कालपी और मुलतान। कोणार्क में उदयकालीन, कालपी में मध्याह्न कालीन तथा मुलतान में सान्ध्यकालीन सूर्य की प्रतिमाएँ स्थापित की गयी थीं। मुलतान में सोने की मूर्ति वाले विशाल सूर्य मन्दिर का वर्णन ह्वेनसांग ने भी किया है। बाद में विद्वान अलबेरुनी ने इस मन्दिर में लकड़ी की मूर्ति होने का उल्लेख किया है। अनुमान है कि आक्रमणकारियों द्वारा लूटपाट के उपरान्त यहाँ स्वर्ण मूर्ति के स्थान पर लकड़ी की मूर्ति स्थापित की गयी होगी। मुलतान का यह मन्दिर पहले महमूद गजनवी के आक्रमण का और बाद में औरंगजेब के अत्याचारों का शिकार बना। कालान्तर में मुलतान के पाकिस्तान में चले जाने से अब इस मन्दिर के ध्वंसावशेष भी नहीं रहे।

वर्तमान सूर्य मन्दिरों में कोणार्क (उड़ीसा) का सूर्य मन्दिर अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अन्य मन्दिरों के सामन यह मन्दिर भी अनेक बार तोड़फोड़ का शिकार हुआ है। इस मन्दिर के वर्तमान स्वरूप का निर्माण सम्राट नरसिंह देव प्रथम (1238-1268 ईसवी) के शासनकाल में हुआ था। जगन्नाथपुरी से बीस मील उत्तर पूर्व समुद्र तट के समीप स्थित यह मन्दिर कलिंग स्थापत्य शैली का बेजोड़ नमूना है। साम्ब ने इस मन्दिर में कोणादित्य के नाम से सूर्य की प्रतिमा स्थापित की थी और इसी नाम (कोणादित्य) से यह मन्दिर पुराणों में चर्चित रहा है। सम्राट नरसिंह देव ने इसे नया स्वरूप प्रदान किया। यह मन्दिर भारत के सर्वाधिक प्राचीन सूर्य मन्दिरों में से एक माना गया है। मान्यता है कि इस मन्दिर का शिल्पी, दैवी शक्ति से युक्त था। मन्दिर का निर्माण पूरा करने के उपरान्त वह निकट के समुद्र (बंगाल की खाड़ी) पर पैदल चलता हुआ आगे बढ़ गया और कुछ ही देर में आँखों से ओझल हो गया। कोणार्क का यह मन्दिर 865 फुट लम्बे तथा 540 फुट चौड़े आँगन में बना हुआ है तथा इसका आकार रथ के समान है। इस रथ में दस-दस फुट बारह ऊँचे पहिए हैं तथा इसे सात घोड़े तेजी से खींचते हुए दिखलाए गए हैं।

ग्यारहवीं शताब्दी में बना गुजरात का मोढेरा का सूर्य मन्दिर भी विश्व प्रसिद्ध है। अप्सरा तीर्थ के पास स्थित यह मन्दिर विशाल एवं कलापूर्ण है। मान्यता है कि उर्वशी ने इसी तीर्थ में तपस्या की थी और श्रीराम ने इसी मन्दिर में यज्ञ किया था।

बीजापुर के पास तथा साबरमती और हाथपती के संगम के निकट भी एक नौवीं शताब्दी का सूर्य मन्दिर है, जिसे कोट्यर्क (कोटिअर्कऱ्करोड़ सूर्य) का सूर्य मन्दिर कहते हैं। इसे खड़ायता नामक वैश्यों का उत्पत्ति-स्थान भी माना जाता है। नौवीं शताब्दी का ही एक पुराना मन्दिर कच्छ के क्षेत्र में कंथ कोट में स्थित है। झालावाड़ (राजस्थान) के शंखोद्धार तीर्थ में भी एक प्राचीन सूर्य मन्दिर है। मान्यता है कि इस मन्दिर में स्थापित सूर्य की प्रतिमा स्वयं अर्जुन ने इन्द्र से प्राप्त की थी और अर्जुन ने ही इस मूर्ति को यहाँ स्थापित किया था। इस दृष्टि से यह सूर्य मन्दिर महाभारत काल से सम्बन्धित हो गया।

अल्मोड़ा से 12 किलोमीटर की दूरी पर आठवीं शताब्दी का सूर्य मन्दिर है। इस मन्दिर को भी महमूद गजनवी के द्वारा नष्ट कर दिया गया था। अब भी यह अत्यन्त जीर्णशीर्ण स्थिति में है। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि इसमें सूर्य की प्रतिमा, रथ में बैठे हुए नहीं, अपितु खड़ी हुई मुद्रा में है। इस मूर्ति के पैरों में भारी भरकम जूते हैं। इससे अनुमान लगाया जाता है कि इस मन्दिर पर फारसी संस्कृति का प्रभाव है। इसके विपरीत कुछ अन्य विद्वानों का विचार है कि एक पौराणिक कथा के अनुसार एक बार शापवश सूर्य के पैर मोटे हो गए थे। उसी कथा के सन्दर्भ में सूर्य की यह प्रतिमा निर्मित की गयी है।

ह्वेनसांग ने कन्नौज में भी एक सूर्य मन्दिर देखने की चर्चा की है, परन्तु अब उसके बारे में कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। अयोध्या में रामघाट से पाँच मील दूर सूर्यकुण्ड के पश्चिम में स्थित सूर्य मन्दिर भी काफी पुराना है। प्रभासतीर्थ (सोमनाथ) में भी शीतला नामक अरण्य में एक प्राचीन सूर्य मन्दिर है। नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर बागड़िया ग्राम के पास स्थित सूर्य मन्दिर (आदित्येश्वर) के बारे में मान्यता है कि यहाँ पाँच राक्षसों को सप्तर्षियों के दर्शन हुए थे और उनके उपदेश से ही उन्हें मुक्ति मिली थी। दक्षिण भारत में सूर्य पूजा के प्रमाण कम मिले हैं। फिर भी यहाँ सूर्यनार कोइल में एक प्रमुख सूर्य मन्दिर है, जिसमें उनके वाहन अश्व की भी प्रतिमा है। मतलगा (बेलगांव-कर्नाटक) में भी लगभग 400 वर्ष पुरानी एक सूर्य प्रतिमा है, जिसके सामने नित्य सूर्य सूक्त का पाठ किया जाता है।

राजस्थान के झालारपाटन, बांसवाड़ा, भिनमाल तथा रणकपुर आदि में प्राचीन सूर्य मन्दिर हैं।

इन प्राचीन मन्दिरों की उचित देखभाल तथा आवश्यकतानुसार जीर्णोद्धार आवश्यक है। इनसे प्राचीन इतिहास और संस्कृति के बारे में काफी कुछ जाना जा सकता है।

10/611, कावेरी पथ, मानसरोवर,
जयपुर-302020

विश्व में हिन्दी

आचार्य डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त

अपनी सम्प्रभुता या अपनी सरकार, अपना संविधान, अपना राष्ट्र-ध्वज, अपना राष्ट्र-गान एवं अपनी राष्ट्रभाषा, ये पाँच किसी भी राष्ट्र के स्वातन्त्र्य तथा स्वाभिमान का प्रतीक हैं। ये तत्सम्बन्धित राष्ट्र के स्थायित्व, समुन्नति, सतत् प्रगति और समभ्युदय के भी आधार स्तम्भ हैं। इनमें 'राष्ट्रभाषा' राष्ट्र तथा राष्ट्रीय-एकता का परम एवं चरम प्रतीक है। इसीलिये हिन्दी-युग-प्रवर्तक महामनीषी श्रेष्ठ कवि एवं साहित्यकार श्रीयुत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्पष्ट उल्लेख किया था, कि–

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।''

महत्वपूर्ण शब्द–ध्वनि यन्त्र, कम्प्यूटर सत्यम् शिवम्, सुन्दरम्।

लेखक उच्च शिक्षा विभाग, मध्य प्रदेश शासन से संस्कृत के सेवानिवृत्त प्राध्यापक हैं। एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी), स्वर्णपदक प्राप्त, पी-एच.डी.। सम्प्रति स्वतंत्र लेखन।

'हिन्दी भाषा' का मूल 'संस्कृत भाषा' है। हिन्दी भाषा संस्कृत की प्रपौत्री के रूप में गौरवान्वित है। संस्कृत के प्राकृत, पुनश्च प्राकृत से अपभ्रंश और फिर अपभ्रंश से हिन्दी का प्राकट्य हुआ। हिन्दी– खड़ी बोली, अवधी, ब्रज, बुन्देली, बिहारी, मैथिली आदि अन्य प्रादेशिक हिन्दी-बोलियाँ शौरसेनी, मागधी, अर्ध-मागधी अपभ्रंशों से उत्पन्न हुई। आज खड़ी बोली ने प्रायः सम्पूर्ण भारत और विश्व में भी व्यवहार और साहित्य के क्षेत्र में अपनी धाक जमा ली है एवं श्रेष्ठ प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

संस्कृत की वंशजा होने से हिन्दी में, संस्कृत देववाणी की दैवी-ध्वनियाँ हैं। संस्कृत-वर्णो की भाँति ही संस्कृत से प्राप्त हिन्दी वर्णों में वैज्ञानिकता है, एवमेव प्रत्येक ध्वनि या स्वर-व्यञ्जन-वर्ण, यहाँ तक कि अनुस्वर भी अपना महत्वपूर्ण, उपादेय एवं उपयोगी अर्थ संधारण करते हैं। हिन्दी की दूसरी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जैसा वर्णोच्चारण होता है, वैसा ही उसका लेखन होता है तथा जैसा लेखन होता है, तदनुसार ही उच्चारण भी होता है। इस प्रकार हिन्दी की वर्णमाला एवं शब्दावली भी वैज्ञानिक है और लिपि भी वैज्ञानिक है, जो देवनागरी या नागरी नाम से अभिहित है। हिन्दी-भाषा की वैज्ञानिकता उसके ध्वनियन्त्र के माध्यम से उसके वर्णोच्चारण-स्थान– कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, नासिका, कण्ठतालु, कण्ठोष्ठ, दन्तोष्ठ, जिह्वामूल और मुख-नासिका से स्पष्ट हो जाती है।

सम्प्रति, 'हिन्दी भाषा' का विश्व भर में प्रचार-प्रसार है। यह भाषा साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, चित्रपट, आकाशवाणी, दूरदर्शन, प्रौद्योगिकी, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र आदि सभी क्षेत्रें की उपयोगी एवं विभामयी भाषा बन चुकीहै। आज विश्व की जनसंख्या लगभग सात अरब से अधिक ही प्रगण्य है। अष्टम विश्व हिन्दी सम्मेलन न्यूयार्क में 13 जुलाई 2007 ई. को सम्पन्न हुआ था। उसमें विश्व की सात प्रमुख भाषाओं की सांख्यिकी स्थिति इस प्रकार प्रस्तुत की गई थी–

भाषा	बोलने वाले	प्रतिशत
फ्रेंच	70 मिलियन	1.00%
अरबी	100 मिलियन	1.42%
रूसी	160 मिलियन	2.28%
अंग्रेजी	340 मिलियन	4.85%
स्पेनी	360 मिलियन	5.14%
चीनी	900 मिलियन	12.85%
हिन्दी	1270 मिलियन	18.14%

(संदर्भ : हिन्दी विश्व काव्याञ्जलि, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 8, सम्पादक-डॉ. राजेन्द्रनाथ मेहरोत्रा, ग्वालियर, म.प्र.)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा विश्व में सर्वाधिक लोगों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। 2007 ई. से 2015 ई. तक के इस समय में हिन्दी ने अपना और भी अधिक प्रसार प्राप्त किया है एवं विश्व के प्रायः सभी देशों में इसने अपना सम्माननीय स्थान भी बना लिया है। सितम्बर 2015 में सम्पन्न विश्व हिन्दी सम्मेलन में हिन्दी के विश्व में फैलाव के आँकड़ों से यह परिज्ञात ही होगा, कि हिन्दी भाषा व्यवहार की दृष्टि से विश्व में शीर्ष पर है। हिन्दी की इस व्यावहारिक प्रगति से यह सुविज्ञात ही है कि एक दिन बड़ी सहजता से हिन्दी भाषा विश्व के लोगों के दिल, दिमाग और व्यवहार की आत्मीय भाषा बनकर ही रहेगी।

हिन्दी भाषा के पठन-पाठन, व्यवहार एवं

साहित्यिक विधाओं में संरचना तथा विविध विषयों में प्रयोग की दृष्टि से वह दो प्रकार से दृष्टव्य है। प्रथम राष्ट्रीय या भारतीय दृष्टि से, पुनश्च वैश्विक दृष्टि से। अपने देश भारत में व्यावहारिक प्रयोग की दृष्टि से, साहित्यिक लेखन में उपयोग की दृष्टि से एवं बोलने तथा समझने की दृष्टि से हिन्दी-प्रिय लोगों की संख्या सर्वाधिक है। स्पष्ट है कि भारत में हिन्दी का प्रयोग अन्यान्य सभी भाषाओं से सर्वाधिक है। अपने देश भारत में बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, अंडमान एवं निकोबार प्रदेशों में हिन्दी जानने वालों की संख्या शतप्रतिशत है। आंध्र प्रदेश में 40%, अरुणाचल में 30%, असम में 50%, गोवा में 70%, जम्मू कश्मीर में 90%, कर्नाटक में 45%, केरल में 35%, मणिपुर में 30%, मेघालय में 30%, मिजोरम में 35%, नागालैंड में 25%, उड़ीसा में 60%, तमिलनाडु में 20%, त्रिपुरा में 25%, पश्चिम बंगाल में 60%, दादरा एवं नगर हवेली में 65%, दीव एवं दमन में 65%, लक्षदीपमें 25% एवं पांडिचेरी में 20% से अधिक हिन्दी भाषी लोग हैं।[1] इसी प्रकार विश्व के चवालीस देशों में 2004 ई. में विश्व में हिन्दी जानने वालों की संख्या लगभग एक अरब 10 करोड़ बताई गई है, जो विश्व की लगभग छह अरब जनसंख्या का 18.9% है।[2]

हिन्दी भाषा को विश्व हिन्दी दिवस एवं विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजनों का भी गौरव प्राप्त है। योरोपीय बल्गारिया की राजधानी सोफिया में 10 जनवरी, 2006 ई. को प्रथम विश्व हिन्दी दिवस का भव्य आयोजन हुआ। 10 जनवरी, 1975 ई. में नागपुर में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में भारतीय दूतावास और भारत शास्त्र विभाग, सोफिया विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में सम्पन्न हुआ था। अगस्त सन् 1976 ई. में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन मॉरीशस में, अक्टूबर 1983 में तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन दिल्ली में, चतुर्थ विश्व हिन्दी सम्मेलन 2, 3, 4 दिसम्बर, 1993 ई. में मारीशस की राजधानी पोर्ट लुई में, पंचम विश्व हिन्दी सम्मेलन 4 से 8 अप्रैल, 1996 ई. में त्रिनीडाड और टुबेगो में, छठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन 14-16 सितम्बर, 1999 को लन्दन में सम्पन्न हुए।[3] इसी प्रकार सप्तम विश्व हिन्दी सम्मेलन सूरीनाम, दक्षिणी अमेरिका 5 से 9 जून 2003, अष्टम न्यूयार्क (उत्तरी अमेरिका) 13 से 15 जुलाई, 2007, नवम 22 से 24 सितम्बर, 2012 जोहान्सवर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में सम्पन्न हुए।[4] दशम विश्व हिन्दी सम्मेलन 10 से 12 सितम्बर 2015 को भोपाल (म.प्र.) में सम्पन्न हुआ।[5]

विश्व में विश्व हिन्दी सम्मेलनों की संयोजना हिन्दी के समुत्कर्ष का ही द्योतक है। हिन्दी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह भारतीय संस्कृति 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' का पर्याय सिद्ध हो चुकी है, अतएव इस पवित्र संस्कृति के आधान हेतु विश्व के लोगों को हिन्दी भाषा जानने की आकांक्षा है।

हिन्दी भाषा अपनी अद्वितीय एवं अतुलनीय क्षमता से विश्व को आकर्षित कर रही है। मूल शब्दों के विषय में हिन्दी और अंग्रेजी की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी में मूल शब्द मात्र दस हजार हैं और हिन्दी के मूल शब्दों की संख्या ढाई लाख से अधिक है।[6]

भारतवर्ष में प्रायः दो सौ विश्वविद्यालय हैं। इनमें यान्त्रिक विश्वविद्यालयों को छोड़कर लगभग सभी कला एवं भाषा (लेंग्वेज) सम्बन्धी विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा का अध्ययन एवं अध्यापन कार्य सम्पन्न होता है। भारत में दो हिन्दी विश्वविद्यालय एक वर्धा में दूसरा भोपाल में प्रसिद्ध हैं।

विश्व स्तर पर दृष्टि-प्रक्षेप से स्पष्ट है कि आज विश्व के अधिकांश देशों में हिन्दी का पठन-पाठन हो रहा है। इस आधार पर हिन्दी की विकासोन्मुखी रचनात्मकता, वैचारिक श्रेष्ठता, गुणानुवाद एवं वैज्ञानिकता सिद्ध है। हिन्दी का रोजागारोन्मुखी निर्देशन भी है। देवनागरी लिपि भी हिन्दी के हित में एक सापेक्ष आधार है, जिससे कम्प्यूटर जगत् भी हिन्दी के आकर्षण को सम्बल प्रदान करता है।

विश्व में हिन्दी आज अपना सहज रूप से विस्तार कर रही है। फीजी, मॉरीशस, गुयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि द्वीप समूहों में प्रवासी भारतीयों एवं उनके हिन्दी-प्रेम के कारण वहाँ हिन्दी भाषा भलीभाँति फलफूल रही है एवं वहाँ हिन्दी की वृहत् साहित्य सर्जना सम्पन्न हो रही है। न्यूजीलैण्ड, इण्डोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका, म्यांमार (वर्मा), मैक्सिको, अमेरिका, क्यूबा, पेरू, कोलम्बिया, श्रीलंका, अर्जेन्टाइना, चिली, इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान, रूस आदि में भी हिन्दी अपने सौहार्दपूर्ण हाथ पसारने में सफल हो रही है। यहाँ के लोगों में हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम एवं ग्रहणशील भाव जाग्रत हुआ है।

विश्व में हिन्दी के प्रचार प्रसार का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विश्व में 144 (एक सौ चवालीस) विश्वविद्यालयों में हिन्दी के शिक्षण की व्यवस्था है।[7] विश्व में हिन्दी बोलने वालों की संख्या भी सौ करोड़ से अधिक है। वर्तमान में एक करोड़ तीस लाख भारतीय मूल के लोग विश्व के 132 देशों में निवास कर रहे हैं। इनमें से आधे से अधिक लोग हिन्दी का प्रयोग करते हैं।[8] आज विश्व के अनेक देशों में, यथा—अमेरिका, कनाडा, रूस, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, हॉलैण्ड, स्वीडन, डेन्मार्क, इटली, जापान, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, चीन, रोमानिया आदि में हिन्दी के पठन-पाठन का कार्य चल रहा है।[9]

विश्व में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं प्रचार से भी विश्व में हिन्दी ने अपना समुचित स्थान बनाया है। भारतेत्तर दूसरे देशों में, यथा—फीजी, सूरीनाम, गुयाना, दक्षिण अफ्रीका आदि में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का सुचारु सम्पादन सम्पन्न होता है। यह हिन्दी की लोकप्रियता एवं विश्वप्रियता का प्रमाण है। भारत में तो सहस्राधिक हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ आज भी प्रकाशित हो रही हैं।[10]

हिन्दी के अनेक लोकप्रिय रचनाकारों— तुलसी, कबीर, सूर, मीराबाई, प्रेमचन्द आदि की रचनाओं का रूसी, जापानी, जर्मन आदि भाषाओं में अनुवाद होना विश्व में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को प्रत्यक्ष करता है।

भारतीय फिल्में अधिकांशतः हिन्दी में ही प्रदर्शित होती हैं, जिनकी कैसेट से अनेक देशों का बाजार क्रय विक्रय हेतु भरा पड़ा है। प्रौद्योगिकी क्षेत्र में भी विश्वपटल पर हिन्दी ने अपनी अपूर्व क्षमता को प्रकट किया है।

हिन्दी भाषा के अपने कतिपय विशेष गुण हैं। सरलता, सहजता, माधुर्य, सरसता, गेयता, वैज्ञानिकता, आकर्षण, आत्मीयता, शुचिता, सुभाषित-सौन्दर्य, ध्वन्यात्मकता, सांगीतिक-मुग्धता, शब्द सामर्थ्य, भाव गाम्भीर्य, मार्मिकता, मनोहरता एवं मनोज्ञता आदि हिन्दी भाषा के अन्तःबाह्य स्वरूप को सुरूप प्रदान कर उसे रोचक बनाते हैं। इसीलिए भारत और विश्व पटल पर हिन्दी सहज रूप से ही सजत स्रोतस्विनी के समान अपनी अस्मिता बनाए हुए स्वतः अपने प्रसार में अनुरत है। आगामी समय में विश्व में हिन्दी अपना एक महत्वपूर्ण एवं उपादेय स्थान बना लेगी, ऐसा पूर्ण विश्वास है।

हिन्दी भाषा आज विश्व भाषाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सफल है, किन्तु अपने ही प्रभवदेश भारत में यह गौरवपूर्ण 'राष्ट्रभाषा' के पद की प्राप्ति से वंचित है। यह हमारे देश और देशवासियों के लिए लज्जास्पद बात है। यथार्थ तो यह है कि यदि राजनीति आड़े न आए, तो जन-जन के मन में रम जाने वाली यह परम हितैषिणी हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर आशु प्रतिष्ठित होकर राजभाषा (राजकार्यों की भाषा) के रूप में प्रत्यक्ष प्रदर्शित होगी और अतिशय लोक कल्याणकारी बनेगी।

आज विश्व पटल पर हिन्दी ने अपना मनोरम रूप प्रदर्शित किया है। यह हिन्दी की अपनी सामर्थ्य है। हिन्दी की सबसे बड़ी विशेषता इसकी जाति, वर्ग, धर्म, सम्प्रदाय एवं स्थान आदि से पूर्ण निरपेक्षता है। अस्तु कामना है कि—

''अपनी कृति से स्वयं समुन्नत
हिन्दी को बढ़ने दो।
ज्ञान-हेम किरणों से सबके
मन-गिरि पर चढ़ने दो।।
शोभन सुखद सुचारु समझ कर
यदि दे सको सहारा।
तो हिन्दी को उन्नत करने से
मत करो किनारा।।
अपनी भाषा, 'अपनी माता',
यह विचार चित लाओ।
मान करो हिन्दी का सब मिल,
अपना इसे बनाओ।
बने राष्ट्र भाषा अपनी हिन्दी,
सबको बतलाओ।
राष्ट्र-एकता की थाती
'हिन्दी' को सब अपनाओ।।''

संदर्भ–

1. विश्व स्तर पर हिन्दी, संपादक डॉ. मफतलाल पटेल, पृ. 291, 292
2. विश्व स्तर पर हिन्दी, संपादक डॉ. मफतलाल पटेल, पृ. 294, 295
3. विश्व स्तर पर हिन्दी, संपादक डॉ. मफतलाल पटेल, पृ. 295, 296
4. हिन्दी विश्व काव्याञ्जलि (द्वितीय खण्ड), अन्तिम कवर पृष्ठ पर उल्लेख।
5. वैबसाइट (विश्व हिन्दी सम्मेलन, दशम)
6. विश्व स्तर पर हिन्दी, संपादक डॉ. मफतलाल पटेल, पृ. 25
7. विश्व स्तर पर हिन्दी, संपादक डॉ. मफतलाल पटेल, पृ. 27
8. विश्व स्तर पर हिन्दी, संपादक, डॉ. मफतलाल पटेल, पृ. 27
9. विश्व स्तर पर हिन्दी, संपादक, डॉ. मफतलाल पटेल, पृ. 31
10. 'कश्फ', भारतीय पत्रकारिता अंक, मई 2015, संपादक डॉ. विनोद तनेजा, प्रकाशन—विभोर प्रकाशन, 5016, जोशीपुरा, पो.-खालसा, अमृतसर-143002

अन्य संदर्भ ग्रंथ–

1. हिन्दी विश्व गौरव ग्रन्थ (प्रथम खण्ड), सं. डॉ. राजेन्द्र नाथ मेहरोत्रा (प्रकाशन-ग्वालियर)
2. हिन्दी विश्व काव्याञ्जलि (प्रथम खण्ड), सं. डॉ. राजेन्द्र नाथ मेहरोत्रा (प्रकाशन-ग्वालियर)
3. हिन्दी विश्व काव्याञ्जलि (द्वितीय खण्ड), सं. डॉ. राजेन्द्र नाथ मेहरोत्रा (प्रकाशन ग्वालियर)
4. हिन्दी विश्व महाकवि गोस्वामी तुलसीदास— साहित्य शोध समीक्षा संदर्भ कोश, प्रकाशन-ग्वालियर
5. हिन्दी विश्व भारतीय संस्कृति संवाहिनी सरिताएँ (प्रथम खण्ड), प्रकाशन-ग्वालियर
6. विश्व स्तर पर हिन्दी, सं. मफतलाल पटेल (प्रकाशन-रोहतक)
7. हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य, सं. डॉ. महेश दिवाकर (प्रकाशन-नई दिल्ली)
8. विश्व पटल पर हिन्दी, सं. डॉ. महेश दिवाकर (प्रकाशन-दिल्ली)
9. कश्फ—भारतीय पत्रकारिता अंक, सं. डॉ. विनोद तनेजा (प्रकाशन-अमृतसर)
10. विश्व हिन्दी—चक्रधर नलिन (प्रकाशन-आगरा)
11. बढ़ती हिन्दी—बद्री नारायण तिवारी (प्रकाशन-कानपुर)
12. आधुनिक समय में हिन्दी की चुनौतियाँ— आत्माराम शर्मा (प्रकाशन-भोपाल)
13. एकता स्मारिका (2011), राष्ट्रीय हिन्दी परिषद्, मेरठ (उ.प्र.)
14. हिन्दी प्रचार वाणी (नवम्बर 2015), प्रकाशन-बेंगलोर (कर्नाटक)

श्रीमती लक्ष्मी गुप्ता-भवन, उद्योग विभाग के पास, सिविल लाइन्स, दतिया-475661 (म.प्र.)

चित्रलेखा : सवाल पाप और पुण्य का

प्रो. कैलाश नारायण तिवारी

प्रो. कैलाश नारायण तिवारी चिंतनशील लेखक, सहृदय वाग्मी हैं। साहित्य अकादमी से 'रसलीन' केन्द्रित मॉनोग्राफ एवं नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित 'विरले दोस्त कबीर के' उपन्यास के कारण लेखक विशेष चर्चित हुए। इन्द्रप्रस्थ भारती, साहित्य अकादमी सहित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सक्रिय लेखन। संप्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में प्रोफेसर पद पर कार्यरत।

प्रेमचंद के बाद भगवतीचरण वर्मा एक ऐसे सशक्त उपन्यासकार हैं, जिन्होंने अपने युग की अधिकांश समस्याओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की कोशिश की है। यूँ तो अपने युग की सभी समस्याओं को अपने लेखन में स्थान देना सरल नहीं होता, पर समाज की जिम्मेदारी से लेखक एकदम से बच भी नहीं सकता। इसलिए वर्मा जी सामाजिक-प्रतिक्रियाओं और चुनौतियों से अछूते नहीं रहे। बल्कि जिन समस्याओं को उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान दिया, काफी हद तक उसे नजदीक से देखने का प्रयास भी किया। वैसे तो रचनाकार का दायित्व भी यही होता है कि वह समस्याओं को अपने तक तटस्थ होकर देखने का प्रयास करे। उसमें

प्रो. कैलाश नारायण तिवारी

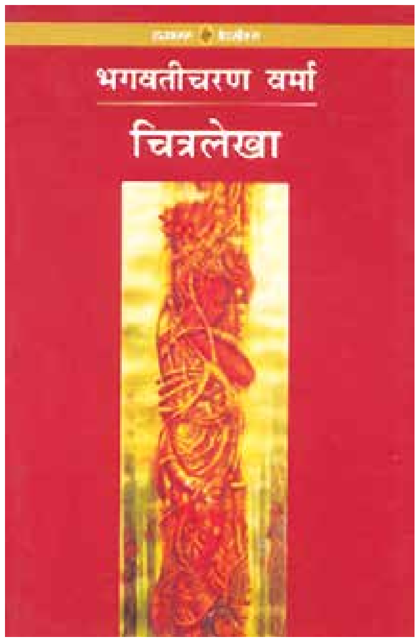

डुबकी लगावे तो मोती की खोज करे। बिना इसके कोई रचना शाश्वत आकार नहीं पाती और प्रभावशाली नहीं होती है। किसी भी देश का समाज अनेकों समस्याओं से घिरा होता है और जो दिखता है, वह कभी-कभी सच नहीं होता। और जो नहीं दिखता कभी-कभी वही सच होता है। अतः रचनाकार का मतलब ही होता है कि वह उसे अपनी सूझबूझ से उसके अन्तस्तल में प्रवेश करे तब सर्जना को आयाम दे।

पाप और पुण्य भी एक तरह का सामाजिक प्रश्न है; समाज के बीच उसे कर्म से जोड़े या धर्म से—यह सवाल व्यक्तिगत स्तर पर भी उठता है और सामाजिक स्तर पर भी। भगवतीचरण वर्मा ने अपने उपन्यास का शुरुआत ही प्रश्न से किया है। जैसे श्वेतांक अपने गुरु रत्नाम्बर से पूछता है कि—''और पाप?'' और गुरु बड़े ही सधे स्वर से उत्तर देता है—''बड़ा कठिन प्रश्न है वत्स! पर साथ ही बड़ा स्वाभाविक भी है। इसलिए जवाब तो देना ही पड़ेगा।'' कहना चाहूँगा कि इस प्रश्न का जवाब ढूँढने में लेखन ने तकरीबन सौ से अधिक पन्ना खर्च कर दिया। फिर भी जवाब नहीं ढूँढ पाया। पाप और पुण्य का प्रश्न यथावत बना ही रहा। केवल उसे परिस्थितियों के हवाले छोड़ दिया गया। परिस्थितियाँ भी बदलती रहती हैं। सो टिकाऊ और तर्कसंगत जवाब कैसे मिल सकते हैं? यही कारण है कि पाप और पुण्य का फैसला स्पष्टतः उपन्यास में नहीं हो सका।

दुनिया का हर साहित्यकार अपनी परम्परा एवं परिवेश से प्रभावित होता है। कभी-कभी उसकी रचना का प्रेरणास्रोत कुछ कालजयी कृतियाँ भी बनती हैं। जिसका अनुशीलन, अनुपालन वह अपने कृतियों में करता है। इस रचना के पीछे का कारण तो लेखक ही बता सकता है, पर ऐसा लगता है कि किसी रचना के कारण से प्रभावित होकर ही लेखक ने इतना दत्तचित्त होकर प्रश्नप्रधान रचना का निर्माण किया। वह कारण क्या था? क्या पाप या पुण्य का सवाल उसके जीवन-क्रम से जुड़ा था? जिससे प्रभावित होकर उन्होंने ऐसी उत्कृष्ट रचना की। सचमुच इसका उत्तर देना मुश्किल लगता है। यूँ तो मनोवैज्ञानिकों का एक मत यह भी है कि रचनाकारों पर उन घटनाओं का प्रभाव अधिक गहरा पड़ता है, जिनका अनुभावन वे वयसंधि में किए होते हैं। इसलिए यह सोचना संगत लग सकता है कि पाप और पुण्य का सवाल वर्मा जी को बचपन से ही सता रहा होगा, जो कालान्तर में एक सशक्त उपन्यास के रूप में आकार

पाया। क्योंकि पाप और पुण्य के केन्द्रीभूत उठाए गए सारे सवाल—यौन-शुचिता और यौन-तुष्टि से भी सम्बद्ध हैं। यहाँ तक कि इस उपन्यास में यौन-शोषण से लेकर यौवन की जरूरत तक की परिस्थितियाँ दिखाई देती हैं। मानव मन के अन्दर उठने वाली काम-भावना, स्त्री-सौन्दर्य, देह के प्रति आकर्षण और दमित-चेतना का ऐसा सहज सूत्र इसमें पिरोया गया है कि एक बार फ्रायड, युंग और एडलर जैसे मनोवैज्ञानिकों की याद आती है। जिस समय लेखक इन प्रसंगों को कथा के माध्यम से चित्रित करता है तो लगता है कि सचमुच वह मनुष्य के कामाचारी-मन का विज्ञान पूरी तरह समझा हुआ है। जैसे—जब लेखक तर्क देता है कि ''क्या प्रेम की स्मृति की टीस मनुष्य जीवन में स्वाभाविक और प्राकृतिक नहीं है?'' ''क्या वेदना को दबाने अथवा उसके प्राकृतिक रूप को कृत्रिम उपायों द्वारा भूलने में अपनी आत्मा का हनन नहीं होता?'' तो लगता है कि यह लेखक का भोगा हुआ सच बोल रहा है।

यह बात सर्वविदित है कि दुनिया की सारी साहित्यिक-कृतियाँ अपने समय की संवेदना को संप्रेषित करने में तत्पर दिखायी देती हैं। क्योंकि साहित्यकार समाज का सबसे अधिक संवेदनशील प्राणी माना जाता है। जो समस्याएँ या घटनाएँ सामान्य व्यक्ति को अधिक प्रभावित नहीं कर पातीं, साधारण मनुष्य की उस पर नजर ही नहीं जाती, साहित्यकार उससे प्रभावित होकर उस पर उच्चस्तरीय सृजन करता है। उसे सु-शब्दों और अपनी भाषा के माध्यम से ऐसी रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है कि पाठकों को उसे अपनी थाती लगने लगती है। इसके बावजूद एक सवाल उठता है कि इस व्यापक समाज में क्या पुण्य है, क्या पाप है? क्या सही है? क्या गलत है? क्या संगत है? क्या असंगत है? इस पर कैसे और क्या एकदम सही-सही निर्णय लिया जा सकता है? यह भी तो हो सकता हे कि जो काम हमें अच्छा लगता है वही दूसरों को बुरा लगे तथा यह भी हो सकता है कि हम जो कर रहे हैं, वह हमारे लिए हमारी दृष्टि से नैतिक है, संगत है। सत्य और सामाजिक हित के लिए है। पर कोई दूसरा वही करे तो हमारी नजर में स्वार्थपूर्ण एवं गलत होगा। क्या उसके क्रियाकलाप में यह भावना नहीं ढूँढी जा सकती कि अन्य का किया गया कार्य अपने फायदे के लिए है। उसमें 'जन-भावना' की रक्षा नहीं दिखायी देती। ऐसी स्थिति में कोई लेखक दावे के साथ कुछ कहना चाहे तो बहुत सबल तर्क देने के बावजूद विचार-भिन्नता की गुजाइश बनी रहेगी। लेकिन एक बात जो शाश्वत है वह यह कि सत्य-सत्य ही होता है और पाप-पाप ही होता है। पाप और पुण्य के बीच कोई शाश्वत रेखा तो नहीं खींची जा सकती। अपने विचारों को अपने तर्क को अपने तईं रखने में ठीक होगा। अतः फार्मूला यही लागू होगा कि पाप और पुण्य का उत्तर एकमात्र यह होगा कि पाप-पाप होता है, और पुण्य-पुण्य होता है। क्योंकि 'सत्यमेव जयते' की भावना ही शाश्वत सत्य है। हम इसको इस तरह भी कह सकते हैं कि समाज की नजर में असंगत, अस्वाभाविक, अनर्गल एवं चिन्ताजनक कार्य मूलतः पाप-कर्म की ही श्रेणी में गिना जाएगा। उसे पुण्य-कर्म का दर्जा तो नहीं दिया जा सका। वह पाप ही होगा। जैसे किसी की हत्या करना अन्ततः या जुर्म करना तो, पाप ही होगा। भले ही उस हत्या के कारण में लोकरक्षण का भाव या सामाजिक-हित छिपा हो। भारतेतिहास में ऐसी ढेर सारी हत्याएँ हुई हैं जो 'पुण्य कर्म' के रूप में स्वीकार की जाती हैं। याद की जाती हैं, महिमामंडित की जाती हैं। मसलन रावण की हत्या, कंस की हत्या, दुर्योधन की हत्या—अक्सर पुण्य-कर्म की कोटि में क्यों रखी जाती हैं? इसीलिए न कि ये सारे हत्या-कर्म व्यक्तिगत भावनाओं से ऊपर मान अपमान से शुरू होकर लोकरक्षा की चिन्ता की परिधि में घटित हुईं। रावण के विनाश में व्यक्तिगत-द्वेष-भाव से ऊपर उठकर धर्म और न्याय की भावना छिपी हुई थी। कदाचित् वह पाप-कर्म था, तो भी पुण्य-प्राप्ति के ही रूप में जन-रक्षा की भावना के साथ घटित होता है। महाभारत में तो शुरू-शुरू में ही तर्क दे दिया गया कि—

''यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।
अभ्युत्थनंअधर्मस्य देवात्मानांसृजाम्यहम्।
परित्राणाया साधूनाम विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।''

इसीलिए तो गाँधी जी की हत्या पाप-कर्म की श्रेणी में गिनी जाती है। क्योंकि उसमें सामाजिक-हित का भाव नहीं था। उस हत्या के मूल में क्रोध था, घृणा थी, प्रतिशोध और आक्रोश था। इसलिए जन-रक्षेतर किसी भी तरह का कार्य अथवा हत्या जैसा घृणित कार्य पाप ही कहा जाएगा। सो पाप और पुण्य को केन्द्र में रखकर लिखा गया 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास भगवतीचरण वर्मा को एक ऐसे रचनाकार के रूप में स्थापित करता है जिसका मन एक ऐसे प्रश्न को हल करने में लीन है, जिसे पूर्णतः किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचाया जा सकता। शायद इसीलिए स्वयं उपन्यासकार भी कोई स्पष्ट राय पाप और पुण्य के बारे में नहीं बना पाता। वस्तुतः वर्मा जी की इस चर्चित कृति में परम्परागत मान्यताओं को नकारने और नवीन प्रतिमानों को स्वीकारने का प्रबल आग्रह दिखाई देता है। अपने आग्रह को बनाए रखने के लिए रचनाकार ने नैतिक जीवन में समाए ऐसे दृष्टांत को केन्द्र में रखा है जो जीवन-जगत् से तो जुड़ा ही है दर्शन से भी उसका गहरा सम्बन्ध माना जाता है।

इस उपन्यास की नायिका चित्रलेखा जो मूलतः राजनर्तकी है। वह नृत्य करती है तो पूरा राजदरबार झूम उठता है। उसके हाव-भाव तथा अंग-संचालन से जो मोहक दृश्य राजसभा में पैदा होता है उसे देखकर सारी जनता, सारा सामंती-समाज चकित हो जाता है। ऐसा लगता है कि कोई रूपसी

अपनी मोहक अदा से दर्शकों को अनुपम-सौन्दर्य का पान करा रही है। क्योंकि उसके व्यक्तित्व और नृत्य-कला में एक अजीब ढंग का आकर्षण और विमोहन था जिसके समक्ष बड़े-बड़े सामंत वर्ग पलक बिछाए तैयार खड़े रहते हैं। लेकिन चित्रलेखा केवल बीजगुप्त में अनुरक्त है। बीजगुप्त ही उसका जीवन है, वही उसका परमेश्वर है। वही उसका अविवाहित, स्वीकृत पति है। सामंतों के बीच वह इज्जत की दृष्टि से देखी जाती है। क्योंकि वह बिकाऊ नहीं है। ओछी और सस्ते किस्म की नर्तकी के रूप में भोग्या नहीं बनती। बल्कि निश्छल प्रेम करने वाली एक स्वकीय भाव वाली प्रेमिका है। इसलिए लेखक ने भी संकेत किया है कि उसका नर्तकी होना कोई गुनाह नहीं। अपराध नहीं, बल्कि गर्व की बात है। बीजगुप्त और अपने सम्बन्धों को लेकर वह चिंतित नहीं है। और न ही किसी के आगे झुकती है। उसमें सौन्दर्य के साथ-साथ वाक्पटुता तथा व्यंग्यात्मकता का अद्भुत संयोग संचरित होता है, जिससे उसके व्यक्तित्व में चार चाँद लग जाता है। जैसे—जब वह कहती है—''श्वेतांक पिपासा तृप्त होने की चीज नहीं होती। आग को पानी की आवश्यकता नहीं होती। उसे घृत की आवश्यकता होती है, जिसमें वह और भड़के। और अधिक अविकल हो।'' तब श्वेतांक एकदम 'बेचारा' बनकर एकटक उसे निहार रहा था। मानो चुपके-चुपके उसके रूप का पान कर रहा हो।

असल में उपन्यास की नायिका चित्रलेखा का अतीत उसकी वर्तमान दशा के लिए ज्यादा उत्तरदायी है। उसके जीवन की शुरुआत एक विधवा नारी से शुरू होकर यौवन के उद्दाम लहरों को पार करते हुए अन्ततः ऐसे मुकाम पर पहुँच जाती है जहाँ बिखरने के अलावा और कोई रास्ता ही नहीं बचता। जीवन की इस यात्रा में उसके भावों, अनुभावों, उद्देश्यों और कार्यव्यापारों में निरन्तर उतार-चढ़ाव आता है। बावजूद इसके वह हर स्थितियों में अपना मनोभाव यानी अपना स्टैन्ड बनाए रखती है। वह यह कि प्रेम ही जीवन है, प्रेम ही माया हे। प्रेम ही देह की तृप्ति है, प्रेम ही जीवन की पुष्टि है। यदि वह आत्मिक है तो कहना क्या? शारीरिक है तो उससे बढ़कर दुःख क्या? उपन्यास पढ़ने से संकेत मिलता है कि चित्रलेखा अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन लुभाने और भर्माने के लिए करती है। शील के प्रति कोई खास चिन्ता उसमें नहीं दिखती। उसकी दृष्टि में देह तो सुख का साधन है, तृप्ति का रस है, जिसमें डूबो तो डूब ही जाओ—याद आता है बिहारी का एक दोहा—

''तन्त्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े बड़े तरे, जे बूड़े सब अंग।।''

इसलिए जब तक जीओ, आनन्द से जीओ। क्योंकि बीजगुप्त के बाद कुमारगिरि की ओर उसका आकर्षण कुछ इसी तरह की बातों की ओर इशारा करता है। पर क्या यह सच है? यदि सच यही है तो फिर दुबारा वह क्यों बीजगुप्त के पास लौटना चाहती है? इस पर पाठकों को विचार करना चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि यहाँ स्वयं लेखक ही डूबने से चूक गया है। वरन् कुमारगिरि भी तो डूबना ही चाहता है। पर कहाँ डूब पाया? अधूरा ही रह गया—उसका रससिक्त-मन। यानी भगवतीचरण वर्मा यहाँ बिहारी के विहार-मन से वंचित रह गए।

चित्रलेखा को पाप और पुण्य का विश्लेषण करने वाली कथा मानने पर बहुत से आलोचकों का मन उद्विग्न हो जाता है। क्योंकि उसमें भारतीय-दार्शनिक और धार्मिक विचारधारा को चुनौती दी गयी है। परिस्थितियों और घटनाओं के वात्याचक्र में फँसे पात्रों के व्यक्तित्व को उलट-पुलट दिया गया है। यानी इस उपन्यास में दो त्रिकोणात्मक कथाओं के प्रेम-जनित-भावनाओं के माध्यम से भ्रमित दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। यही कारण है कि 'चित्रलेखा' के सारे पात्र अपने आप में दार्शनिक हैं, साधक हैं, योगी और उच्चकोटि के भोगी हैं। जो समस्या स्वयं पैदा करते हैं और मानों लेखक से समाधान भी चाहते हैं। अब लेखक भला क्या समाधान करे। जब स्वयं वह उस पर स्पष्ट नहीं है। उदाहरणार्थ शक्ति सम्पन्न योगी कुमारगिरि अंत में पशु की कोटि से भी नीचे गिर जाता है। प्रारम्भ में उसका अनुकरणीय चरित्र योग और तपस्या का प्रतीक लगता है। परन्तु अंत में वही कुमारगिरि जो जनसामान्य से लेकर राजवर्ग के बीच योगी है, धर्म-पालक है, आगे चलकर एक साधारण भोगी-पुरुष जैसा बन जाता है। क्योंकि उसका आत्म-सम्मान, ध्यान और योग अंततः अहंकार और कुमार्ग में जकड़ जाता है। इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि स्त्री को अंधकार, मोह, माया समझने वाला एक बाल-ब्रह्मचारी बाद में स्वयं ही सौन्दर्य का शिकार हो रूप का गुलाम बन जाता है। शुरुआती दिनों के कुमारगिरि को देखें तो शून्य में विचरण करने वाला यह योगी जीवन में माया के वात्याचक्र में न पड़कर सम्पूर्ण जीवन को योग के सहारे बिता देना चाहता था। लेकिन अंतिम दिनों में ऐसा परिणाम दिखता है कि वासना को पाप समझने वाला योगी स्वयं वासना का दास बन जाता है। वह यहीं नहीं रुकता। झपटमार-प्रेमियों और एकतरफा प्रेमियों की तरह प्रेम प्रकट करके या बिना प्रेम के सत्व को समझे, बिना भम्रत्व को जानें, चित्रलेखा की देह के प्रति योग को बदनाम कर बैठता है। क्योंकि वह चित्रलेखा के प्रेम में फँसा है। राग, विराग, प्रेम, सत्प्रेम, कर्तव्य और अनुराग जैसे शब्द की उल्टी-सीधी व्याख्या करने लगता है। वह चित्रलेखा को भरमाने वाली भाषा में समझाता है कि—''जीवन का कार्यक्रम है रचनात्मकता न कि विनाशात्मकता। मनुष्य का कर्तव्य है—अनुराग, विराग नहीं। ब्रह्म से अनुराग के अर्थ होते हैं—ब्रह्म से पृथक् वस्तु की उपेक्षा।... विरागी कहलाने वाला व्यक्ति

वास्तव में विरागी नहीं वरन् ईश्वरानुरागी होता है।''

कुमारगिरि के कहने का आशय चित्रलेखा समझ रही थी और उससे बचने का अवसर तलाश रही थी, तभी एकाएक कुमारगिरि चित्रलेखा को आलिंगनपाश में बाँध लेता है। अधर से अधर मिलाकर कहता है—''नर्तकी! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।'' वह चित्रलेखा के प्रेम में डूब जाता तब तो कुछ गुंजाइश भी कही जाती लेकिन चित्रलेखा के नकारने पर उसका प्रेम शीघ्र ही प्रतिशोध में बदल जाता है। अपनी कमजोरियों को छिपाने का साधन बन जाती है—चित्रलेखा। देखिए योगी महाराज क्या कहते हैं चित्रलेखा से—''देवी! तुम्हें मेरे साथ रहना पड़ेगा। अपने ऊपर प्रयोग करने का एक साधन मुझे चाहिए। मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा।'' यहाँ आकर वह सचमुच एक खलनायक जैसी भूमिका निभाने लगता है। ऐसी स्थिति में सवाल उठता है कि एक महान योगी जो देश, दुनिया में मान, सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, जिसके लिए राजदरबार का दरवाजा हमेशा खुला मिलता है, जो एकान्तवासी है, साधक है, योग का रक्षक है—फिर वह देखते ही देखते वासना का शिकार क्यों हो जाता है।

मित्रों! भारतीय सांस्कृतिक चिन्तनधारा में मानव-जीवन को चार पुरुषार्थ में बाँटा गया है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। यदि इनके अनुसार व्यक्ति जीवन जिए तो सफलता उसके पीछे-पीछे चलती है। यदि इनमें एक का भी सन्तुलन बिगड़ गया तो किसी भी मनुष्य की दशा कुमारगिरि जैसी ही होती है। असल में कुमारगिरि 'काम-भावना' का अर्थ और उसकी अपराजेय-शक्ति नहीं समझ सका था। 'धर्म' और उसके तात्विक रूप को तो वह जानता था। 'अर्थ' के प्रति उसके मन में कोई विशेष आग्रह नहीं था। 'मोक्ष' का अभिलाषी था। इसी कारण संसार भी त्याग दिया था। लेकिन यदि वह 'काम' को जानने के बाद संसार छोड़ता तो पुनः गृहस्थ जैसे जीवन में आने के लिए विवश नहीं होता। आपको याद होगा कि बीजगुप्त के साथ जब चित्रलेखा पहली बार कुमारगिरि से मिली थी तो उसके ऊपर उसने क्या व्यंग्य किया था। उसने कहा था—''प्रकाश पर लुब्ध पतंगे को अन्धकार का प्रणाम है।'' यह व्यंग्य इसलिए किया था क्योंकि पहली ही मुलाकात में कुमारगिरि की अन्तस्तल की दुर्बल-चेतना को वह समझ चुकी थी। जिस पर पर्दा डालते हुए कुमारगिरि ने बीजगुप्त से कहा था—''अतिथि! मैंने इस कुटी में स्त्री को आशय देने में संकोच किया था। वह केवल इसलिए कि स्त्री अंधकार है, मोह है, माया है, और वासना है। ज्ञान के आलोकमय संसार में स्त्री का कोई स्थान नहीं।'' यह वाक्य सुनते ही चित्रलेखा समझ चुकी थी कि कुमारगिरि एक कमजोर व्यक्ति है। वह योग के नाम पर साधक होने का नाटक कर रहा है। साथ ही नासमझ भी है। वरन् उसे तो स्त्री के बारे में ऐसी कटुक्ति कहने की क्या जरूरत थी। पर लेखक भी तो महान होता है। कथा की बनावट तो वही करता है। जो चाहता है वही भाव पात्रों के माध्यम से कहलवाता है। यद्यपि यहाँ योगियों के संदर्भ में दिया गया तर्क 'चारुचन्द्र लेख' के संदर्भ से भिन्न नहीं है। द्विवेदी जी ने भी योगियों के बारे में ऐसा ही प्रश्न उठाया था अपने उस उपन्यास में।

यह सच है कि ज्ञान के क्षेत्र में स्त्री की कोई आवश्यक भूमिका नहीं पड़ती। कोई साधक साधना के दौर में स्त्री से दूर रहे तो अच्छा ही होगा। क्योंकि स्त्री-शक्ति के आगे पुरुष की साधना पराभूत हो जाती है। यहाँ आकर मुझे कबीर की याद आती है। उन्होंने तो तर्क दे दिया था कि—''घर में जोग, भोग घर में ही—घर तजि बन नहि जावै। अवधू सो नर हमको भावै।'' यानी भोग क्या है? वासना क्या है? माया क्या है? पहले इसे समझ लो। और इसे तभी समझ पाओगे जब संसार के बीच रहकर सांसारिक सृष्टा को जानोगे। क्योंकि बिना संसार को जाने मोक्ष का रास्ता नहीं खुलता। और योग की चेतना शुद्ध रूप में परम लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ती। कुमारगिरि ने संसार को बिना जाने ही संसार त्याग दिया था। और जब संसार (माया) अपने सारे संसाधनों (सौन्दर्याकर्षण) के साथ उसके समक्ष आया तो उसकी सारा साधना धरी की धरी रह गयी। वह एक ही झटके में परास्त हो गया। अब इसे पाप कहें या पुण्य? यह अपनी-अपनी समझ पर आधारित है। लेखक ने इसे परिस्थितियों पर छोड़ दिया है। पर मैं तो ऐसा नहीं कह सकता। मैं तो कबीर की वाणी स्वीकार करता हूँ कि—पहले संसार को समझो, उसके रहस्य में घुसो, तब साधना भी सफल होगी और पाप एवं पुण्य का रहस्य भी समझ में आएगा। श्वेतांक और विशाल देव को लेखक पहले संसार का सत्य ही समझाता है—यशोधरा से विवाह करवाकर। यदि वे प्रेम-सागर में नहीं डूबते तो उनका भी वही हश्र होता जो कुमारगिरि का हुआ था। रही बात बीजगुप्त की तो वह भोगी होता हुआ भी त्यागी और सुलझा हुआ इन्सान लगता है। कदाचित् वह प्रेम के सच को भी समझता हो। इसलिए इस उपन्यास का नायक अन्ततः वही सिद्ध होता है। यद्यपि लेखक पाप और पुण्य को परिस्थितियों के ऊपर छोड़ देता है, जो कहीं से तर्कसंगत नहीं लगता। क्योंकि दोनों ही बातें ठीक-ठीक ढंग से भारतीय चिंतनधारा में डिफाइन कर दी गयी हैं। कोई द्विविधा-ग्रस्त सोच वहाँ नहीं है। इसलिए पाप और पुण्य का सवाल व्यक्तिपरकता से ज्यादा सामाजिकता से जुड़ा हुआ है। सो उसे उसी परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है। किसी परिस्थिति या पूर्वग्रह से नहीं।

द्वारा जयपाल सिंह, 36, डूप्लेक्स, द्वितीय तल,
नजदीक एम.सी.डी. स्कूल, गुड़मण्डी,
दिल्ली-110007

राष्ट्रीय जागरण के प्रेरणापुंज : पंडित माखनलाल चतुर्वेदी

डॉ. कल्याण प्रसाद वर्मा

कई पुस्तकों का लेखन। 'भारतीय कृषि पत्रकार संघ' नई दिल्ली द्वारा डॉ. पंजाब राव एस. देशमुख सम्मान, साहित्य मण्डल श्रीनाथ द्वारा पत्रकार-प्रवर उपाधि से सम्मानित। वर्तमान में केन्द्रीय लेखा-विभाग से अधिकारी पद से सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

पत्रकारिता के पुरोधा माखनलाल चतुर्वेदी ने पत्रकारिता को सकारात्मक दिशा दी।

सिर पर प्रलय नेत्र में मस्ती मुट्ठी में मनचाही लक्ष्यमात्र मेरा प्रियतम है, मैं हूँ एक सिपाही। ये शब्द थे स्वातंत्र्य चेतना के पोषक एक भारतीय आत्मा के कवि एवं 'दादा' के नाम से जाने जाने वाले और राष्ट्रीय भावना को सदैव अपनी कविताओं में मुखर करने वाले तथा राष्ट्रीय जागरण के सेनानी पत्रकार पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के, जिनका जन्म 4 अप्रैल, 1889 को बाबई, जिला होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ। शुरू में प्राथमिक शिक्षक के रूप में सेवा प्रारम्भ (1907) की और सन् 1913 तक एक आदर्श शिक्षक की भूमिका निभाई, साथ ही अपने विद्यार्थियों के मन में निर्भीकता, देश प्रेम और मानव अनुभूतियों को समझ सकने की कसक पैदा करने में समर्थ हुए कि उनकी स्मृति आज भी जीवित है।

प्रारम्भ में एक हस्तलिखित 'भारतीय विद्यार्थी' नामक पत्रिका निकाली। पं. माधवराव सप्रे द्वारा संपादित 'हिन्द केसरी' की निबन्ध प्रतियोगिता में प्रथम आने पर सप्रे जी के संपर्क

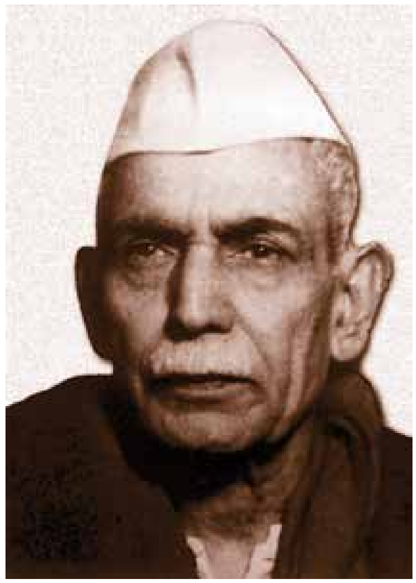

में आए। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध प्रगाढ़ हुआ जो जीवनपर्यन्त तक बना रहा। वर्ष 1913 में अध्यापकी छोड़ पूर्णकालिक पत्रकारिता प्रारम्भ की। तब उन्होंने 'प्रभा' का संपादन संभाला। उसी दौरान गणेश शंकर विद्यार्थी से उनका परिचय हुआ। उनके देश-प्रेम और सेवाव्रत का पंडित जी के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। चूँकि वह पूरा युग संघर्ष, त्याग, तपस्या और राष्ट्रप्रेम का युग था, राष्ट्रीय जागरण समन्वित काव्य-सृजन की माँग थी, ऐसे में मातृभूमि को परतन्त्रता की बेड़ियों से छुटकारा दिलाने हेतु काव्य-सृजन की ओर पं. माखनलाल जैसे क्रान्तिवीर का प्रवृत्त हो जाना स्वाभाविक ही था। अतः स्वाधीनता आंदोलन के धधकते माहौल में चतुर्वेदी जैसे प्रखर कवि को अपने काव्य-सृजन से राष्ट्र की आत्मा को झकझोरते देर न लगी।

अंग्रजी हुकूमत के खिलाफ आजादी की लड़ाई के हथियार के रूप में जबलपुर से 1920 में 'कर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र का संपादन और प्रकाशन प्रारम्भ किया। 'प्रभा', 'प्रताप' और 'कर्मवीर' के माध्यम से अपनी लेखनी और वाणी दोनों का ही सदुपयोग राष्ट्रहित में किया। कहना न होगा पत्रकार के रूप में उन्होंने न केवल राष्ट्रीय जागरण का भैरवी मंत्र फूँका बल्कि 'कर्मवीर' के द्वारा अनेक लेखकों और कवियों को राष्ट्रीय धारा से जोड़ने की प्रचुर प्रेरणा प्रदान की। आन्दोलनात्मक कविताओं के साथ-साथ राष्ट्र के गौरव गान समन्वित कविताएँ लिखीं। राष्ट्रीय भावना मुखरित हुई। यों राष्ट्रीय कविता के शलाका पुरुष मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिंह दिनकर और सुभद्राकुमारी चौहान आदि प्रभृति कवि भी रहे हैं, परन्तु स्वाधीनता संग्राम में तन-मन से सहभागिता करने वालों में राष्ट्रीय जागरण के कवि रूप में पं. माखनलाल चतुर्वेदी का भी कोई सानी नहीं है। यदि हम काव्य-सृजन के उद्देश्यों पर दृष्टिपात करें तो काव्य-सृजन का एक उद्देश्य 'वयं राष्ट्रै जाग्रयाम्' अर्थात् 'मैं राष्ट्र को जाग्रत रखूँगा' भी रहा है। इस उद्देश्य की प्रतिपूर्ति की दृष्टि से पं. माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा लिखी गई राष्ट्रीय जागरण समन्वित अनेक कविताएँ इसका पुष्ट प्रमाण हैं।

राष्ट्रीय जागरण के सेनानी पत्रकार ने 'प्रभा' और 'कर्मवीर' पत्रों में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ अनेक अग्निधर्मा आलेख और ओजस्वी संपादकीय लिखे, फलतः पुरस्कार

स्वरूप उन्हें लगभग बारह बार कारावास झेलना पड़ा। उनकी प्रमुख रचनाओं में 'कृष्णार्जुन-युद्ध' (नाटक), 'हिमकिरीटिनी', 'हिमतरंगिणी', 'साहित्य देवता' व 'युगाचरण' आदि उल्लेखनीय हैं, तथापि उनके द्वारा सृजित उनकी 'पुष्प की अभिलाषा' कविता सृजन-यात्रा की अमिट मील का पत्थर है। राष्ट्रीय जागरण के इस विरल कवि, स्वातन्त्र्य योद्धा, पत्रकार, संपादक का देहावसान 30 जनवरी, 1968 को हुआ।

हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में डॉ. राममनोहर लोहिया को किसी ने सलाह दी कि भाषा के प्रश्न पर वे 'दादा' का समर्थन जुटाएँ। इसीलिए सन् 1984 में उनसे चर्चा के लिए राममनोहर लोहिया खंडवा गए थे। (दृष्टव्यः साक्षात्कार 'धर्मयुग', 25 मार्च, 1984) लोहिया जी ने 'दादा' से कहा कि ''दादा, हमारी पार्टी की योजना अंग्रेजी अखबारों का 'बोनफायर' (होली जलाने) की है। हिन्दी के विकास में यही बाधक है। ये ही गुलाम वृत्ति को कायम रखे हुए हैं। गाँधी जी ने जिस तरफ विदेशी कपड़ों का 'बोनफायर' कर खादी को प्रतिष्ठित किया था, उसी तरफ अंग्रेजी पत्रों के 'बोनफायर' से हिन्दी और हिन्दी पत्रकारिता की रक्षा की जा सकती है।''

'दादा' ने कहा, ''लोहिया जी, हिन्दी के प्रति चिन्ता से मुझे प्रसन्नता हुई। पर यदि हम अंग्रेजी अखबारों की होली जलाते हैं, तो हम अपनी ही कमजोरी का इजहार करते हैं। स्वतन्त्रता से पहले भी हमने इस तरह नहीं सोचा। हमारी हिन्दी और हिन्दी पत्रकारिता को गैर-हिन्दी लोगों का तन-मन-धन से समर्थन मिलता रहा है। स्वतन्त्रता की लड़ाई में हिन्दी पत्रकारिता ने यश प्राप्त किया। 'प्रताप' तो अपने ही बल पर अंग्रेजी अखबारों से टक्कर लेता रहा। और जो हिन्दी, अंग्रेजी अखबार को जलाकर जिएगी, वह कितने दिन जिएगी?''

लोहिया ने कहा, ''हमें तत्काल परिणाम चाहिए।'' जवाब मिला, ''मुझे परिणाम से ज्यादा चिन्ता यह है कि कहीं हम वह वातावरण ही नष्ट न कर दें, जिसमें परिणाम जन्म लेते हैं। मुर्गी मार डालने से अंडे नहीं मिलते। मेरी तो प्रार्थना है कि दूसरे का घर उजाड़ने के बजाए हमें अपने घर की सार-सँभाल करनी चाहिए।'' हिन्दी व अंग्रेजी भाषा पर 'दादा' ने जो विचार प्रकट किए, वे आज भी कालजयी हैं।

अपनी लेखन दृष्टि को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि ''मूलतः मैं तो किसी के लिए लिखा करता हूँ। मेरे एक समीक्षक ने लिखा था कि देश भक्ति न लिखता तो मैं श्रृंगार लिखता। मेरे विचार से यह उनका सम्पूर्ण सत्य नहीं है। श्रृंगार की परम सुकोमलता और आकर्षणशीलता जब मेरी आस्थाओं को गुदगुदा उठती है तब मैं उसे कभी देश पर और कभी देव पर, कभी मानव पर और कभी पशु पर चढ़ाने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। कहना न होगा 'पुष्प की अभिलाषा' कविता उनकी इसी सृजन प्रेरणा का सुफल हो तो कोई अत्युति नहीं। यों यह अमर रचना स्व. श्री गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा कवि के जेल से छूटते समय माँगे गए सन्देश के रूप में लिखी गयी थी जो सर्वप्रथम 'प्रताप' के 10 अप्रैल, 1922 के अंक में प्रकाशित हुई थी।

भरतपुर में (1927) हुए सम्पादक सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण से पत्रकार जगत को गैर-जिम्मेदारी के खतरों से आगाह किया था। वह भाषा एक ऐतिहासिक दस्तावेज बना हुआ है। 'कर्मवीर' के सम्पादक दादा माखनलाल चतुर्वेदी को पत्रकारिता की शक्ति का जहाँ बखूबी अहसास था, वहीं उसकी मर्यादा की भी चिन्ता थी। भरतपुर सम्पादक सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दादा ने आगाह करते हुए कहा था कि ''यदि समाचार पत्र संसार की एक बड़ी ताकत है, तो उसके सिर जोखिम भी कम नहीं।... जगत में समाचार पत्र यदि बड़प्पन पाए हुए हैं तो उनकी जिम्मेदारी भी भारी है। बिना जिम्ममेदारी के बड़प्पन का मूल्य ही क्या है? और वह बड़प्पन तो मिट्टी के मोल का हो जाता है जो अपनी जिम्मेदारी को नहीं सँभाल सकता। प्रकारान्तर से सम्पादक संस्था की जिम्मेदारी को बताते हुए सम्पादक को सदैव सचेत रहने वाली बात और पत्रकारिता के प्रति दादा की विश्वजनीन दृष्टि अविस्मरणीय ही है।'' (धर्मयुग, 31 जुलाई, 1988, पृ. 12)

हालांकि राष्ट्रप्रेम की नयी चेतना जाग्रत करने की दृष्टि से उनकी कविताएँ सदैव अविस्मरणीय बनी रहेंगी तथा उन्होंने अपने भाषण में दशकों पूर्व बिना बिकी मीडिया की ताकत को संदर्भित भी किया। बकौल वरिष्ठ पत्रकार श्री विजयदत्त श्रीधर के उन्होंने कहा था कि पत्रकारों को अपनी कीमत नहीं लगने देना चाहिए। कीमत सौ-हजार-लाख कुछ भी लग सकती है, लेकिन लगेगी केवल एक बार और उसके बाद शून्य होकर रह जाएगी। मीडिया के सभी पक्षों को इस बात की गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि बिना बिकी मीडिया की ताकत अपार होती है। पत्रकारिता में 'पेड न्यूज' की निर्बलता के बारे में पत्रकारी जगत को उनकी सावचेतनापरक भविष्य दृष्टि कम प्रासंगिक नहीं। कहना न होगा पं. माखनलाल चतुर्वेदी का पत्रकारिता कृतित्व अपने आप में पत्रकारिता का एक शाश्वत विश्वविद्यालय है, जो आगामी पीढ़ियों को सदियों तक राष्ट्रीय जागरण और हिन्दी पत्रकारिता के पथ को आलोकित करता रहेगा। हमें उनकी बताई राह पर चलने का पूरी ईमानदारी से प्रयास करना होगा। उनकी राह पर चलकर ही हम पत्रकारिता को सामाजिक सरोकार से जोड़ सकते हैं। हमें समझना चाहिए कि ध्येयनिष्ठ पत्रकारिता से ही लोकशाही को मजबूती प्रदान की जा सकती है।

111/283, अग्रवाल फार्म, मानसरोवर,
जयपुर-302020 (राजस्थान)

आचार्य शिवपूजन सहाय : ललित निबन्ध के विशिष्ट शैलीकार

डॉ. अनिल कुमार

केदार गौरी, अचला, स्वर मंजरी, अर्द्धांगिनी (उपन्यास), गांव पुकारे सांझ सकारे, बेअियाँ (मुक्तक), सोच में डूबी मही है, धड़कन गीत हुई (नवनीत संग्रह)। रायबरेली शोध-संस्थान एवं दूरसंचार निगम से सम्मानित। कॉलेज ऑफ आर्ट, साइंस एवं टेक्नोलोजी अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त। सम्प्रति स्वतंत्र लेखन।

कदाचित् यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारंभ ललित गद्य-लेखन से किया था जिसकी ऊर्जस्विता के कारण ही उन्हें इस प्रथम चरण में 'हिन्दी भूषण' की उपाधि प्राप्त हुई। अपने युग के लिए गद्य शैली के क्षेत्र में वह एक क्रान्तिकारी प्रयोगधर्मी गद्य था जिसमें एक चमत्कारिक नैसर्गिकता थी। उन गद्यों में एक ओर यदि अनुप्रास और अलंकार की विद्युतज्योति दिखायी देती थी तो दूसरी ओर ठेठ देहात की बोलचाल का रस-रंग रसा-बसा था और तीसरे ओर 'मतवाला' की टकसाल में ढला हास्य-व्यंग्य का तीर-कमानी मस्तमौलापन कूट-कूटकर भरा था।

साहित्य की इस कुजात विधा को आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपनी शैली की कलात्मकता से अभिजात बना दिया। अपनी विशिष्ट भाषा, शिल्प और प्रस्तुति के स्तर पर ललित निबंध को एक पृथक पहचान दी और संपूर्ण हिन्दी जगत में वह विधा धीरे-धीरे हिन्दी की एक कलात्मक विधा के रूप में विकसित एवं स्वीकृत हो गयी।

यों तो आज साहित्य की हर विधा में हर विषय को साहित्य की वस्तु बनने का अधिकार मिल गया है, परन्तु व्यक्तिगत निबंध या ललित निबंध ने अपने जन्मकाल से ही किसी भी विषय पर साहित्य रचने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। आज संपूर्ण विश्व में कम से कम सिद्धान्त के स्तर पर हर मनुष्य को समान सम्मान और दर्जा देने का संघर्ष चल रहा है। ललित निबंध शायद इसी धारणा का साहित्यिक प्रतिफलन है।

साहित्य के रूपों की नवीन रचना या आविष्कार अक्सर इस अहंकार के तहत संभव होता है कि मैं कुछ लिखूँ वह औरों से सर्वथा भिन्न हो। मौलिकता के इस प्रयास में न केवल नयी साहित्यिक विधाओं का आविष्कार होता है, बल्कि यह भी होता है की उक्त नयी विधा के लेखकों की एक जमात तैयार हो जाती है। फ्रांसीसी विद्वान और रचनाकार मिशल द मोंतेन भी इसी श्रेणी में आते हैं। वे चाहते थे कि कुछ ऐसा लिखा जाए जो तत्कालीन सभी साहित्य-रूपों से सर्वथा भिन्न और ताजा हो। उन्होंने एक विधा का आविष्कार किया जो तत्कालीन समस्त साहित्यिक विधाओं से भिन्न थी। उनकी वे रचनाएँ एक नई दुनिया की चीज थी। उन रचनाओं की मुख्य रूप से तीन विशेषताएँ हमारे सामने आती हैं—

(1) तात्कालिक प्रयास या आशुप्रयास द्वारा रचित।

(2) कठोर बंध यानि वाक्य विन्यास का उत्कृष्ट नियंत्रण।

(3) पांडित्य के बोझ से मुक्त।

मोंतेन (Montaigne) के नूतन साहित्य रूप में उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त शैली की आत्मीयता और इत्मीनान का आत्म-संवाद भी है।

निबंध की शास्त्रीयता पर विचार करने वाले प्रथम सिद्धान्तकार और निबंध लेखक मोंतेन के बाद इस गंभीरतापूर्वक सिद्धान्तोद्भावन करने का काम डॉ. जानसन ने किया। उनकी परिभाषा (Essay is a loose sally of mind and irregular, indigested piece, not a regular and orderly performance.) मानस का स्वच्छन्द विचरण निबंध में होता है। अनियंत्रित होकर मन का स्वच्छन्द घूमना ही निबंध का स्थापत्य है, उसका शिल्प है। उन्होंने निबंध के सिद्धान्त निरूपण के प्रसंग में जो तात्विक बात कही है, वह यह कि निबंध मन की अनियंत्रित और स्वच्छंद गति एवं रमण की तरह ही लेखन की एक स्वच्छंद और कलात्मक विधा है।

डॉ. जानसन की उक्त परिभाषा में 'लूज' (Loose) शब्द महत्व का है। इसका आशय बोधगत, प्रतिक्रियागत और उत्तेजना से जुड़े मानसिक उद्वेलन के अभिव्यक्त प्रसंगों का जिस साहित्य रूप में उपस्थापना होता है, वही ललित निबंध की संज्ञा पाता है। ऐसे में कहा जा सकता है कि निबंधकार जीवन के उपान्त या हाशिए पर बैठकर ही वस्तुओं को देखता है। मनोदशा की इस उद्दीप्ति की अभिव्यक्ति ही निबंध है।

डॉ. जानसन के बाद अठारहवीं शताब्दी में निबंध पर कुछ विचारकों ने शास्त्रीय तथ्यों का निरूपण किया जिनमें स्टील और एडीसन का नाम प्रमुख है। इस सदी के निबंध लेखकों ने कल्पित पात्रों से काम लेना शुरू किया और उन्हीं को आधार बनाकर व्यंग्य रचनाएँ करने लगे। इनकी रचनाओं में समाज कल्याण और मनोरंजन का सावधान समन्वय किया गया। विचारों और भावों में रोचक भटकाव और असमंजस द्वारा निबंध को अधिकाधिक आनन्ददायक बनाकर प्रस्तुत करने की होड़-सी लगी रही।

उपर्युक्त सैद्धान्तिक विवेचन का उद्देश्य यह है कि आचार्य शिवपूजन सहाय के निबंधों पर मोंतेन, जानसन, स्टील और एडीसन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, किन्तु भारतीय निबंधकार होने के कारण भारतीयता भी उनके निबंधों में पूर्णतः समाहित है। यही कारण है कि डॉ. हरिहरनाथ द्विवेदी ने 'निबंध साहित्य और प्रयोग' में यह लिखा कि–''आचार्य शिवपूजन सहाय गंगा की धारा की तरह लिखने वाले और गाँधी की वाणी बोलने वाले साहित्यकार थे। गंगा की धारा से संकेत उनकी शैली की निर्मलता तथा प्रवाहमयता की ओर है।'' गाँधी की वाणी से तात्पर्य स्वयं अपने और दूसरों को मान प्रदान करने वाले उनके उदार और सात्विक स्वर से है। जहाँ तक समग्र व्यंजित व्यक्तित्व का प्रश्न है, उनके निबंधों में भी उनके सरलशील का परिचय मिलता है। राष्ट्र और समाज के लिए उपयोगी निबंधों में उनकी आदर्शप्रियता, भावुकता और भक्ति भावना देखने को मिलती है। उनके ऐसे भी निबंध हैं, जो विनोद, व्यंग्य और उमंग की दशा में लिखे गए हैं, जिनमें किसी मतवाद का आग्रह नहीं है, मत-परिवर्तन का उद्देश्य नहीं, जिनमें आनन्द ही प्रधान है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि आचार्य शिवपूजन सहाय हिन्दी गद्य विकास के एक प्रमुख पड़ाव माने जाते हैं। 'नकेनवाद' के श्री नरेश यह मानते हैं कि आधुनिक हिन्दी गद्य के तीन शिखर हैं–महावीर प्रसाद द्विवेदी, शिवपूजन सहाय और नलिन विलोचन शर्मा।[2] डॉ. रामविलास शर्मा मानते हैं कि शिवपूजन सहाय जी द्विवेदी युग के सिद्ध गद्यकार थे। गद्य की प्रायः समस्त विधाओं और प्रकारों में उन्होंने लिखा और सर्वोत्तम और विशिष्ट लिखा। दूसरे लेखकों की रचनाओं के संशोधन-परिवर्धन में इतना अधिक समय लगाया कि अपने युग के समस्त गद्य लेखन से सुपरिचित होकर उसे अधिकृत करने में सफलता पायी और मनोवांछित अनेक दिशाओं में विकसित किया। इसीलिए शिवपूजन बाबू का व्यक्तित्व द्विवेदी युग के सबसे बड़े और सबसे ऊँचे गद्यकार के रूप में स्थापित हैं।[3]

गद्य को कवियों की कसौटी कहा जाता है तब अचरज होता है कि गद्य तो निर्बन्ध विधा है, उसमें कविता जैसा छन्दों का बंधन नहीं है। किन्तु जब शिवपूजन सहाय के गद्य लेखन का विश्लेषण किया जाता है तो अनूठे नियंत्रित पद-विन्यास और वाक्यों की बनावट में कलात्मक और संतुलित प्रावधान देखकर गद्य लेखन के आत्मनियंत्रण पर चकित रह जाना पड़ता है। प्रस्तुत उद्धरण में उपरोक्त विवेचित तथ्य पूर्णतः समाहित हैं–''ऐ मेरी पूजनीया जननी! आ! हम प्रेम के हिंडोले में झूला झूलते ही जाएँ, फूलते ही रह जाएँ! मेरा तेरा अलौकिक प्रेम देखकर, बदली बरसती रह गयी! चाँदनी तरसती रह गयी! आग लहराती रह गयी। मयूरी नाचती रह गयी। शारदा सोचती रह गयी और लक्ष्मी संकोचती रह गयी।[4]

शिव जी जैसे निबंधकार के रचना-कौशल से निबंध ने आत्मकथा को भी आत्मसात् कर लिया। 'मेरी राम कहानी', 'मैं हजाम हूँ', 'मैं धोबी हूँ', 'मैं रानी हूँ', 'मैं अंधी हूँ' आदि निबंध आत्मवृत मात्र हैं। यहाँ लिखवाता तो लेखक अपने मन की बात है लेकिन हजाम या धोबी को व्याज रूप से वक्ता बना देता है। ऐसे निबंधों की पठनीयता विषय को महत्वपूर्ण बना देती है–''मैं हजाम हूँ। अच्छी तरह हजामत बनाता हूँ। जी लगाकर बना दूँ, तो केश पखवारे तक न पनपें–रोएँ भी न अँकुरे। मगर जी लगता नहीं। जब तक मेरे छुरे को 'छप्पन छुरा'–कोई छैल-छबीला नहीं मिलता। मिल गया तो छुरा रसे-रसे चलने लगता है। अगर संयोग से कोई गण्डपाताली मिल गया, तो छुरा छूटकर चल पड़ता है। इसीलिए कपोलपाताली मेरे डिग फटकते ही नहीं। मेरी उन्मादिनी उँगलियाँ जब गालों को गुदगुदाने लगती है, तब रसज्ञों को नींद आने लगती है।''[5] निबंधकार के रूपकोक्त-उपहास का केन्द्रीय अभिप्राय धीरे-धीरे प्रकट होता है। हजाम को वैयक्तिक दृष्टि समष्टि में देखा गया है।

शिवपूजन सहाय विषय पर आक्रमण करने के सभी संभव उपादानों के स्वामी थे। इसीलिए विषय पर प्रहार करते समय उन्हें औजारों की कमी नहीं होती थी। परन्तु इस प्रक्रिया में वे आक्रमण की विविध विधियों का जिस कौशल और सिद्धि के साथ उपयोग करते थे, वह किसी भी ललित निबंधकार के लिए ईर्ष्या का विषय है। 'मैं हज्जाम हूँ' में हजामत की अर्थध्वनि का विस्तार करते हुए उन्होंने समाज के किसी भी वर्ग को नहीं छोड़ा है–''आजकल हजामत का पेशा बहुतों ने अपना लिया है। आँखें खोलकर चारों ओर देख लीजिए। यदि कोई नई उमंग का नेता है तो निस्संदेह नापित भी है; क्योंकि जनता की हजामत बनाना ही उसका बँधा रोजगार है। दुनिया की सरकारें प्रजा की हजामत बनाती हैं। निरंकुश लेखक भाषा की हजामत बनाता है। स्वयंभू कवि छन्दों की, डॉक्टर मरीजों की, वकील मुवक्किलों की, टिकट चेकर मुसाफिरों की, दुकानदार ग्राहकों की, पंडा तीर्थयात्रियों की, समालोचक लेखकों की,

सम्पादक पारिश्रमिक की, प्रकाशक लेखक की और अनुवादक मूल भावों की हजामत बनाता है।''

हजामत का जो व्यंग्यार्थ है, उसकी व्याप्ति में समाज की विसंगति और असंगति के परिवेश में हर कोई एक दूसरे को ठग रहा है। इतना बड़ा प्रहार समाज के उस ढाँचे पर जिसमें स्वयं शिवपूजन सहाय को रहना पड़ता था, आज भी विस्मयजनक लगता है। किन्तु उनका प्रहार ऐसा था कि उसमें कला रस, भाषा रस, भंगिमा रस, मुहावरा रस, अलंकार रस अर्थात सभी प्रकार के रसों से सिक्त उनके आक्रमण प्रहार को भी नखक्षत जैसा मधुर और ग्राह्य ही नहीं, ललित बना देते हैं। इसीलिए उनकी आक्रमण शैली की मार माधुरी की मार है।

आचार्य शिवपूजन सहाय के हास-परिहास-उपहास और व्यंग्य में बेधकता है, किन्तु आक्रामकता नहीं। वे विषय को मन की मुक्तावस्था तक ऊपर उठाते हैं, पुनः उसकी रूह निकालते हैं, उसका विश्लेषण करते हैं, उसकी चीड़-फाड़ द्वारा उसके भीतर छिपे बिन्दुओं को उभारते हैं और उस सारी प्रक्रिया में उनका लेखन कलात्मकता के स्तर से नीचे नहीं उतरता।

वस्तु या विषय में चीरा लगाकर उसकी रूह निकाल लेना एक सधे हुए शल्य चिकित्सक के लिए ही हस्तालकवत् होता है। उनके हाथ में वह कौशल था कि वे पर्यायवाची मुहावरों या शब्दों द्वारा किसी तत्व का गंभीर मंथन करते थे और भरी-पूरी सफलता के साथ अभीष्ट का नवनीत प्राप्त कर लेते थे। प्रस्तुत उद्धरण में उनका उपरोक्त कौशल द्रष्टव्य है—''हृदयहीन है, बेलौस है, रूखा है, निरस नींबू है, मक्खीचूस है, शीलसंकोच घोलकर पी गया है, आँखों का पानी ढल गया है, लिहाज को बासी मुँह लील गया है, तोताचश्म है, सूरतहराम है, न कहते देर न उलटते देर, गिरगिट की तरह रंग बदलता है, सोनार का सपूत है, चाणक्य का चचा है।''

इसी तरह 'प्रोपेगण्डा का प्रताप' में वे विषय का प्रारूप इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—''वह चाहे तो पानी में आग लगा दे, अमावस को पूर्णिमा करके दिखा दे, तिल का ताड़ और राई का पहाड़ कर दे, कौवे को हंस की चाल चला दे, पतोह से सास का झोंटा नुचवा दे, भाई की पीठ में भाई की कटार भोंकवा दे इत्यादि।'' विषय में चीरा लगाकर उसकी रूह बाहर निकालना शिवपूजन सहाय की एक विशिष्ट कला और शिल्प विधि है।

शिव जी के ललित निबंधों में अधिकांश ऐसे हैं जिनकी रचना किसी पत्र के स्तम्भ विशेष के लिए तात्कालिक रूप में की गयी थी। इसलिए ऐसी गद्य रचनाओं में विषय एवं विषय प्रतिपादन में त्वरित और आवेग की मात्रा अधिक हो सकती है, मगर रचना का पूरा ढाँचा प्रकल्पित योजना का सुचिन्तित परिणाम ही दिखता है। तात्कालिक एवं सामयिक अस्थायी विषयों पर लिखी गई गद्य रचना भी बायें हाथ के काम का उदाहरण नहीं बन पाती। ऐसा आत्मनियंत्रण और संयम गद्य लेखन में प्रायः दुर्लभ होता है।

आचार्य शिवपूजन सहाय अनेक साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक पत्रों के संपादक रहे या उनसे जुड़े रहे। अपरिहार्यतः उन्हें अनेक पत्रों के अनेक स्तम्भों के लिए विववशतावश भी टिप्पणियाँ लिखनी पड़ती थी और ऐसी टिप्पणियाँ भी अक्सर ललित निबंध का रूप ले लेती थी। यथा—''तेजस्वी 'तेज' ने ओजस्वी शब्दों में लिखा है कि दिल्ली से कुछ ही दूर एक गाँव में डिप्टी कमिश्नर साहब की आज्ञा से एक बुढ़िया का झोंपड़ा फूँक डाला गया। बुरा क्या हुआ? अब तक न जाने कितने डिप्टी कमिश्नरों ने अनेक घर फूँके-तापे हैं। कृपा करके भारत सरकार विलायत की सरकार को सूचना दे दे कि जिन लोगों को इंग्लैण्ड में अधिक सर्दी मालूम हो, वे दया करके भारत चले आवें। यहाँ फूँक तापने लायक गरीबों के असंख्य झोंपड़े हैं।''[6]

उन्होंने हजारों पृष्ठ गद्य लिखा जिसमें उपन्यास, कहानी, संपादकीय टिप्पणियाँ, यात्रा, डायरी, संस्मरण, पुस्तक समालोचना, साहित्यिक निबंध, व्यंग्य-विनोद, राष्ट्रभाषा की समस्या पर विचार, बालोपयोगी साहित्य, जीवनी, व्याकरण अर्थात समस्त विषयों पर लिखा। प्रकाशित शिवपूजन रचनावली के अतिरिक्त भी उनकी पर्याप्त रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में आज भी बिखरी पड़ी हैं। ऐसे लिक्खाड़ गद्य लेखक के निबंधों की संख्या भी कम नहीं है। काफी पहले 'दो घड़ी' नाम से उनके ललित निबंधों का एक संकलन छपा था। उक्त संकलन के अलावा भी उनकी दर्जनों ललित गद्य रचनाएँ हैं जिनमें उनकी कलम की कारीगरी रची-बसी है।

हिन्दी में गद्यगीत, गद्यकाव्य और रम्य रचना या मणिप्रबाल शैली के गद्य के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिल सकते हैं। किन्तु इन सबकी एक परिपाटी बन गयी है। ऐसी रचनाओं के शिल्प विधान और शास्त्रीय स्वरूप भी स्थिर हो चुके हैं और उन पर शास्त्र भी तैयार किया जा चुका है। मगर शिवपूजन सहाय ने जिस गद्य विधान में अपने ललित निबंधों को अपनी विशिष्ट शैली से सजाया, सँवारा, उन पर आलोचकों और शास्त्रकारों का ध्यान अपेक्षाकृत कम गया है। वे एक अलग साहित्य शास्त्र की माँग करते हैं।

संदर्भ—

1. संत साहित्यकार शिवपूजन सहाय, डॉ. मंगलमूर्ति, पृ.सं. 14
2. 'योगी', साप्ताहिक, पटना, सन् 1961 ई., अंक सितम्बर-अक्टूबर।
3. 'नई धारा', शिवपूजन स्मृति अंक।
4. 'निबंधार्जव', पारिजात प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 1962
5. 'मैं हज्जाम हूँ', शिवपूजन सहाय।
6. संत साहित्यकार शिवपूजन सहाय, डॉ. रामबहादुर मिश्र, पृ. 58

ओ/27, सिविल टाउन,
राउरकेला-769004 (ओडिशा)

लौट रहा है रेडियो का स्वर्ण युग

सुभाष सेतिया

जाने-माने लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। कई वर्षों से लेखन में सक्रिय हैं।

इंटरनेट के दिनोंदिन बढ़ते प्रयोग से जनसंचार के परम्परागत माध्यमों– प्रेस, रेडियो और टेलीविजन का प्रभाव कम होने की आशंकाएँ व्यक्त की जाती रही हैं। हालांकि इन सभी माध्यमों की सामग्री भी तत्काल इंटरनेट पर उपलब्ध हो जाती है फिर भी इंटरनेट के सहारे देश-दुनिया से जुड़ने का चलन तेजी से बढ़ रहा है। मनोरंजन, सूचना और शिक्षण जैसे मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रिंट तथा इलेक्ट्रॉनिक दोनों तरह के जनसंचार माध्यमों ने इंटरनेट की चमक-दमक में अपनी छवि एवं प्रभाव को बनाए और बचाए रखने के लिए अपने-अपने स्तर पर कई प्रयास किए हैं। इनमें विषय, प्रस्तुतीकरण और प्रसारण की व्यापकता से लेकर टेक्नोलोजी को आधुनिक बनाने जैसे उपाय शामिल हैं। प्रसारण तकनीक को डिजिटलाइज करने पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इससे प्रसारण के स्तर, गुणवत्ता तथा कर्णप्रियता में बढ़ोत्तरी होती है। भारत में प्रेस और टेलीविजन निजी क्षेत्र में होने के कारण अधिक तेजी से डिजिटलाइजेशन की ओर अग्रसर हो रहे हैं। किन्तु रेडियो का अधिकांश कार्यकलाप अब भी सरकारी क्षेत्र में हो रहा है। जनसंचार माध्यमों में विदेशी निवेश की अधिकतम सीमा बढ़ा दिए जाने से भी प्रिंट तथा इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के विस्तार एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में तेजी आ गई है।

जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में रेडियो का मुख्य दायित्व आकाशवाणी या ऑल इंडिया रेडियो के कंधों पर है। दूरदर्शन और आकाशवाणी प्रसार भारती निगम के अंग हैं। प्रसार भारती निगम यों तो स्वायत्त संगठन है किन्तु व्यावहारिक स्तर पर यह मुख्यतया सरकारी अनुदान पर निर्भर है। इसके अलावा यह लोक प्रसारक यानि पब्लिक ब्रॉडकास्टर की भूमिका भी निभाता है जिससे इस पर कर्त्तव्यों का बोझ अपेक्षाकृत अधिक रहता है। उदाहरण के लिए आकाशवाणी ही एकमात्र ऐसा जनसंचार माध्यम है जो देशवासियों के साथ-साथ विदेशों में बसे भारतीयों तथा विदेशी लोगों को भारत की संस्कृति, संगीत, जनजीवन तथा विकास की गतिविधियों से जोड़े रखता है। पाकिस्तान, बांग्लादेश, चीन, नेपाल, श्रीलंका, अफगानिस्तान जैसे पड़ोसी देशों में यह विदेश मंत्रालय द्वारा निर्धारित नीतियों के अनुरूप अपने कार्यक्रम प्रसारित करके वहाँ भारत की छवि निखारने का काम भी करता है। इन कार्यक्रमों में समाचार और विचार के अलावा संगीत, विशेषकर शास्त्रीय एवं लोकप्रिय फिल्मी संगीत का बहुत योगदान रहता है। जून 2016 में पश्चिम बंगाल में नई टेक्नोलोजी डी.आर.एस. (डिजिटल रेडियो मोंडिएल) टेक्नोलोजी का ट्रांसमीटर शुरू हो जाने के फलस्वरूप, बांग्लादेश के लिए रेडियो प्रसारण का विस्तार किया जा सकेगा और प्रसारण की गुणवत्ता भी बढ़ जाएगी। कोलकाता से बांग्लादेश के लिए रेडियो बांगला सेवा जो 2010 में बंद कर दी गयी थी, डीआरएम ट्रांसमीटर की मदद से फिर शुरू की जा सकेगी। डीआरएम टेक्नोलोजी चाइनीज इंटरनेशनल द्वारा भारत के सीमावर्ती प्रदेशों में किए जा रहे दुष्प्रचार की काट करने में भी मददगार सिद्ध हो सकती है।

इसी तरह पाकिस्तान द्वारा भारत की सीमा के साथ सटे क्षेत्रों, विशेषकर जम्मू-कश्मीर में किए जा रहे प्रसारण आक्रमण का भी इस नई टेक्नोलोजी से मुकाबला अधिक कारगर ढंग से किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त एफ.एम. टेक्नोलोजी का भी तेजी से विस्तार किया जा रहा है जिससे पड़ोसी देशों तक प्रसारण पहुँचाने के साथ-साथ देश के श्रोताओं के लिए ए.एम. टेक्नोलोजी को एफ.एम. में बदल कर प्रसारण की गुणवत्ता में सुधार लाया जा रहा है। पड़ोसी देशों में रेडियो प्रसारण को पुख्ता बनाने के ये सभी प्रयास आकाशवाणी के विदेश सेवा प्रभाग द्वारा किए जा रहे हैं। विदेश सेवा प्रभाग की एक विशिष्ट ईकाई है जो अपने सभी कार्यक्रम विदेशों के लोगों तथा वहाँ रहने वले भारतवंशियों की रुचि एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्रसारित करती है। इसलिए ऑल इंडिया रेडियो को प्रवासी भारतीयों का सबसे पुराना मित्र माना जाता है। इंटरनेट, टेलीविजन या आई-पैड जैसे माध्यमों से पहले ऑल इंडिया रेडियो ही उनके लिए भारत से जुड़ने का एकमात्र साधन था। विदेश सेवा के अन्तर्गत अंग्रेजी, स्पैनिश, फारसी सहित 16 विदेशी भाषाओं

में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम तथा समाचार प्रसारित किए जाते हैं। इसी तरह हिन्दी, उर्दू, तमिल, बांगला समेत 11 भारतीय भाषाओं में प्रसारण होता है। ये सेवाएँ दिल्ली के अलावा कोलकाता, त्रिवेन्द्रम, मुम्बई आदि अन्य केन्द्रों से भी प्रसारित होती हैं। इस सेवा के अन्तर्गत प्रतिदिन लगभग 75 घंटे के कार्यक्रम विश्व के अलग-अलग महाद्वीपों के विभिन्न देशों में प्रसारित किए जाते हैं। जैसा कि पहले बताया गया है कि इस सेवा का उद्देश्य विदेशों में रहने वाले श्रोताओं को भारतीय संस्कृति से जोड़ने के अलावा भारतीय विदेश नीति के सकारात्मक पक्षों का प्रचार-प्रसार करना भी है। विदेशों में बसे भारतीयों की संख्या में लगातार हो रही वृद्धि से इस सेवा का महत्व और बढ़ता जा रहा है। विदेश सेवा प्रभाग के समूचे तंत्र को डिजिटलाइज करके कार्यक्रमों की गुणवत्ता को बेहतर बनाने के प्रयास जारी हैं।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में एफ.एम. टेक्नोलोजी के अवतरण के बाद रेडियो ने एक तरह से नई करवट ली। इससे पहले कई वर्षों तक आकाशवाणी या ऑल इंडिया रेडियो को कठिन दौर से गुजरना पड़ा क्योंकि जब टेलीविजन के पदार्पण के फलस्वरूप रेडियो की साँसें उखड़ने लगी थीं। किन्तु सरकार, प्रसारण कर्मियों तथा रेडियो प्रेमियों ने इसे प्रासंगिक बनाए रखा। फिर भी इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि 1980 और 90 के दशकों के कुछ वर्षों के पराभव काल से पूर्व जनसंचार के क्षेत्र में रेडियो का एकछत्र शासन था। आज तो मोबाइल पर ईयरफोन लगाकर लोग अकेले में समाचार या संगीत सुनते हैं किन्तु रेडियो के स्वर्णकाल में सामूहिक रूप से रेडियो कार्यक्रमों का आनन्द लेने का चलन था। रात को समाचार सुनने के लिए किसी नाई की दुकान या टी स्टॉल या रेस्टोरेंट के बाहर श्रोताओं का जमघट लगा दिखाई देता था। भारत-चीन या भारत-पाक युद्धों, चुनावों तथा लालकिले की प्राचीर से प्रधानमंत्री के भाषण या फिर राष्ट्र के नाम संदेश सुनने के लिए विशेष रूप से लोगों का ऐसा जमावड़ा लगता था।

संगीत, विशेषकर फिल्मी संगीत का आनन्द लेने का तो निम्न और मध्यवर्गीय लोगों के लिए एकमात्र साधन रेडियो ही था। जिस तरह आज एफ.एम. रेडियो चैनल फिल्मी संगीत का जलवा बिखेर रहा है उसी तरह उन दिनों विविध भारती, रेडियो सिलोन, विदेश प्रसारण की उर्दू सर्विस आदि चैनल मनभावन संगीत परोस कर देश-विदेश के श्रोताओं को संगीत सरिता में निमग्न होने का अवसर प्रदान करते थे। विविध भारती पर फौजी भाइयों के पसंदीदा गानों का साप्ताहिक कार्यक्रम प्रसारित होता था जिसे प्रसिद्ध फिल्मी सितारे, गायक-गायिकाएं, गीतकार और संगीतकार स्वयं प्रस्तुत करते थे और देश पर शहीद होने को तत्पर जवानों के साथ सीधी बातचीत करके उनका मनोबल बढ़ाते थे। देश के प्रहरियों को समर्पित यह कार्यक्रम आज तक जारी है।

यों तो भारत में रेडियो का जन्म 1927 में हुआ और एक प्रसार संगठन के रूप में यह 1936 में विकसित हुआ किन्तु इसका वास्तविक लोक सेवक रूप स्वतंत्रता के बाद सामने आया। आकाशवाणी और ऑल इंडिया रेडियो ये दो नाम देश में दूरदर्शन के लोकप्रिय होने से पहले घर-घर में गूँजते थे। रेडियो से प्रसारित शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत की स्वर लहरियों, हिन्दी, अंग्रेजी सहित विभिन्न भारतीय व विदेशी भाषाओं में समाचार व विचार कार्यक्रम, कवि गोष्ठियाँ, नाटक, हास्य-प्रहसन की झलकियाँ, फीचर के साथ-साथ कृषि और किसानों के लिए ज्ञानवर्धक कार्यक्रम तथा स्वास्थ्य, शिक्षा, बाल विकास, महिला सशक्तिकरण, परिवार नियोजन जैसे सामाजिक मुद्दों पर रोचक तथा प्रेरक कार्यक्रमों के माध्यम से रेडियो ने देश की चेतना व मानसिकता के साथ गहरा तादात्म्य स्थापित कर लिया है। रेडियो स्टूडियो से बाहर भी श्रोताओं से जुड़ने के लिए आकाशवाणी संगीत सम्मेलन जैसे सार्वजनिक समारोहों के आयोजन का सिलसिला शुरू हुआ जहाँ संगीतकार, कवि, अभिनेता तथा कलाकार आमंत्रित श्रोताओं के सम्मुख अपनी प्रस्तुति देते और श्रोताओं से रूबरू होकर उनसे संवाद कायम करते हैं। दिल्ली केन्द्र से प्रसारित 'चाय पर चर्चा' तथा 'इन स्टूडियो वन' ऐसे ही संवादपरक कार्यक्रम हैं। विदेश सेवा प्रभाग की ओर से भी कवि सम्मेलनों व मुशायरों का आयोजन किया जाता है। विज्ञान को लोकप्रिय बनाने तथा वैज्ञानिक सोच विकसित करने के लिए आकाशवाणी के सभी केन्द्रों से बच्चों तथा वयस्कों के लिए रोचक कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं जिनमें हल्के-फुल्के और व्यावहारिक अंदाज में विज्ञान की जटिल गुत्थियों को खोलने की चेष्टा निहित रहती है। संक्षेप में कहा जाए तो रेडियो जनसामान्य के दैनिक जीवन के लिए एक उपयोगी पैकेज प्रस्तुत करता रहा है जिसमें मनोरंजन, सूचना, शिक्षा, व्यवसाय, चरित्र, जीवन शैली जैसे सभी पहलू समाहित रहते हैं। ये सभी कार्यक्रम किसी एक या दो नहीं, भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं व कई विदेशी भाषाओं में सुने जा सकते हैं।

रेडियो के स्वर्ण युग के दौरान कला, साहित्य, संगीत और पत्रकारिता के महारथी रेडियो से जुड़कर गौरवान्वित अनुभव करते थे। इन क्षेत्रों की अनेक हस्तियाँ समय-समय पर प्रत्यक्ष रूप से आकाशवाणी से जुड़ी रहीं। इनमें संगीतकार रविशंकर, पत्रकार और कवि रघुवीर सहाय और अज्ञेय, महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त, नाटककार रामकुमार वर्मा, कथाकार सआदत हसन मंटो, राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर जैसे मनीषी शामिल हैं। इसलिए वह समय रेडियो का स्वर्ण युग माना जाता है। आकाशवाणी का समाचार सेवा

प्रभाग भारतीय और विदेशी भाषाओं में 650 से अधिक समाचार बुलेटिन प्रसारित करता है। 90 भाषाओं में प्रसारित समाचार समूचे देश में तथा कई अन्य देशों में सुने जाते हैं।

किन्तु समाज के प्रत्येक वर्ग से इतनी आत्मीयता से जुड़े होने पर भी प्रबुद्ध श्रोताओं को समाचारों व विचारों के लिए विदेशी प्रसारण संगठनों, विशेषकर बी.बी.सी., वायस ऑफ अमेरिका आदि की शरण में जाना पड़ता था। यह सच किसी से छिपा नहीं कि सरकारी तंत्र का हिस्सा होने के कारण आकाशवाणी और बाद में दूरदर्शन के समाचारों तथा विचारों में अपेक्षित निष्पक्षता तथा खुलेपन का अभाव रहता है। यही बात आकाशवाणी के विचार कार्यक्रमों पर भी सही बैठती है। समाचारों और विचारों में सत्तापक्ष के हस्तक्षेप की चरम सीमा आपातकाल में देखने को मिली, जब समाचारों के प्रसारण के लिए सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अधिकारियों से स्वीकृति लेनी पड़ती थी। उन काले दिनों में तो आकाशवाणी के अन्य कार्यक्रमों पर भी सत्ता के दमन चक्र का प्रभाव पड़ा मसलन तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने एक लोकप्रिय गायक के गीतों के प्रसारण पर मात्र इसलिए प्रतिबंध लगा दिया था क्योंकि उसने आपातकाल का विरोध किया था यही कारण था कि आपातकाल के बाद नई सरकार ने आकाशवाणी को सरकारी नियंत्रण से मुक्त करके एक स्वायत्त निगम बनाने का कानून तैयार किया किन्तु यह कानून पारित होने से पहले ही सरकार गिर गई। फिर भी यह मुद्दा चर्चा का विषय बना रहा और समय-समय पर प्रसारण नीति में आवश्यक संशोधन सुझाने के लिए अनेक समितियाँ गठित की गई। अंततः आकाशवाणी और दूरदर्शन को प्रोफेशनल स्वायत्तता प्रदान करने के लिए 1990 में प्रसार भारती विधेयक पारित किया गया जो 9 वर्ष बाद 1997 में लागू हुआ।

जैसा कि पहले बताया गया है कि 1980 के दशक में दूरदर्शन के विस्तार तथा 1990 के दशक में निजी उपग्रह टीवी चैनलों के आगमन और टेलीविजन की बढ़ती हुई लोकप्रियता के कारण रेडियो की आवाज धीरे-धीरे दबती गई। एक समय ऐसा भी आया जब ड्राइंग रूम की शोभा बना रेडियो सेट स्टडी रूम और फिर स्टोर रूम में चला गया और नई पीढ़ी के परिवारों में तो रेडियो या ट्रांजिस्टर रखना और खरीदना भी बन्द हो गया। किन्तु उपेक्षा के कोहरे से घिर जाने के बावजूद आकाशवाणी ने धीरज से काम लिया और वह अपने कार्यक्रमों में विविधता, नवीनता तथा नई तकनीक लाने के प्रयोग करता रहा। यह सुखद संयोग ही था कि 1997 में प्रसार भारती के गठन से आकाशवाणी में उदारता की नई बयार बही तो उसके कुछ ही वर्ष बाद 1999 में एफ.एम. टेक्नोलोजी का पदार्पण हुआ। निजी एफ.एम. चैनलों को लाइसेंस देने का सिलसिला भी शुरू हो गया। इससे रेडियो से कट चुके युवा श्रोता मनोरंजन की लहरियों पर सवार होकर फिर इसके निकट आने लगे। आकाशवाणी के एफ.एम. गोल्ड तथा एफ.एम. रेनबो चैनल पहले के समय के लोकप्रिय विविध भारती चैनल की तरह नये-पुराने फिल्म संगीत के प्रसारण तथा समाचार-विचार के नई शैली में प्रस्तुत किए जा रहे कार्यक्रमों के माध्यम से प्रौढ़ तथा युवा दोनों वर्गों के श्रोताओं को अपने साथ बाँधने लगे। पहले चरण में महानगरों तथा दूसरे और तीसरे चरणों में राज्यों की राजधानियों तथा 10 लाख से अधिक आबादी के शहरों में निजी एफ.एम. चैनलों के लाइसेंस दिए गए और देखते ही देखते एफ.एम. चैनलों का देशभर में जाल बिछ गया। सरकार की ओर से लाइसेंस तथा फ्रीक्वेंसी आबंटित करने की प्रक्रिया उदार बना दी गई जिससे नया एफ.एम. स्टेशन खोलना सरल हो गया।

रेडियो को जन-जन तक सुलभ बनाने की इस गतिशील प्रक्रिया को उस समय और गति मिली जब एफ.एम. फ्रीक्वेंसी मोबाइल फोन पर उपलब्ध होने लगी। यदि अतीत से तुलना की जाए तो रेडियो प्रसारण के क्षेत्र में जो क्रांति 1970 के दशक में ट्रांजिस्टर रेडियो के आगमन से आई थी वही 21वीं सदी के प्रारंभिक चरण में मोबाइल फोन पर एफ.एम. प्रसारण उपलब्ध हो जाने से आई है। एफ.एम. तकनीक से एक और उल्लेखनीय लाभ यह हुआ है कि सामुदायिक रेडियो की नई अवधारणा अस्तित्व में आ गई है, जो विभिन्न भाषा-बोलियों तथा संस्कृतियों वाले हमारे देश के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रही है। डिस्क और टेप का स्थान आईपॉड ने ले लिया है।

देशवासियों के हृदय में रेडियो ने फिर से अपना स्थान बना लिया है, इसकी विश्वसनीय पुष्टि तब हुई जब 2014 में सत्ता सँभालने के बाद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने राष्ट्र के लोगों से सीधे सम्पर्क साधने के लिए सशक्त माने जाने वाले माध्यम टेलीविजन की बजाय रेडियो को चुना। आकाशवाणी से हर माह प्रसारित उनका 'मन की बात' कार्यक्रम यद्यपि हिन्दी में होता है किन्तु विभिन्न केन्द्रों से इसे अंग्रेजी और सभी भारतीय भाषाओं में भी प्रस्तुत किया जाता है। इसका सीधा कारण यह है कि आकाशवाणी ही एकमात्र ऐसा प्रसारण संगठन है जिसके कार्यक्रम देश के 99 प्रतिशत भूभाग में और 92 प्रतिशत जनसंख्या द्वारा सुने जा सकते हैं। यही क्यों, जब पुराने समय के सामचार वाचकों, उद्घोषकों व उद्घोषिकाओं की भाँति रेडियो जॉकी तथा एंकर फिर से लोगों के बीच लोकप्रिय हो रहे हैं। रेडियो अब फिर स्टडी रूम से बाहर निकल कर ड्राइंग रूम बल्कि जेब में आ गया है क्योंकि अब आप कहीं भी और किसी भी समय मोबाइल में ईयर फोन लगाकर बिना किसी को बाधा पहुँचाए, और बिना बाहरी हस्तक्षेप के अपने मनपसंद कार्यक्रम सुन सकते हैं।

रेडियो नेटवर्क के विस्तार और तकनीकी सुधार के साथ-साथ इसमें नए आयाम भी जुड़ते जा रहे हैं। समाचार प्रारंभ से ही रेडियो प्रसारण का सबसे महत्वपूर्ण पहलू रहा है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि अपने स्वर्णकाल में रेडियो ही सूचनाओं और विचारों का सबसे सुलभ माध्यम था। भारत में साक्षरता दर कम होने के कारण बहुत कम लोग पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ सकते थे। ऐसे में समाचारों के लिए रेडियो सर्वसुलभ और सबसे सस्ता जनसंचार माध्यम है, जिससे अनपढ़, निर्धन और बेघर लोग भी लाभ उठा सकते हैं। समाचारों का प्रसारण केवल आकाशवाणी से होता है, इसलिए लोक प्रसारण संगठन ने समाचार प्रसार को अधिक रोचक, प्रभावकारी तथा व्यापक रूप देने की दिशा में पिछले कुछ वर्षों में अनेक कदम उठाए हैं। आकाशवाणी के समाचार बुलेटिन अब पहले की तरह सपाट नहीं हैं बल्कि संगीत और साउंड कंटेंट का रंग मिल जाने से ये कहीं अधिक रोचक और विश्वसनीय हो गए हैं।

संवाददाताओं के वायसकास्ट और लाइव डिस्पैच के अलावा विभिन्न मुद्दों पर विशेषज्ञों की टिप्पणियों तथा साउंड बाइट के इस्तेमाल के कारण समाचार बुलेटिनों का स्वरूप एकदम बदल गया है। संपादन, निर्माण तथा प्रस्तुति की समूची प्रक्रिया कम्प्यूटरीकृत कर दी गई है जिससे समाचारों की गति एवं विश्वसनीयता दोनों में वृद्धि हुई है। समाचार प्रसारण के परिमाण और विस्तार की दृष्टि से आकाशवाणी की गिनती विश्व के सबसे बड़े रेडियो प्रसारण संगठनों में होती है। एन.ओ.पी. यानि न्यूज ऑन फोन आकाशवाणी के समाचार सेवा प्रभाग की एक नवोन्मेषी सेवा है जिसके जरिए आप किसी भी समय निश्चित फोन नम्बर मिला कर उस समय तक के मुख्य समाचार अपने लैंडलाइन अथवा मोबाइल फोन पर सुन सकते हैं। सभी समाचार बुलेटिन आकाशवाणी की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। समाचारों की भाँति विचार कार्यक्रमों को भी टेक्नोलोजी की सहायता से अधिक आकर्षक एवं विश्वसनीय बनाया गया है। विशेष अवसरों पर लाइव परिचर्चा तथा रेडियो ब्रिज कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है जिसमें विभिन्न स्थानों से श्रोता फोन के जरिए स्टूडियो में बैठे विशेषज्ञों और अलग-अलग स्थानों पर मौजूद संवाददाताओं से सीधी वार्ता कर सकते हैं। जाहिर है कि अब कंटेंट और तकनीक दोनों स्तरों पर आकाशवाणी का समाचार प्रसारण तंत्र अन्तर्राष्ट्रीय समाचार प्रसारण तंत्रों की बराबरी कर सकता है। एफ.एम. गोल्ड पर प्रसारित होने वाले पब्लिक स्पीक, मार्केट मंत्र और स्पोर्टस्कैन जैसे फोन-इन कार्यक्रम बहुत ही लोकप्रिय हैं जिनमें श्रोता फोन करके सवाल-जवाब कर सकते हैं।

डिजिटलाइजेशन की मदद से निजी एफ.एम. चैनलों के साथ-साथ आकाशवाणी के एफ.एम. चैनलों से भी संगीत प्रसारण में चार चाँद लग गए हैं। प्रसारण गुणवत्ता में सुधार होने के साथ-साथ कम्प्यूटर पर उपलब्ध होने के कारण कोई भी गीत तत्काल श्रोताओं तक पहुँचाया जा सकता है। फेसबुक, ट्वीट, एस.एम.एस. और ऐप्स विकल्पों ने संगीत प्रसारण में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। कहना न होगा कि संगीत रेडियो प्रसारण की सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है। यह बताना उल्लेखनीय है कि भारत के शास्त्रीय संगीत को जीवित रखने और उसमें नए प्रयोग करके उसे आम जन तक पहुँचाने में आकाशवाणी की ऐतिहासिक भूमिका रही है। उसके संग्रहालय में अनेक संगीतज्ञों के गायन व वादन के रिकार्ड उपलब्ध हैं। संगीत के इस अमूल्य खजाने को डिजिटलाइजेशन की मदद से संरक्षित किया जा रहा है और उनकी सीडी तैयार करके संगीत प्रेमियों को उपलब्ध कराई जा रही है। इसी तरह राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी सहित अनेक नेताओं, विद्वानों, कलाकारों, साहित्यकारों, पत्रकारों तथा वैज्ञानिकों के व्याख्यान, भाषण एवं भेंटवार्ताओं को डिजिटलाइजेशन तकनीक से संरक्षित किया जा रहा है। सच तो यह है कि रेडियो अब पहले की तरह फिर से गूँजने लगा है। एफ.एम. टेक्नोलोजी के विस्तार के फलस्वरूप प्रसारण की गुणवत्ता में सुधार हो रहा है तथा नए श्रोता इससे जुड़ते जा रहे हैं। इस समय 80 शहरों में 243 एफ.एम. चैनल चल रहे हैं। जून, 2015 में 135 नई रेडियो फ्रीक्वेंसी की नीलामी की गई। 2017 तक आकाशवाणी प्रसारण को पूर्ण रूप से डिजिटलाइज करने का लक्ष्य है। भारत में रेडियो की प्रासंगिकता इसलिए अधिक है क्योंकि संस्कृति, भाषा, रहन-सहन, शिक्षा और समृद्धि की दृष्टि से यहाँ अपार विविधता है। रेडियो जैसा सर्वसुलभ, सस्ता और लगभग समूचे देश तक पहुँच रखने वाला माध्यम लोगों से बहुत जल्दी और आसानी से जुड़ सकता है। डिजिटलाइजेशन, निजीकरण तथा कार्यक्रमों के स्तर में सुधार से रेडियो फिर से छोटे-बड़े सभी वर्गों के लोगों का साथी बनता जा रहा है। हम कह सकते हैं कि हमारे देश में रेडियो अपने दूसरे स्वर्णयुग की दिशा में बढ़ रहा है। अंतर यही है कि पहला स्वर्णयुग आकाशवाणी के कंधे पर बैठकर आया था जबकि यह नया स्वर्णयुग आकाशवाणी तथा निजी चैनलों की संयुक्त पीठ पर बैठ कर आ रहा है।

सी-302, हिन्द अपार्टमेंट्स, प्लॉट नं. 12, सैक्टर-5,
द्वारका, नई दिल्ली-110075

अंगिका लोकगीतों की सांस्कृतिक चेतना

प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय

निबंधकार, कहानीकार एवं आलोचक। चौदह पुस्तकें प्रकाशित। आकाशवाणी व दूरदर्शन के लिए विविध विषयों पर कार्यक्रम निर्माण। बोस्निया, क्रोशिया, आस्ट्रिया व ब्रिटेन आदि देशों का साहित्यिक भ्रमण।

भारत युद्ध के 95वीं पीढ़ी पहले आर्यो का मानववंशीय राज्य अयोध्या में तथा ऐलवंशीय राज्य प्रतिष्ठान में स्थापित थे। प्रतिष्ठान के ऐलवंश में इक्ष्वाकु का समकालीन राजा पुरूरवा हुआ। उसका पोता नहुष और परपोता ययाति था। प्रतापी ययाति ने संपूर्ण गंगा-यमुना के दोआब और उससे सटे दक्षिणी-पश्चिमी प्रदेश को जीतकर अपने चार लड़कों (तुर्वसु, यदु, द्रह्यु और अनु) में बांट दिया था। अनु का वंश 'आनव' कहलाया, जिसे महामना नामक बड़ा ही शक्तिशाली राजा हुआ। महामना के एक पुत्र तितिक्षु का राज्य पूर्व दिशा में स्थित था।[1] वायुपुराण से भी इसकी पुष्टि होती है।[2] संभवतः तितिक्षु ने विदेह और वैशाली राज्यों, पूरब और आधुनिक मुंगेर और भागलपुर में एक नए आनव राज्य की स्थापना की थी।[3]

रामायण के अनुसार कामदेव शिव के क्रोध से जल जाने के भय से भागे और जहां उन्होंने शरीर त्याग किया, वह अंग विषय कहलाने लगा।[4] कनिंघम के अनुसार आधुनिक मुंगेर जिले के अंदर पड़ने वाला क्षेत्र प्रथम आर्य बाशिंदों के मध्यप्रदेश के अंतर्गत था।[4] 'कथासरित्सागर' के अनुसार अंग का प्रसिद्ध नगर विटकपुर समुद्र के किनारे था।[5] 'शक्तिसंगमतंत्र' के अनुसार वैद्यनाथ से भुवनेश्वर तक अंग का विस्तार था। मत्स्यपुराण में अंग की राजधानी चंपा बताई गई है, जिसका प्राचीन नाम मालिनी था। बौद्धग्रंथों और ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण में इसकी समृद्धि का उल्लेख है। वह वाणिज्य का प्रधान केंद्र था तथा वहां से सुवर्णभूमि (बर्मा का दक्षिणी भाग, सुमात्र) तक लोग व्यापार के लिए जाया करते थे।

वैदिक संस्कृति के निर्माण में मिथिला और मगध के साथ अंग का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। बुद्ध की प्रमुख शिष्या विशाखा ने अंगक्षेत्र में ही जन्म लिया था, जिसका नाम कालांतर में मिगारमाता पड़ा। बुद्ध ने अनेक बार श्रावस्ती से भद्दिय के लिए प्रस्थान किया था। यह संभवतः गंगा तट पर मुंगेर के आसपास था और प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्र था। यहां रहते हुए बुद्ध ने भद्दाजी नाम के एक सेठ को अपना शिष्य बनाया था। बुद्ध के शिष्य मौद्गल्यायन ने मोदगिरि (मुंगेर) के श्रेष्ठी श्रुतविंशतिकोटि को दीक्षा दी थी।[6]

इस अंग प्रदेश में बोली जाने वाली बोली है 'अंगिका'। महापंडित राहुत सांकृत्यायन इसे 'अंगिका' कहते हैं। उन्होंने ही इसके महत्व की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने अंगिका क्षेत्र के अंतर्गत भागलपुर, मुंगेर और पूर्णिया को लिया है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख 1810 ई. में फ्रांसिस बुकानन ने किया और इसे हिंदी नाम से अभिहित किया। उन्होंने उसे मैथिली के समान बताया। भिन्नता उतनी ही है, जितनी मैथिली से पूर्णिया की है।[7] डॉ. कामेश्वर शर्मा ने इसे 'भागलपुरी', ग्रियर्सन ने 'छिकाछिकी' और डॉ. महेशजी ने इसका नाम 'अंगिका' रखा।

इसी अंगिका के लोकगीतों में भारतीय संस्कृति, धर्म, अध्यात्म का निरूपण हुआ है। अंगिका में संस्कार गीतों की प्रधानता और बहुलता है। लोकगीतों का एक महत्वपूर्ण अंग है संस्कार गीत, जो जीवन के विविध संस्कारों के अवसरों पर गाए गए हैं। इन गीतों में हमारा अतीत राग है कि हम सोने के कटोरे में दूध-भात खाते थे। मेरी पत्नी सोने के झूले पर पींग भरती थी। हम स्वर्ण गौ का दान करते थे। मेरी पुत्रियां राम, शिव, विष्णु से विवाह करती थीं। दूध-दही की वर्षा होती थी। घर, आंगन, पिछवाड़ा सोने के धान से भरा रहता था। रवींद्रनाथ ठाकुर की एक कविता है 'स्वर्णतरी'। नौका में इतना सोना भरा है कि तिल रखने की जगह नहीं है। यह रूपक तो मनुष्य की अनंत शक्तियों और संभावनाओं का है कि वहां अशिव, अमंगल, दैन्य, पराजय के लिए कोई स्थान ही नहीं है। परंतु यहां तो जीवन में सर्वत्र विषमता, दीनता, पराजय और हताशा है। इसलिए हम हो जाते हैं अतीतजीवी। उसे याद कर, वहां थोड़ा सुस्ताकर नई शक्ति उत्साह के साथ जीवन समर में आरूढ़ होते हैं। फिर झुलसा अतीत भी सुखद लगता है।

काल को हम बांध नहीं सकते। वह अपने प्रवाह में बहा जा रहा है। हम हैं कि वर्तमान में रहकर अर्जुन की तरह धनुष की प्रत्यंचा को

पीछे खींचते हैं और लक्ष्य-संधान (भविष्य) करते हैं। सच पूछिए, तो काल तो निरवधि और निरूपाधि है। हमारा अस्तित्व ही अवधि और उपाधि की परिधि का चक्कर खाता रहता है। काल पर जिसे विजय प्राप्त है, वह तो एक ही है काली। हमारा शरीर वर्तमान में जरूर दिखता है, परंतु उसका यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं होता कि हम वर्तमान में जीते हैं। हमारा मन या तो अतीत में जीता है या भविष्य में। कुछ अतीत व्यतीत अवश्य हो जाता है। उसी तरह कुछ भविष्य दुर्भेद्य ही रहता है। प्रत्येक अतीत भूत या भूतकाल है अथवा प्रेत या प्रेतशिला है। अतीत और घटित ही भूत बनता है। घटमान और अघटित कभी भूत नहीं बन सकता है। मनुष्य तो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों है। हर आदमी थोड़ा-बहुत भूत भी है। प्रकृति का नियम है नाश किसी का नहीं होता। 'नश अदर्शने' का व्याकरण दर्शन ही सर्वोच्च जीवन-दर्शन है।

वर्तमान दुःखद, निराशापूर्ण हो, तो अतीत का वैभव स्वर्णकाल अवश्य स्मरण में आता है। साथ-साथ चलता रहता है एक भव्य आदर्श, चरित्र, उद्देश्य की खोज, उसकी याद। पुत्र नहीं होने की अवस्था में नारायण के समान पुत्र की कामना। काशी, सूर्यदेव, वैद्यनाथ की आराधना के बाद भी पुत्र प्राप्ति न होने से निराशा—

''आंगन जे नीपल ओसरवा
  लागी ठाढ़ भेल हे।
नारायन, बिनु बेटा के हवेलिया
  कि मनहूं न भावै हे।
काली सेवलां कुसेसर सेबलां से
  आरो आदित बाबा हे।
राजा सेबलां मैं बाबा बैजनाथ
  कि तैयो मोरा आस न पुरलै हो।''[8]

इसमें करुणा और वात्सल्य भरा है, पर प्रभु के प्रति प्रार्थना, गुहार भी है। राम, कृष्ण, शिव, सूर्यदेव, दुर्गा, काली, विष्णु आदि से संबंधित कई लोकगीत हैं। इन गीतों से जहां अतीत के प्रति प्रत्यावर्तन होता है, वहां भक्ति का भाव भी जगता है। भोले-भाले लोग प्रभु के निकट रहते हैं। 'भोले भाव मिलहिं रघुराई'।

कृष्ण-जन्म से संबंधित लोकगीतों में उनकी महत्ता, अनंतशक्ति और प्रकाश का चित्रण ध्यातव्य है—

''जब जनमल मधुसूदन,
  सब बंधन छूटल रे।
ललना, जनमल कंस-निकंदन,
  जगपालक रे।।

होरिला के हाथ हम देखल
संख चकर गदा छल रे।
ललना गलबा में सोभे मोहरमाला
कानें दोनों कुंडल रे।।''[9]

संस्कृत के श्लोक में ऐसा ही वर्णन है—

''सशंख चक्रं सकिरीट कुण्डलम्
सपीत वस्त्रम् सरसी रूहेक्षणम्।
सहार वक्षस्थल कौस्तुभश्रियम्
नमामि विष्णु शिरसा चतुर्भुजम्।।''

कृष्ण से संबंधित कई लोकगीत हैं। एक लोकगीत में कृष्ण की बांसुरी की आवाज सुनकर राधिका को नींद नहीं आती है। वह यशोदा के पास उलाहना देने जाती है, ''आप अपने लड़के को मना कर दें। वह मेरे आंगन में आया करता है।'' यशोदा का उत्तर है, ''जब तक कृष्ण बच्चा था, तब तक मेरी बातें मानता था। अब तो युवक हो गया, मेरी बातें क्यों मानने लगा? तुम स्वयं इस प्रकार का साज शृंगार छोड़ दो। कन्हैया आकर्षण नहीं रहने पर स्वयं आना छोड़ देगा।'' राधिका भला क्यों माने। मना करने पर उसका साज-शृंगार बढ़ता ही गया—

''मेटि लेहो दांत दंतमिसिया
नैनमा भरि काजर हे।
ललना रे, लट लट लेहों छिरिआय
कन्हैया ऑगन छोड़ि देतै हो।।
आहे दांत में लगैबे दंतमिसिया
नैनमा भरि काजर हे।
ललना रे कसि कसि बान्हबे गेडुलिया,
कन्हैया के लोभायब हे।।''[10]

राधा-कृष्ण हैं अंगिका के गीतों में लोकनायक। अतएव, नाना प्रसंग बनाकर उनकी चर्चा होती रहती है।

एक बार राधा अपनी सास यशोदा से शिकायत करती है कि रात उसकी पलंग से उसके गले का हार चोरी चला गया है और कृष्ण मां से शिकायत करते हैं कि उनकी बहुमूल्य बांसुरी रात बिछावन से गायब हो गई है। यशोदा माजरा समझ जाती है और कृष्ण को समझाती है तुम हार दे दो और तुम्हें बांसुरी मिल जाएगी। कृष्ण के यह कहने पर कि उसकी बांसुरी केवल बांस की नहीं साढ़े तीन सौ की है। वह प्रेम संगीत सुनाती है। राधा का उत्तर है, ''मेरा हार भी पीतल का नहीं वरन् विशुद्ध सोने का है तथा उसमें नंदलाल बसते हैं। इसकी कीमत साढ़े सात सौ है।'' फिर यशोदा राधा को वस्त्राभूषण पहनाकर वृंदावन में नृत्य करने के लिए प्रेरित करती है—

''कहितें में आहे सासु लाज लागे,
कहिंते सरम लागे हे।
ललना रे रात भेल पलंग पर चोरी
हार मोर हेराय गेल हे।
कहितें में हे माता सरम लागे
कहितें में लाज लागे हे।
ललना रे, रात भेल बिरदावन में चोरी
बांसुरिया मोर हेराय गेल हे।।''

ऐसे प्रसंगों से लोगों में आनंद का संसार होता है। अपने आराध्य-आराध्या के लीला प्रसंगों से भक्ति का उदय होता है। उनके प्रति श्रद्धा जगती है फिर प्रेम, समर्पण।

पर्व त्योहारों में आत्मरक्षा के लिए मनौतियां रखना, ईश्वर से अर्चना करना और अपनी-अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति नाचना, गाना, हर्ष मनाना, रोना-धोना आदि है। फलतः छठ, भगवती महेशवाणी, शीतला माता, विष्णुपद, नदी (गंगा, कमला, कोशी, यमुना) सांप आदि के गीत रचे गए हैं। जगरनथुवा, कमरथुवा, ब्रह्म, देवास, झिझिया, जलपा, गैंया, जादू-टोना, काली बन्नी, डाइन-चक्र, झरनी के गीत आदि।

देवी-देवता की आराधना का मार्ग इसलिए खुलता है कि लोग अपने कार्यों में सफलता चाहते हैं, अपने अभियान में उत्साह, साहस और भविष्य के लिए मंगल। मन तो है भटकने वाला, अत्याधिक चंचल। दस मकार कहे गए हैं, उनमें मन सबसे अधिक चंचल है।

''मनो मधुकरो मेघो मानिनी मदनो मरुत।
मा मदो मर्कटो, मत्स्यो मकाराः दश चंचला।।''

मन, भ्रमर, मेघ, स्त्री, कामदेव, हवा, लक्ष्मी, अहंकार, बंदर, मछली—ये दस मकार बड़े चंचल कहे गए हैं। भक्ति के द्वारा मन को बांधना है स्थिर करना है। मन को उद्देश्य के अनुकूल बनाना है। कारण ''मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'' (कबीर)। भक्ति के कारण मन स्थिर हुआ, तो लक्ष्योन्मुख भी होगा, फलतः कार्यसिद्धि होगी।

लोगों की भक्ति का कारण प्रकृति की भीषण विभीषिका से भय भी है। चेचक का प्रकोप इतना भयंकर और जानलेवा था, कोई इलाज नहीं था इसलिए उन्हें शीतला माता की शरण में जाना पड़ा। सी.ई.एम. जोड ने 'द स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन' में लिखा है कि आदिम जमाने में वर्षा होती थी तो अनवरत, महीनों तक। आग लगती थी, तो जंगल और आसपास जलकर क्षार-क्षार हो जाता था। इसलिए उनसे त्राण के लिए देवी-देवताओं की कल्पना की गई है। वर्षा का देवता, आग का देवता वहां देवी-देवताओं की बहुलता थी भय के कारण, रक्षा के किसी उपाय के नहीं रहने के कारण।

प्रकृति की विभीषिका से भय हो या उनके दाक्षिण्य, कृपा की आकांक्षा या भविष्य पथ प्रशस्त कराने की कामना अंगिका के गीत सदा तत्पर हैं। निस्संतान स्त्री, सूर्य की आराधना करती है। कारण वह प्रत्यक्ष देवता हैं। उनकी मनोकामना पूर्ण कर सकते हैं—

''खोंयछा भरि लेलिए तिलचौरी त
अदित मनाबली सुरूज मनाबली हे।
ये अदित हमरा पर होबहो दयाल,
संतति कहिया होएत हे।''

स्त्री गर्भवती हो गई। सूर्यदेव की कृपा से तो वह मन ही मन कौशल्या की तरह पुत्रवती होने की कल्पना करने लगती है—

''दशरथ के ऊंची-ऊंची महिलया
कि जरै मानिक दीप हे।
ललना रे रामचंदर धानि मने मन सोचै हे।''

राम, कृष्ण, शिव, विष्णु उनके आदर्श हैं आराध्य हैं। उनकी ही कृपा से गर्भधारण, संतानोत्पत्ति। फिर उस पुत्र का नाम संबोधन राम, कृष्ण के रूप में होता है।

''आधी राति बीतलै पहर राति,
फेरू विचली रतिया हे।
ललना रे तखनहिं जनमल नंदलाल,
महलिया उठै सोहर हे।[12]

इन लोकगीतों में शिव का विवाह बड़े मनोयोगपूर्वक किया गया है, जिससे शिव-भक्ति का पता चलता है—

''उतरहिं राज सें ऐले एक जोगी,
बैठि गेले कवन बाबू के दुआर हे।
ऐंगना बोढ़ैते तोहें सलखो गे चेरिया जोगि
भीखि देहु छाड़त दुआर हे।''[13]

उधर गौरी का प्रण 'वरौ तो संभु नहिं रहौं कुमारी' का भी चित्रण है—

''फूल तोरे गेली गौरी हे, ओहि फुलवारी।
बसहा चढ़ल सिव हे, करै पुछारी।।''[14]

सुल्तानगंज से जल लेकर वैद्यनाथधाम की यात्रा दूरी 110 किलोमीटर। आधा रास्ता पथरीला, कंकड़ीला, पहाड़ी, चढ़ाव-उतार, जलेबिया मोड़। पैर में पड़ जाते हैं छाले और शरीर का पोर-पोर दुखने लगता है। परंतु पथ में शिव दर्शन का उत्साह है, भजन चल रहा है। श्रम परिहार और शक्ति संचय साथ-साथ हो रहा है—

''बाबा वैजनाथ हम आयल छी
भिखरिया अहां के दुअरिया ना।
अयलौं बड़-बड़ आस लगाय,
होइयहो हमरा पर सहाय।
एक बेरी फेरी दियौ गरीब पर नजरिया,
अहां के दुअरिया...।।[15]

उनकी कृपा के लिए उतनी दूर से गंगा जल लाया गया है। फूल, बेलपत्र, चंदन आदि चढ़ाने की कामना है—

'हम गंगाजल भरि-भरि लायब बाबा
बैजू के चढ़ायब।
बेलपत्र चंदन चढ़ायब
फूल केसरिया। अहां के....।।[16]

ऐसे गीत जगन्नाथपुरी, वैद्यनाथधाम एवं वासुकीनाथ की यात्रा के समय सुनाई पड़ते हैं। जगरनथुवा गीतों में जगन्नाथधाम की यात्रा से जुड़ा प्रसंग है—''जगरनथिया जोड़ी हो भाय दानी के सुरतिया मन में राखिहें।''[17]

वैद्यनाथधाम के भूतपूर्व सरदार पंडा स्व. भवप्रीतानंद के गीतों एवं झूमरों का संग्रह एवं कमरथुआ, जगरनथुवा गीत अत्यंत प्रसिद्ध हैं। उनके गीतों में भक्ति, वियोग, श्रृंगार, हास्य, विनय एवं प्रकृति प्रेम की भावनाएं प्रमुख रूप से दिखाई पड़ती हैं। वहां एक ही राग है झूमर। किसी पूजा, उपासना में सिद्धिदाता गणेश की वंदना की जाती है। उनकी गणेश-वंदना में उनके रूपविन्यास का अनुपम चित्रण है—

''लाली लाली सुंदर मुरतिया
हे जयदेव गणपतिया।
जयदेव गणपतिया
जयदेव गणपतिया।।''

फिर उनके चूहे, एकदंत होने तथा सूड़ रखने का वर्णन, लाल-लाल धोती पहनने का वर्णन—

''अंग शोभे लाली लाली धोतिया हे,
जयदेव गणपतिया।''

फिर अपने लिए तथा जग के लिए उनसे विपत्ति नाश की प्रार्थना—

''भवप्रीता मांगे वऽर दया करऽ लंबोदऽर।
दूर करऽ सकल विपतिया
हे जयदेव गणपतिया।।''

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि तुम सब धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हारे सब पाप-ताप हर लूंगा। इस तरह की साधना कई वर्षों तक करने पर फल मिलता है। पर अंग प्रदेश के लोग इतना तो करते हैं कि अपने सारे रीति, रिवाज, विवाह, जन्म, मुंडन भगवान के हाथ सौंप देते हैं। जन्म होता है तो पुत्र का नहीं कृष्ण का, राम का, विवाह में परिछन होता है शिव का—

''वसहा चढ़ल सिब आयल पाहुन
दुअरहिं भै गेल ठाढ़ हे।
परिछन चलली माय मनायनी,
नाग छोड़ल फुफकार हे।।''[18]

कृष्ण ने गीता में कहा है—''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्''—जो मुझे जिस रूप में मानता है, मैं उसको उसी रूप में मानता हूं। कंस को शत्रु रूप और सुदामा को मित्र रूप में भजते हैं और दोनों का उद्धार करते हैं। लोगों को विश्वास के अनुसार मिलता है फल। निस्संतान दंपति को आस्था है हरिवंशपुराण और गंगास्नान के फल पर कि उसके घर नारायण का जन्म होगा—

''गंगहि पैसी नहायब हिरवंस सुनब रे।
ललना जनमल रूप नारायण
बने मन पूरत रे।।''[19]

श्रम परिहार के गीतों में भी भक्ति की चेतना मिलती है। सूर्य ही जागरण लाते हैं और विश्राम का संकेत देते हैं स्वयं डूबकर। रोपनी के गीत में सूरज देवता का गीत स्त्रियां गाती हैं—

''कौउन देलकै हे गोसाय बान्ही बन्हसरबा।
कोउन देलकै हे छोड़ाय,
गिरस्थ देलकै हे गोंसाय बान्हीं बन्हसरबा।
सूरज देलकै हे छोड़ाय।।''[20]

एक ओर प्रकृति से (सूर्य) से सीधा संबंध और दूसरी ओर उसकी आराधना, उपासना कि कर्मकमयता बनी रहे। कर्म होगा, तो फल मिलेगा ही।

गोपीचंद के गीतों में संसार की असारता, निर्गुण ब्रह्म की महानता का स्वर है। एक अति से दूसरी अति में पलायन का यह परिणाम है। धर्म अपने स्वभाव के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। आग का धर्म दाहकता, धरती का गुण धारण करना, जल का बहना, भिगाना। उसी प्रकार मनुष्य का धर्म मनन करना, विवेकपूर्ण निर्णय करना, विनय, परोपकार, परदुःखकातरता है। अंगिका के लोकगीतों में बहुदेवोपासना की प्रवृत्ति है। देवी-देवता की पूजा होती है, तो विष्णु और कृष्ण की आराधना भी। लोक-संग्रह, लोक मंगल आत्मोत्थान के साथ लोकोत्थान यहां के गीतों में अनुस्यूत है, जो धर्म की मूल चेतना है।

अंगिका के लोकगीत धर्म, संस्कृति की अपूर्व धरोहर अपने में छिपाए हुए हैं। पर्व, त्योहार, धार्मिक अनुष्ठान, शादी-विवाह, जन्मोत्सव आदि इसमें पर्याप्त अवकाश पा सके हैं जिससे अंगिका, समाज के धार्मिक-सांस्कृतिक स्वरूप पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है।

संदर्भ–

1. ब्रह्मांड पुराण, 3/74/24-103
2. वायु पुराण, 19/24-119
3. बिहार एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन, पृष्ठ 30
4. मत्स्य पुराण, 48/25
5. कथासरित्सागर, 25/35, 26/115, 82/3-16
6. अंगिका-संस्कारगीत, संपादक पं. वैद्यनाथ पांडेय और श्री राधावल्लभ शर्मा, प्रथम संस्करण, 1969, पृष्ठ 13
7. The Hindi spoken in the better cultivated parts of the District differs no more from that of Mithila than in usual in different parts of Purniya, and the pronounciation is nearly the same. –An Account of the District of Bhagalpur, F. Buchanan, P. 199.
8. अंगिका संस्कार गीत, पृ. 82
9. उपरिवत्, पृष्ठ 72
10. उपरिवत्, पृष्ठ 76
11. उपरिवत्, पृष्ठ 77
12. उपरिवत्, पृष्ठ 56
13. उपरिवत्, पृष्ठ 186
14. उपरिवत्, पृष्ठ 187
15. अंगिका लोकगीत : मूल्यांकन एवं परिव्याप्ति, डॉ. गायत्री देवी, पृष्ठ 76
16. उपरिवत्, पृष्ठ 123
17. उपरिवत्, पृष्ठ 122
18. अंगिका संस्कार गीत, पृष्ठ 259
19. अंगिका लोकगीत : मूल्यांकन एवं परिव्यापित, पृ. 168
20. उपरिवत्, पृष्ठ 130

9/21, वृंदावन, मनोरम नगर, एल.सी. रोड, धनबाद-826001 (झारखंड)

कोई भी पुरस्कार कवि का मूल्यांकन नहीं कर पाता

(ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कवि केदारनाथ सिंह से राजेन्द्र उपाध्याय की बातचीत)

उपनिदेशक हिन्दी समाचार कक्ष, आकाशवाणी, नई दिल्ली। छह पुस्तकें प्रकाशित। हिन्दी अकादमी दिल्ली से पुरस्कृत। विश्व हिन्दी सम्मेलन न्यूयार्क और जोहानेसबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में शामिल हुए।

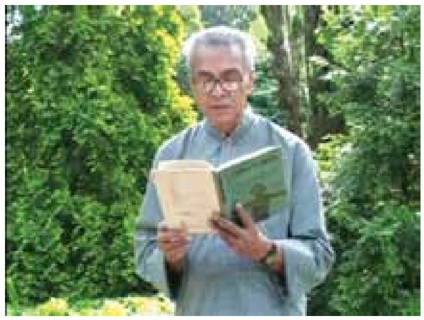

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह को वर्ष 2013 के देश का सर्वोच्च साहित्य सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया है। श्री केदारनाथ सिंह यह पुरस्कार प्राप्त करने वाले हिन्दी के दसवें रचनाकार हैं। इससे पहले हिन्दी के जाने-माने कवियों सुमित्रानन्दन पंत, अज्ञेय, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', नरेश मेहता, निर्मल वर्मा, कुंवर नारायण, श्रीलाल शुक्ल और अमरकांत को यह पुरस्कार मिला है। केदारनाथ सिंह को उन्तालीसवां ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ है। अस्सी वर्षीय श्री केदारनाथ सिंह का जन्म 1934 में उत्तर प्रदेश के बलिया में हुआ। उनकी प्रमुख रचनाओं में 'सृष्टि का पहरा', 'उत्तर कबीर', 'अकाल में सारस', 'टॉलस्टाय और साइकिल', 'जमीन पक रही है, बाघ, 'अभी बिल्कुल अभी' ओर 'यहाँ से देखो' बहुत चर्चित रही। उन्होंने निबन्ध तथा आलोचना भी लिखी है। ज्ञानपीठ पुरस्कार के रूप में ग्यारह लाख रुपए नकद और प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जाता है। 'मेरे समय के शब्द', 'कल्पना और छायावाद', 'हिन्दी कविता में बिम्ब विधान', 'कब्रिस्तान में पंचायत', 'ताना बाना' उनकी प्रमुख गद्य कृतियाँ हैं।

केदारनाथ सिंह हिन्दी कविता के प्रमुख वास्तुकार हैं। उन्होंने हिन्दी कविता को वहाँ ला खड़ा किया है जहाँ वह पहले कभी नहीं गई थी। उन्होंने लोक और शास्त्र दोनों परम्पराओं को जोड़ते हुए आम जन के लिए हिन्दी कविता को सुलभ और सरल बनाया। उनकी कविता में जीवन अपनी पूरी ऊर्जा के साथ मौजूद है। उन्होंने कविता में मनुष्य के विश्वास को फिर से स्थापित किया। केदारनाथ सिंह की कविता में गाँव, कस्बे, बाग-बगीचे और भूले-बिसरे लोग तो आते ही हैं, साथ ही उनमें ठेठ गँवार किसान का जीवन भी मुखर हुआ है। केदार जी को ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलना केदार जी की कविता के महत्व को तो रेखांकित करता ही है, हिन्दी की कविता में आज के पाठक के विश्वास और भरोसे को भी पुख्ता करता है। वे न केवल हिन्दी के वरिष्ठतम कवि हैं, भारतीय कविता को भी उनका अवदान अनूठा है। कथ्य, भाषा और बिम्बों का जैसा टटका, चमकीला और देर तक अंकित रहने वाला प्रभाव उनकी कविता छोड़ जाती है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा और कथ्य की सहजता उनकी कविता की लोकप्रियता का सबसे बड़ा तत्व है।

केदारनाथ सिह की कविता 'एक छोटा-सा मौन है/जिसमें पशु, वनस्पतियों और सड़कों के लैम्पपोस्ट/सब शामिल हैं/और नंगे आसमान-सी एक खुली हुई भाषा है। जिसमें कोई शरीक नहीं/एक अजीब-सी रोशनी है/जिसमें चीजों का रंग हरा है या भूरा/पीला है या सफेद/कुछ भी नहीं/और गंध है।''

उनकी कविता में गाँव और शहर, लोक और आधुनिकतता चुप्पी और भाषा एवं प्रकृति और संस्कृति के समस्त सम्बन्धों के साथ निरन्तर एक संवाद चलता रहता है। पूरे उत्तर भारत और त्रिनिदाद तक भी उनकी कविता आवा-जाही करती है वही उनकी असली ताकत है। कभी वे 'शीतलहरी में आग तापते बूढ़ों की प्रार्थना से मनुष्यता के सामने उपस्थित हो गई एक बुनियादी समस्या को रेखांकित करते हैं और कभी 'कुदाल' जैसे गँवई उपकरण को महानगर में एक चुनौती की तरह पेश कर देते हैं या 'टूटे हुए खड़े ट्रक' पर चढ़ती घास को बदलाव की उम्मीद बताते हैं। केदारनाथ सिंह अपनी कविता में सहजता के साथ-साथ कई अर्थछायाएँ भर देते हैं।

केदार जी की कविता में इस महादेश की अनेक नदियाँ, बोलियाँ, पेड़-पौधे, खेत-खलिहान, नाच-गाने, संगी-सम्बन्धी एक व्यंजना के साथ उपस्थित है। तुलसी, कबीर, प्रेमचंद, आचार्य शुक्ल सहित बचपन के दोस्त आदि सब एक साथ हैं। टॉलस्टाय भी है। बारिश और शीत-बसंत है।

केदार जी की छोटी-छोटी कविताएँ महाकाव्यात्मकता लिए हुए है। वे काल से होड़ लेती कविताएँ हैं। उनके मद्धिम-मद्धिम आँच

और उजाला है, जो किसी को जलाता नहीं, आत्मा को रोशन करता है। 'दाने' कविता देखिए—''नहीं/हम मंडी जाएंगे/खलिहान से उठते हुए कहते हैं दाने/जाएंगे तो फिर लौटकर नहीं आएंगे/जाते-जाते कहते जाते हैं दाने।''

केदार जी बहुत मासूमियत से अपने समय को बयान करते हैं। 'बनारस' जैसी अति प्राचीन नगर की संस्कृति चंद पंक्तियों में कैसे बखान की गई है, देखिए—''किसी अनादि सूर्य को/देता हुआ अर्घ्य/शताब्दियों से इसी तरह/गंगा के जल में/अपनी एक टाँग पर खड़ा है/यह शहर/अपनी दूसरी टाँग से बेखबर/सैकड़ों बरस से/कभी सई साँझ/बिना किसी सूचना के/घुस जाओ इस शहर में/कभी आरती के आलोक में/इसे अचानक देखो/अद्भुत है इसकी बनावट/यह आधा जल में है/आधा मंत्र में/आधा फूल में है/आधा शव में/आधा नींद में है/आधा शंख में/अगर ध्यान से देखो/तो यह आधा है/और आधा नहीं है।''

केदार जी से यह बातचीत उनके साकेत स्थित आवास पर हुई। बीच-बीच में घरेलू व्यवधान आते रहे पर बातचीत ठीक-ठाक हुई। बातचीत के बाद केदार जी ने कहा यह एक कवि की एक कवि से बातचीत है।

प्रश्न—मैं समझता हूँ हिन्दी कविता आज पाठक से दूर से दूर हो गई है। दूभर हो गई है, लेकिन आपकी कविता में लोकप्रियता का भी एक गुण है। आपने इतने परिश्रम के बाद जो यह लोकप्रियता अर्जित की है आपका यह बहुत बड़ा योगदान है। आपने जो इतने वर्षों से कवि कर्म किया है।

उत्तर—ऐसा है राजेन्द्र जी, इसकी ठीक ठीक पड़ताल तो मैंने की नहीं, पर इतने लम्बे समय तक जो मैंने लिखा है। कई काव्य पीढ़ियाँ मैंने एक साथ देखी हैं। इसके काव्य जगत से जुड़ा हूँ। इन सबसे मिलते-जुलते, लेते-छोड़ते यहाँ तक पहुँचा हूँ। सीखता रहा हूँ। आज भी सीख रहा हूँ। श्रोता और पाठक में बहुत फर्क है। कविता का पाठक भी कहते हैं कि कम होता जा रहा है। अगर कविता पढ़ी नहीं जा रही तो छपती क्यों है? कविता संप्रेष्य हो। यह समस्या केवल हिन्दी के सामने नहीं है। विश्व कविता भी इस समस्या से जूझ रही है। लेकिन सारी कविता छप रही है, प्रकाशक भी छाप रहे हैं तो बिकती तो होगी। कहीं न कहीं तो जाती होगी। शिक्षित मध्यवर्ग कविता पढ़ता है और उसका भी एक छोटा सा तबका कविता पढ़ता है और उसकी साहित्य कला तक ठीक-ठाक पहुँच है पर वो कितने लोग पढ़ते हैं कितने नहीं। इसके आँकड़े तो मेरे पास नहीं हैं पर यह समाजशास्त्रीय अध्ययन का विषय है। वो पाठक कहाँ हैं शहर में या गाँव में? कविता में उम्मीद अभी भी है। पाठक लोग अभी भी कविता का इंतजार करते हैं। पढ़ना चाहते हैं।

प्रश्न—आपने अपनी कविता में सूर, तुलसी, कबीर, आचार्य शुक्ल आदि की परम्परा का जिक्र किया है। कहना चाहिए कि एक तरह से इन कवियों का ऋण स्वीकार किया है। आप इन कवियों से सीखते रहे हैं।

उत्तर—ये हमारी परम्परा है। मेरा ये विश्वास है कि परम्परा के भीतर हमारी जड़ें रहनी चाहिए। कबीर जैसा कवि आज जितना प्रासंगिक है। पूरी दुनिया में आज कबीर का अध्ययन हो रहा है। कबीर आज भी हमारे लिए चुनौती हैं। लोक में शास्त्र में वे गहरी पैठ बनाए हुए हैं। गहरी बातें कही हैं। बहुत पहले कही थी। उसका पाठ आज हमारे लिए अनिवार्य है। सूर, तुलसी से भी हमें सीखना चाहिए। इनको पढ़ना चाहिए। छंद की सीख लेनी चाहिए। हिन्दी की जड़ें इनसे बनी हैं। मैं हर नए कवि के लिए इन्हें चुनौती मानता हूँ। हर नए कवि को इन्हें पढ़ना चाहिए। परम्परा के भीतर हमारी जड़ें होनी चाहिए। छंद की भी परम्परा है। इसमें भी गहरी बातें कही जा सकती हैं। यह सीखना चाहिए।

प्रश्न—लेकिन हमारे नए युवा कवि तो इनसे कुछ भी सीखने को तैयार नहीं हैं। वे तो इनको पढ़ते भी नहीं।

उत्तर—नहीं, पढ़ते तो होंगे। कुछ तो पढ़ते ही होंगे। नहीं पढ़ते होंगे, ऐसा तो नहीं कहना चाहिए। आज जिस हिन्दी में हम लिख, बोल रहे हैं वो नई हिन्दी है। इससे पहले की हिन्दी अब थोड़ी पुरानी पड़ गयी है। उसका व्याकरण और मुहावरा बदल गया है। हमारी बोलियों में बड़ी ताकत है। कबीर के यहाँ तो भोजपुरी भी है।

प्रश्न—आपने अपनी कविता में बोलियों से बहुत कुछ लिया है। शब्द लिए हैं।

उत्तर—बोली से शक्ति लेना हमारी अनिवार्यता है। बोलियाँ हमारी प्राण शक्ति हैं। उसमें ऊर्जा बची हुई है। वे जनता की टकसाल से बन रही बोलियाँ हैं। वे हमारे काम की हैं। बोलियाँ अपरिहार्य हैं। आचार्य शुक्ल ने कहा था कि जब कभी हमारी काव्य भाषा पुरानी पड़ने लगे तो हमें बोलियों की ओर जाना चाहिए। बोलियों से ऊर्जा लेनी चाहिए।

निराला से मैंने बोली पर डाँट खाई थी। मेरी उनसे एक ही बार की भेंट है। सबसे पहले निराला ने कहा—बोली के पास जाओ। भारतेन्दु ने इससे बहुत कुछ सीखा था। ऐतिहासिक घोषणा उन्होंने की थी। रेणु ने बोलियों की ओर देखा। वे आए और एक नई भाषा लेकर आए। रेणु ने जो किया वो बड़ा काम का है। उससे प्रेरणा लेनी चाहिए। उन्होंने खड़ी बोली में फारबिसगंज की बोली से बहुत कुछ जोड़ा... वहाँ बहुत सारी ऊर्जा बची हुई है। नागार्जुन ने भी यही किया। रेणु ने बड़ा काम किया। उससे प्रेरणा लेनी चाहिए।

प्रश्न—पर, भारतेन्दु का आपने उचित ही जिक्र किया पर भारतेन्दु ने तो कहा था कि खड़ी बोली में कविता संभव ही नहीं है। कुछ रूखी है।

उत्तर—ऐसा है, एक दूसरी खड़ी बोली भी थी जो उर्दू में भी पल-बढ़ रही थी। नजीर अकबराबादी, दाग, मीर, गालिब की भी तो खड़ी बोली है। खड़ी बोली का विकास हो चुका था। उसमें भी महाकवि हो चुके थे। खड़ी बोली सर्वोच्च विकास कर चुकी थी। भारतेन्दु ने बहारें भी लिखी हैं। गजलें भी लिखी हैं। भारतेन्दु को हम अधूरा जानते हैं। भारतेन्दु ने खड़ी बोली में बहुत लिखा है। मात्रिक छंद ही हिन्दी नहीं।

प्रश्न—आपने भी गीत में शुरू किया था, फिर अचानक आप खड़ी बोली में नई कविता में एक भाषा लेकर आए। 'जमीन पक रही है' में आप एकदम नई भाषा, नया मुहावरा लेकर आए। बीच में अकविता वाले आए उन्होंने भाषा में काफी कुछ तोड़फोड़ की... आप उस सबसे बचते हुए आए...

उत्तर—कविता में तोड़फोड़ तो जरूरी है। कुछ लिखने के लिए तोड़फोड़ करनी पड़ती है। परिवर्तन की जरूरत है। बोली मेरे लिए ढाल की तरह है। मैं बोली में लिखता, पढ़ता रहा हूँ। प्रकाशन नहीं हुआ। निराला की डाँट से मैंने सीखा है। बोली में लिखी मेरी कविताएँ हैं। बोली से मुझे ऊर्जा मिलती है। निराला एवं अन्य हिन्दी कवियों ने मुझे रास्ता दिखाया। अपनी बोली की ओर जाओ। सीखो उससे। उनकी सीख काम आई। लिखता तो खड़ी बोली में रहा हूँ। मुझे भ्रम था कि खड़ी बोली में लिखना चाहिए। अब बोली की ओर देखता हूँ। इसका सबसे बड़ा प्रमाण नागार्जुन है। नागार्जुन ने दो भाषाओं—दो बोलियों में लिखा। दोनों बोलियों—मैथिली और हिन्दी के वे महाकवि हैं। वे वहाँ से ऊर्जा लेते थे। राजकमल चौधरी ने यह किया। वो यह करता था। नागार्जुन विद्यापति के बाद मैथिली के सबसे बड़े कवि हैं। बाँग्ला में तो उन्होंने स्वाद बदलने के लिए लिखा। मैं तो इन दोनों कवियों से ईर्ष्या करता हूँ।

प्रश्न—आपने कहा कि बड़े कवियों ने मुझे रास्ता दिखाया, आपने अज्ञेय से बहुत कुछ सीखा है, प्रेरणा ली है।

उत्तर—शुरू से अज्ञेय का नैकट्य मिला है। वे ही मुझे एक तरह से प्रकाश में लाए। तीसरा सप्तक में लिया। कविताएँ शामिल कीं। अज्ञेय अचानक मुझे ले आए। मेरी डायरी से कुछ कविताएँ चुनकर प्रतीक में मुझे सामने लाए। मुझे एक 'एक्सपोजर' मिला। अज्ञेय ने मेरे काव्य विकास में बड़ी भूमिका निभाई। 'प्रतीक' में छपना बहुत बड़ी बात थी। लोग आपको जानने लगते थे। अज्ञेय बहुत ही परिष्कृत कवि थे। अपने ढंग के बड़े कवि थे। उनका रास्ता उनका अपना था। वे हिन्दी से इतर संस्कार लेकर आए थे। उनकी बड़ी शक्ति संस्कृत थी। संस्कृत कविता में उनकी गहरी पैठ थी। मैं उन पर कालिदास का प्रभाव मानता हूँ। 'असाध्य वीणा' में भी कालिदास का प्रभाव देखा जा सकता है। अपने ढंग के बड़े विलक्षण कवि थे। पर उनका रास्ता अलग रास्ता था। उस पर चलने का तो सवाल ही नहीं था। हम लोग अलग रास्ते पर चल रहे थे या बना रहे थे। मैं अपनी बोलीबानी भोजपुरी से शब्द ले रहा था। भोजपुरी से प्रेरणा ले रहा था। अज्ञेय हमेशा बहुत बड़े कवि के रूप में मेरे सामने रहे। हिन्दी काव्य के विकास में उनकी बड़ी भूमिका है। अज्ञेय से आरम्भिक दौर में मैंने सीखने की कोशिश की। वे हिन्दी कविता की बहुत बड़ी उपलब्धि हैं।

प्रश्न—जैसा आपने कहा उनका रास्ता अलग था। पर आपने जो रास्ता बनाया उस पर तो बहुत लोग चले और आज भी कई युवा कवि चल रहे हैं।... कई युवा लोग चले और हम लोग भी चलने की कोशिश करते हैं। आपकी कविता में कुछ ऐसा चुम्बकत्व है, जो प्रभाव डालता है।

उत्तर—मैं नहीं कह सकता यह सब। मैंने कभी यह जानने की कोशिश भी नहीं की। हो सकता है। शायद ऐसा हो। दूसरों को सुनता हूँ। मैं दावे के साथ कुछ नहीं कह सकता। सीधे-सीधे प्रभाव नहीं कह सकता। माहौल होता है। मैं थोड़ा पहले आ गया। प्रभाव काव्य प्रक्रिया का एक हिस्सा है। उसकी भी भूमिका होती है। चीजें मैंने पहले देख ली जो लोगों को पसंद आई ठीक-ठाक लगी।

प्रश्न—कविता में कल्पना के अलावा क्या दिवास्वप्न की भी भूमिका होती है?

उत्तर—दिवास्वप्न भी तो कल्पना ही है। दिवास्वप्न हो या रात्रिस्वप्न हो... कविता में कल्पना होती है। बड़ी कविता में कल्पना की, दिवास्वप्न की भी भूमिका होती ही है। 'राम की शक्तिपूजा' में भी आप देख सकते हैं। 'कामायनी' में देख कसते हैं। भेद नहीं किया जा सकता।

प्रश्न—कवि कर्म की विफलता के बारे में निराला और मुक्तिबोध आदि कई कवियों ने बार-बार इशारा किया है। आपको तो लगभग सारे पुरस्कार मिले हैं। अब ज्ञानपीठ भी, आपकी हिन्दी समाज में अच्छी प्रतिष्ठा भी है। क्या आपको भी कभी कवि कर्म की विफलता का बोध हुआ?

उत्तर—विफलता का बोध दूसरी तरह से हो सकता है। असंतोष होता है। जो चाहता था वो अभी तक नहीं कर पाया। इसका अहसास तो रहता है। जो स्वप्न देखे थे वो अधूरे रह गए।

प्रश्न—अब अंत में ज्ञानपीठ मिलने पर आपकी प्रतिक्रिया...

उत्तर—यह एक सर्वमान्य पुरस्कार है। हिन्दी ही नहीं सर्वभाषाओं में सर्वमान्य पुरस्कार है। लेकिन यह कवि का मूल्यांकन नहीं है। कोई भी पुरस्कार कवि का मूल्यांकन नहीं कर पाता। नोबेल पुरस्कार भी नहीं।

बी-108, पंडारा रोड, नई दिल्ली-110003

रपट

पत्रकार कवि स्व. श्री विद्यासागर वशिष्ठ की 32वीं पुण्यतिथि पर आयोजित गोष्ठी

अपने समय के साथ बातचीत ही पत्रकारिता है–राम बहादुर राय

सतीश सागर

लेखक पेशे से एक पत्रकार रहे हैं। काव्य-लेखन में विशेष रुचि। देश की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आलेख आदि का निरंतर प्रकाशन। 'दैनिक हिन्दुस्तान' में वरिष्ठ सम्पादक पद से सेवानिवृत्त।

''कोई अखबार छोटा नहीं होता। मणिपुर की घाटी में इम्फाल जैसे छोटे शहर में 250 अखबार निकलते हैं। असल में, अपने समय के साथ बातचीत ही पत्रकारिता है।'' उक्त विचार, सुप्रसिद्ध पत्रकार व वर्तमान में 'यथावत' पत्रिका के सम्पादक श्री राम बहादुर राय ने, वरिष्ठ पत्रकार व कवि स्व. श्री विद्यासागर वशिष्ठ 'सागर' की 32वीं पुण्यतिथि पर, 'अग्रसर' के तत्वावधान में, 'छोटे शहर के छोटे अखबार' विषय पर नई दिल्ली में आयोजित पत्रकारिता-विमर्श-गोष्ठी के अध्यक्ष पद से बोलते हुए प्रस्तुत किए। श्री राय ने आगे बोलते हुए कहा कि, ''राजनीतिक सत्ता के अपने निहित स्वार्थ विकसित हुए हैं। भाषाई पत्रकारिता को यह गलतफहमी हो गई है कि हम सत्ता को बना भी सकते हैं और बिगाड़ भी सकते हैं। पत्रकारिता नामक संस्थान बेईमान हो गया है। सन् 2002 में मीडिया में विदेशी पूँजी आई। वही अब उसे चला रही है। अपने अखबार निकालने की व्यवस्था और पत्रकारिता अलग है। समाज की सत्ता समाप्त हो चुकी है। नतीजतन मूल्यों का क्षरण हुआ

है। इसी सब के बीच ईमानदार लोग भी हैं, जो निष्ठा से कार्यरत हैं, जिनसे आशा की किरन बँधती है।''

सान्निध्य के रूप में उपस्थित वरिष्ठ पत्रकार तथा पी.आई.ओ., टीवी के सम्पादक श्री के.एन. गुप्ता ने कहा, ''आज से लगभग 40 साल पहले का युग पत्रकारिता की दृष्टि से स्वर्णिम युग था। तब अलग-अलग अखबारों की नीतियाँ बेशक अलग-अलग थीं, पर अखबार मालिकों का पत्रकारों पर इतना दबाव नहीं था। धीरे-धीरे हालात बदतर हुए हैं। छोटे अखबार हमेशा संघर्ष करते रहे हैं।''

पूर्व में पत्रकारिता-विमर्श-गोष्ठी की शुरुआत करते हुए मथुरा से पधारे 'ब्रज गरिमा' सांध्य दैनिक के सम्पादक श्री विनोद चूड़ामणि ने अपने लिखित आलेख में बताया, ''प्रेस रजिस्ट्रार से सभी अखबारों को समान दर्जा प्राप्त है, परन्तु सरकारों ने, मूलतः विज्ञापन की दृष्टि से वर्गीकरण किया है। कथित छोटे अखबार जिन समस्याओं से जूझते शहरों में जनचेतना प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। परन्तु, चिन्ता की बात यह है कि बड़े-छोटे सभी अखबार आज अपने मिशन को भूल बैठे हैं। पेड-न्यूज के चलते विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लग गया है। बड़े अखबारों द्वारा विज्ञान एवम् प्रकाशित सामग्री के अनुपात 40:60 का खुलेआम उल्लंघन किया जा रहा है। हित-साधन के कारण विज्ञापन बड़े अखबारों को मिलता है। छोटे अखबार निरीह व असहाय बन कर याचना भरी दृष्टि से देखते हैं। भुगतान में भी विलम्ब किया जाता है। छोटे अखबारों के पत्रकारों को अराजक तत्वों एवं बाहुबलियों के कोप का भाजन भी बनना पड़ता है। छोटे शहर के छोटे अखबारों को तमाम प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।''

लखनऊ से पधारे 'वीकएंड टाइम्स' साप्ताहिक तथा '4 PM' सांध्य दैनिक के सम्पादक श्री संजय शर्मा ने उत्साहजनक व प्रतिबद्धता पूर्ण शैली में धारा प्रवाह बोलते हुए कहा कि, ''मैंने अखबार की स्थापना तथा सफलता के लिए उचित प्लानिंग और मार्केटिंग की, लेकिन अपनी अस्मिता पर कभी आँच नहीं आने दी। किसी कार्यक्रम या घटना की किसी के निर्देशानुसार कवरेज नहीं की। सच्चाई को छापा, क्योंकि हम पत्रकार

ही तथ्य को नहीं छापेंगे तो कौन छापेगा?... बेशक गालियाँ ही क्यों न हों! इस कारण छोटे शहर के छोटे अखबार की चर्चा बड़े शहर में हुई। अप-स्तरीय किस्म की सामग्री से अच्छे अखबारों की स्थिति भी खराब होती है। आज छोटे-बड़े सभी अखबारों के लिए पैसा ही सब कुछ होता जा रहा है। अखबारों के आदर्शों और मूल्यों को बनाए रखना एक चुनौती भी है तथा जरूरी भी है, क्योंकि समज को पत्रकारों से बड़ी अपेक्षाएँ होती हैं।''

विमर्श में हिस्सा लेते हुए एन.डी.टी.वी. के श्री राजीव रंजन गिरि ने कहा कि, ''किसी राज्य या क्षेत्र के छोटे हिस्से की घटना को पूरे राज्य की घटना के रूप में पेश नहीं किया जाना चाहिए। कश्मीर या उत्तर-पूर्व की सच्ची तस्वीर ही प्रस्तुत करनी चाहिए। काम के प्रति ईमानदारी बेहद जरूरी है।'' दूरदर्शन के पूर्व प्रोड्यूसर श्री महेन्द्र महर्षि ने कहा कि, ''भावी पत्रकारों को सही दिशा देने से ही पत्रकारिता पर आई फफूँद कट सकती है।''

वरिष्ठ पत्रकार श्री सतीश सागर ने कहा कि ''छोटे अखबारों में, प्रकाशित समाचारों तथा अन्य सामग्री के स्रोत का जिक्र नहीं होता। प्रायः सभी सामग्री भर्ती की सी लगती है और अपील नहीं करती।'' 'द हिन्दू' के पूर्व रिपोर्टर श्री विनय ठाकुर ने बताया कि, ''कई वर्ष पूर्व मध्य प्रदेश में चुनावी रिर्पोटिंग के दौरान मैंने पाया और आश्चर्य हुआ कि यहाँ के स्थानीय छोटे अखबार सभी प्रत्याशियों को जिता रहे थे। आज हर जगह पेड-फीचर के से हालात हैं।'' इनके अतिरिक्त श्री ईश्वर भारद्वाज, श्री नवाब केसर आदि ने भी चर्चा में हिस्सा लिया। ढाई घंटे से ज्यादा चली जीवन्त विमर्श गोष्ठी का संचालन डॉ. सुभाष वसिष्ठ ने किया।

कार्यक्रम के दूसरे चरण में, आगरा से पधारे वरिष्ठ गीतकार श्री सोम ठाकुर के सान्निध्य में तथा सुपरिचित व्यंग्यकार डॉ. हरीशनवल की अध्यक्षता में सरस कवि-गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें 18 कवियों ने 26 रचनाएँ पढ़ीं। अध्यक्ष डॉ. नवल ने प्रत्येक कविता पर सटीक समीक्षात्मक टिप्पणी प्रस्तुत की, जो अपने आप में अद्भुत थी। 'अग्रसर' गोष्ठियों की विगत तीन दशक की यात्राओं में ऐसा पहली बार हुआ।... कविताओं, गीतों, गज़लों के माध्यम से, कवियों ने जहाँ एक ओर प्रेम से वातावरण को रससिक्त किया तो दूसरी ओर सम-सामयिक विषयों-सन्दर्भों पर, व्यंग्यपरक, धारदार तथा विवेचनात्मक टिप्पणी भी प्रस्तुत की। सर्वश्री सोम ठाकुर, शान्ति अग्रवाल, स्नेह सुधा नवल, विजय मेहरोत्रा, सुभाष वशिष्ठ, रंजना अग्रवाल, कुमार अनुपम, सतीश सागर, महावीर खांल्टा, पूनम अग्रवाल, नवाब केसर, मालती महर्षि, गीता झा, अजित वरदान, इन्दु भारद्वाज, दिनेश कपूर, अतुल बल तथा नीति भारद्वाज ने काव्य पाठ किया। संचालन डॉ. सुभाष वशिष्ठ ने किया।

सी-29, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-110049

कहानी

भरण-पोषण

डॉ. मोहन तिवारी 'आनंद'

अनेक पुस्तकों का प्रकाशन। अनेक सम्मान प्राप्त। गरीबी एवं बेरोजगारी उन्मूलन, दलित एवं पिछड़े वर्ग के शोषण का विरोध के क्षेत्र में विशेष चिंतन। एम-एस.सी. (वनस्पति विज्ञान) व पादप रोग विशेषज्ञ। संप्रति स्वतन्त्र लेखन।

एक फिल्म का गाना था, ''प्यार किया नहीं जाता, हो जाता है।'' बड़ा ही सूफियाना कलाम माना गया था उस समय। जिस-जिसने सुना वह पुलकित हो उठा और गाने लगा झूम झूम कर। तत्समय इस पर तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ आई किन्तु लोगों में यह गाना हुआ बड़ा लोकप्रिय।

मनुष्य की प्रकृति है कि वह सदैव खुश रहना चाहता है। सदैव अपने हित के सपने सँजोता रहता है। जहाँ उसका स्वयं का स्वार्थ सिद्ध होता है वहीं उसे आनंद मिलता है किन्तु यह सब कुछ उसकी इच्छा पर ही आश्रित नहीं रहता है बल्कि जो उसकी नियति में तय हुआ होता है वही होता है। सच भी है–

''जन्म विवाह मरण गति जोई।
जेहि विधि लिखा तेहि विधि होई।।''

यह सब कुछ भगवान की माया माना जाता है, मनुष्य का इस पर कोई नियन्त्रण नहीं होता। इस मान्यता को सभी जानते हैं किन्तु मानते बहुत कम लोग हैं। मनुष्य जानबूझकर कर विधि के विधान की अवहेलना करना नहीं चूकता और जब कहीं किसी उलझन में पड़ जाता है तो फिर लगता है सिर पीटने और दूसरों पर दोषारोपण करने।

''तो क्या इस धारणा के आधार पर यह मान लिया जाए कि मनुष्य को अपने हित साधन के लिए कोई प्रयास न कर सिर्फ भाग्य और नियति के भरोसे बैठे रहना चाहिए?'' निरंजन ने भौंहें सिकोड़ते, कठोरता भरे भाव चेहरे पर लाते हुए कहा। उसकी मुखमुद्रा पर आक्रोश साफ झलक रहा था किन्तु गजानन ने उसके इस आवभाव पर कोई आवेगात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। वह पूर्वानुसार ही प्रसन्न मुद्रा अपने चेहरे पर लिए हुए वार्ता कर रहा था। निरंजन का स्वभाव कुछ हठीला सा है। वह अपनी हर बात दूसरे से मनवाना चाहता है और यदि किसी ने उसकी हाँ में हाँ नहीं मिलाई तो वह क्रोधित हो जाता है। उसकी इस प्रवृत्ति ने उसे चिड़चिड़ा बना दिया था। वह बात-बात पर चिढ़ जाता है, कुढ़ जाता है। यही कारण था कि उसके मित्र, रिश्तेदार तथा परिजन भी उससे दूरी बनाकर रहना उचित मानने लगे थे और सभी उससे किनारा करने लगे थे। सम्बन्धियों की इन नकारात्मक प्रतिक्रियाओं के कारण निरंजन अलग-थलग पड़ता जा रहा था और उसकी सोच में बहुत परिवर्तन आ गया था। वह शंकालु होने लगा था। उसे हर व्यक्ति के प्रत्येक क्रियाकलाप में संदेह नजर आने लगा था। विश्वास नामक शब्द से तो उसे नफरत हो गई थी। उसे किसी पर भी भरोसा नहीं रह गया था। एक हँसता-खेलता प्रसन्नचित्त नवयुवक अवसाद के दल-दल में धँसता जा रहा था।

जब भी गजानन उससे कोई बात करता था तो वह उसकी हर बात को उल्टा ही लेता था। निरंजन के इस संदेहात्मक रवैये से उसके सभी मित्र और सम्बन्धी उससे एक-एक करके दूर होते गए किन्तु गजानन उसकी परिस्थितियों को जानता था, इसी कारण उसे निरंजन से चिढ़ या नफरत नहीं हो रही थी बल्कि उस पर दयाभाव उत्पन्न हो रहा था। वह अपने एक अच्छे, होनहार, सच्चरित्र एवं निष्ठावान मित्र की इस दशा के कारण को अच्छी तरह जानता था। वह यह भी जानता था कि उसे इस स्थिति में पहुँचाने के लिए कौन जिम्मेदार है। यही कारण था कि वह उसका साथ नहीं छोड़ना चाह रहा था। सदैव उसकी भलाई सोचता रहता था। उसके हर भले-बुरे में साथ देता रहता था। जबकि निरंजन उससे बात-बात पर झगड़ पड़ता था। उससे कड़वे शब्द बोल देता था, उसे झिड़क देता था। यहाँ तक कि कुछ भी अप्रिय बोलने में परहेज नहीं करता था।

सच्चा मित्र वही माना गया है, जो बुरे वक्त पर साथ निभाए। बने-बने के साथी तो बहुत होते हैं। जिसके हाथ में खिलाने के लिए चने होते हैं उसके पीछे तमाम बन्दर एकत्र हो जाते हैं किन्तु जब मुट्ठी खाली हो जाती है, तब वे सब साथ छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं, भाग खड़े होते हैं। निरंजन के साथ भी ऐसा ही हो रहा था।

बात उन दिनों की है जब मैं ग्रामीण विकास विभाग में पदस्थ था। ग्रामीण विकास विभाग की सेवा अवधि में मुझको ग्रामीण क्षेत्रों में हो रहे विकास कार्यों का पर्यवेक्षण करना पड़ता था। इस वजह से लगातार ग्रामीण क्षेत्रों में दौरे पर रहना पड़ता था। दिन-दिन भर पैदल चलना पड़ता था। भर कुओं में झाँकते और सड़कों को नापते रहना मेरी आदत बन गई थी।

एक दिन में घर से निकल ही रहा था कि गजानन मेरे यहाँ आ पहुँचा। उस समय मुझे उसका आना अच्छा नहीं लगा था। मैं जाने की जल्दी में था और गजानन मुझसे कुछ सलाह लेना चाहता था, सहयोग लेना चाहता था। उसे आता देख मेरा मन कुण्ठित हो उठा किन्तु बचपन का मित्र होने के कारण मैं उसकी अनदेखी नहीं कर सकता था। जैसा कहा गया है कि–''दिल की बात कहा करता है असली नकली चेहरा''। मेरे चेहरे के हावभाव से उसने मेरी मनःस्थिति पढ़ ली और वह मुझसे नमस्कार करते हुए बोला–

''आनंद मैं समझ सकता हूँ कि आप बाहर जाने वाले हैं और बहुत जल्दी में हैं किन्तु मैं जिस कार्य-उद्देश्य से आपके पास आया हूँ वह भी बहुत आवश्यक है। बात लम्बी है और पूरी बात बताए बिना आप समझ नहीं पाएँगे। इस पर चर्चा के लिए समय चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आप शाम को थोड़ा समय हमको दे सकें तो बड़ी कृपा होगी। मुझे एक गम्भीर मामले में सलाह और सहयोग चाहिए।''

''अरे गजानन! ये क्या कह रहे हो। मेरे पास समय की कमी और तुम्हारे लिए। अभी बैठ लेते हैं।'' आनंद ने गजानन का मन रखने के लिए अपनत्व दर्शाते हुए कहा किन्तु उसके चेहरे के भावों को गजानन अच्छी तरह से पढ़ चुका था। असलियत और बनावट को समझना बहुत कठिन कार्य नहीं होता है। उसके माथे की लकीरें उसकी उलझन को कह रही थीं। वह बनावटी मुस्कान जरूर चेहरे पर लाने का प्रयास कर रहा था किन्तु चेहरे रूपी दर्पण से सच्चाई छिपाए नहीं छुपती है।

गजानन ने कहा–''बात बड़ी आवश्यक और गंभीर है। इसके लिए जल्दबाजी उचित नहीं रहेगी।''

''तो ठीक है शाम को बैठ जाते हैं।''

''सात बजे तक तो लौट आओगे?''

''पूरी कोशिश करूँगा किन्तु आठ बजे तक तो...।''

''तो आठ बजे की पक्की।''

मैं काम पर निकल तो गया किन्तु गजानन के मुखमण्डल से परिलक्षित अभिव्यक्ति मुझे कुरेद रही थी। कुछ ऐसा तो है जिसके लिए गजानन चिन्तित है। गजानन एक संवेदनशील युवक है। वह कभी भी कोई ऐसी वैसी बातें नहीं करता है जिसका कोई उद्देश्य न हो, आशय न हो और अनावश्यक हो। वह निश्चय ही किसी गंभीर विषय पर चर्चा करना चाह रहा होगा। मुझे उसकी बात को सुनना चाहिए था और उस पर विचार करना चाहिए था। उसके चेहरे के भाव भी स्पष्ट कर रहे थे कि हो न हो कोई अति महत्वपूर्ण मामला है।

पूरे दिन मेरा मन काम में नहीं लगा। हर वक्त रह-रहकर गजानन का चेहरा मेरे चिन्तन में आता रहा। मेरे सहकर्मी मेरी मनःस्थिति को समझ रहे थे। वे बार-बार मुझसे पूछ रहे थे– ''साहब लगता है आज आपकी तबीयत ठीक नहीं है, आपको आराम कर लेना चाहिए।''

मैं उन्हें टालता रहा किन्तु चार बजे करीब ऐसा लगने लगा कि मुझे अब लौट चलना चाहिए। मैं कभी भी सात-आठ के पूर्व नहीं लौट पाता था। कभी-कभी तो और भी देर हो जाती थी। मेरे सहकर्मी भी मेरी स्थिति का अनुमान लगाकर उसी प्रकार से कार्य सम्पन्न करने लगे थे जैसे वे मेरी शीघ्र वापसी की तैयारी करने में लगे हों। मेरी भी चाहत वैसी ही बन चुकी थी। मैं चाह भी रहा था कि कितनी जल्दी हो और मैं वापस हो लूँ। अन्ततः मैं पाँच बजे के पहले ही लौट पड़ा। रास्ते में कहीं भी न रुका परिणामतः साढ़े छः बजे ही घर लौट आया। मुझे गजानन की प्रतीक्षा थी, कोई आहट आती कि मैं गजानन को ही आया समझ रहा था किन्तु वह सुबह हुई चर्चा के अनुसार पौने आठ बजे ही आया। जैसे ही उसने दरवाजे की घण्टी बजाई मैं स्वय ही दरवाजा खोलने पहुँच गया।

मुझे आया पाकर गजानन का चेहरा खिल उठा। मैंने उसे बड़े प्यार से अन्दर आने को कहा। अन्दर आने के पूर्व वह अपने जूते उतारने लगा। मैंने उससे कहा–

''जूते पहने रहो यार।'' किन्तु वह नहीं माना। उसने जूते बाहर ही उतार दिए और मेरे साथ बैठक में आ गया। सोफे पर बैठते हुए वह बोला–

''आनंद मैं आज मान गया कि तुम हो तो बहुत संवेदनशील, मुझे दिए समय से पहले ही आ गए।''

''ऐसा क्यों सोचते हो मेरे यार। अगर अपने मित्रों का ध्यान नहीं रख पाया तो क्या मतलब ऐसे जीवन का। आपसे उसी समय चर्चा न कर पाने का मुझे बड़ा मलाल रहा, दिन भर किसी भी काम में मन नहीं लगा। पूरे दिन तुम्हारे बारे में ही सोचता रहा।''

''ऐसी चिन्ता की बात नहीं है किन्तु हमें समय रहते कुछ उपाय करने चाहिए यही सोचकर आपसे परामर्श करना चाहता हूँ।''

मैंने नौकर को आवाज देकर बुलाया और उससे कहा–

''साहब को कुछ खिलाओ और फिर अच्छी स्पेशल चाय पिलाओ।'' नौकर आदेश के पालन में जुट गया। गजानन गंभीर मुद्रा में बैठा था। मैंने ही बात प्रारम्भ की–''अभी कुछ दिनों से मैं तुम्हें परेशान सा देख रहा हूँ। कई बार सोचा कि आपसे बात करूँ किन्तु मौका ही नहीं मिल पा रहा था। हिम्मत भी नहीं पड़ रही थी कि कैसे कहूँ। आखिर इसकी क्या वजह है गजानन?''

''आनंद, मेरे भाई! मैं तो ठीक हूँ किन्तु...। मैंने आपसे कभी भी कुछ नहीं छिपाया है। पहले सोचता रहा कि सब कुछ ठीक हो जाएगा किन्तु अब स्थिति बहुत चिन्ताजनक हो गई। हमें कुछ करना पड़ेगा।''

''मैं समझा नहीं? सीधे-सीधे कहो।''

''आनंद अपना मित्र है न निरंजन! मैं उसी के लिए चिन्तित हूँ।''

''क्या हुआ है उसको?''

''समस्या गंभीर है। निरंजन का उसकी पत्नी से विवाद चल रहा है। वह बहुत परेशान है। एक दिन वह बहुत परेशान हालत में मिला। बहुत दुबला-पतला, चेहरा मुरझाया सा, आँखों के नीचे काले-काले निशान, तमाम झुर्रियाँ, बिलकुल टूटा हुआ-सा उदास। मैंने उससे उसकी परेशानी का कारण पूछा। वह छिपा रहा था किन्तु जब मैंने जोर देकर पूछा तो वह टूट पड़ा। रो पड़ा। मैंने समझाया, धीरज बंधाया। बहुत देर में वह सहज हो पाया, बहुत कुरेदने के बाद बोला—

''गजानन आजकल मैं अपनी पत्नी से बहुत परेशानी में हूँ। सोचता था कि आज नहीं तो कल उसकी समझ में आ जाएगा और सब ठीक हो जाएगा। इसी आशा में सहन करता रहा, सोचता रहा कि किसी से क्या कहूँ, कैसे कहूँ। लोग क्या सोचेंगे, हँसी होगी किन्तु अब बात हद से बाहर हो गई है, क्या करूँ।''

''ऐसी क्या बात हो गई उस बेचारे के साथ। आप विस्तार से बताओ।''

''आनंद तुम्हें मालूम है निरंजन की पत्नी उससे अलग रह रही है?''

''नहीं तो, कब से?''

''करीब एक साल पूरा होने वाला है। एक दिन उसकी पत्नी ने अनायास उससे काफी बुरा-भला कहा और अपने मायके चली आई। पंद्रह दिन तक चुप रहा और उनका गुस्सा शान्त होने पर वापिस आने की प्रतीक्षा करता रहा। जब उनकी ओर से कुछ प्रतिक्रिया नहीं आई तो निरंजन ने ही फोन लगाया। उसकी पत्नी ने तो बात नहीं की किन्तु उनकी माँ ने कहा कि आप आ जाएँ हम लोग आपसे बात करना चाहते हैं। वह दूसरे दिन ही उनके यहाँ पहुँच गया। सारा माहौल बदला हुआ दिखा। घर के किसी भी सदस्य से उससे ढंग से बात नहीं की। पत्नी तो बोली ही नहीं। केवल उसके साले विवेक की पत्नी ने आकर पानी दिया किन्तु हालचाल वो भी नहीं पूछ सकी। ऐसा माहौल देख वह हतप्रभ रह गया। उसे आभास हो गया कि नंदा ने ही मेरे विरुद्ध ऐसा वातावरण बना दिया है। उसने ही उनकी माँ से बात करना प्रारम्भ किया।''

''अम्मा जी क्या बात है आप लोग मुझसे बहुत नाराज दिख रहे हैं?''

''और क्या दिखें, हमारी लड़की पर अत्याचार करते हो, प्रताड़ित करते हो, मारते-पीटते हो। उससे रोज-रोज रुपयों की माँग करते हो।''

''किसने कहा...? सरासर झूठ, सब कुछ झूठ, इसमें कुछ भी सच नहीं है। आप मेरे सामने बुलाकर कहलाइए।''

''वह न आपसे मिलना चाहती है न आपके साथ रहने को सहमत है। उसने आपसे तलाक लेने का निर्णय ले लिया है।'' नन्दा की माँ ने एक साथ ये हलाहल भरे वचन कहे।

''अच्छा है आप उसे छुटकारा दे दें।''

''ये क्या कह रही हैं अम्मा जी। हम लोग बड़प्पन वाले हैं। हमारे यहाँ ऐसा नहीं होता है। हम तो जीवन भर निर्वाह करने के कसमे-वादे उठा चुके हैं।''

''हमारी बिटिया तुम्हारा मुँह भी नहीं देखना चाहती है। अगर तुम ऐसे नहीं मानोगे तो वह अदालत से तलाक माँगेगी।''

''उन्होंने मेरे साथ हद से अधिक दुर्व्यवहार किया और मैं चुपचाप सुनता रहा। मैं दिन भर भूखा-प्यासा बैठा रहा, यहाँ तक कि उन्होंने एक कप चाय के लिए भी नहीं पूछा। शाम को मैं वापिस लौट आया। मेरी अक्ल काम नहीं कर रही थी। बस यही सोच रहा था कि नन्दा ने ऐसा क्यों किया?'' बतलाते हुए निरंजन रोने लगा।

''निरंजन ने तो प्रेम विवाह किया था न?''

''हाँ।''

''फिर ऐसा क्या हो गया उनके बीच में जो बात यहाँ तक आ पहुँची?''

''मैंने उससे पूछा था। पहले तो वह कुछ कहना नहीं चाह रहा था किन्तु जब मैंने कहा कि बगैर बताए मैं क्या समझूँगा और फिर तुम्हारी मदद भी कैसे कर सकूँगा। इस पर उसने पूरा मामला बताया।''

''आनंद उसने जो बताया सुनकर मेरे पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गई। उसने जो बताया उसकी तो कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उसने बताया—

''विवाह के पूर्व नन्दा का सम्बन्ध अपने बहनोई से था। उसकी गलत हरकतों से उसके पेट में बच्चा आ गया था। बहनोई ने अपनी मुसीबत को मेरे गले मढ़ दिया। उसके इशारे पर ही नन्दा ने मुझसे प्यार का नाटक रचा और मुझे विवाह के लिए यह कहकर मजबूर किया कि उसके पेट में मेरा बच्चा पल रहा है। मैं तो घबरा गया था। आनन-फानन में विवाह करना पड़ गया। विवाह के कुछ दिन बाद ही वह कहने लगी मैं यह बच्चा नहीं चाहती हूँ। डॉक्टर से मिलकर इससे छुटकारा दिलाओ। मैंने बहुत समझाने का प्रयास किया किन्तु वह एक न मानी और गर्भपात करना पड़ गया। वह कभी भी मेरी पत्नी बन कर नहीं रही। उससे मेरे एक भी बार पति-पत्नी वाले परस्पर सम्बन्ध नहीं बने।''

''फिर बच्चा!''

''उसने बताया था कि वह बच्चा तो उसके बहनोई से था।''

''फिर तुमने विवाह क्यों किया?''

''मैं उनके चंगुल में फँस गया था। इसके अलावा कोई उपाय समझ में नहीं आ रहा। समझौता करना पड़ा अपने आपसे।''

''तुमने जान-बूझकर मक्खी गटक ली और...।''

''और कर भी क्या सकता था।''

''कैसा मर्द है, जिस औरत से सम्बन्ध ही नहीं बनाया उसके पेट में किसी के भी बच्चे को अपना मान कर विवाह कर लिया?''

''इसे ही तो मजबूरी कहते हैं।''

''भाड़ में जाए ऐसी मजबूरी। ऐसा तो कोई भी नहीं करेगा।''

''फिर भी उस बेचारे ने उसे स्वीकारा। अब वही औरत उससे तलाक माँग रही है। कोर्ट कचहरी की धमकी देती है और उसने तलाक का केस भी लगा दिया है।''

''लगा लेने दो, उसे कह दो कि चिन्ता न करे। हम उसके साथ हैं। निपट लेंगे। जो भी खर्चा लगेगा मैं दूँगा। अच्छे से अच्छा वकील लगाओ और साबित कराओ कि वह बदचलन है और उसके, उसके बहनोई से गलत सम्बन्ध थे।''

''किन्तु वह तो उसे ही दोषी बता रही है कि वह प्रताड़ित करता है, दहेज की माँग करता है।''

''यह तो कोर्ट तय करेगा। डरने की कोई बात नहीं है।''

''आनंद, कोर्ट तो औरतों की सुनता है फिर उसके पास उसकी पत्नी के विरुद्ध कोई साक्ष्य भी तो नहीं है।''

''वकील से बात करो और साक्ष्य एकत्र करो। निरंजन को धैर्य बँधाओ और उससे कहो कि साहस से काम ले। डरने वाला कुछ भी हासिल नहीं कर पाता है। मनुष्य को स्वयं कोई गलती और अपराध नहीं करना चाहिए और न ही सहन।''

गजानन ने निरंजन को समझाया तथा उसे डटकर मुकाबला करने का साहस बँधाया। दोनों पक्ष अपने-अपने वकीलों के माध्यम से एक-दूसरे पर दोषारोपण करने लगे। नन्दा के वकील ने तलाक के साथ-साथ भरण-पोषण हेतु गुजारा-भत्ता की माँग की थी।

तमाम पेशियाँ चलने के दौरान नन्दा ने एक सरकारी नौकरी पा ली थी। वह एक सरकारी विद्यालय में शिक्षिका के पद पर नियुक्ति पा चुकी थी। कई महीनों से उसे प्रतिमाह 29,727.00 रुपए वेतन मिलने लगा है। यह सबूत निरंजन के पक्ष में सफल हुआ और उसके वकील ने न्यायालय में पक्ष रखते हुए कहा—

''माननीय! जैसा कि न्यायालय को ज्ञात है कि निरंजन बेरोजगार है और उसके पास आय का कोई साधन नहीं है। वह अपने परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ है। पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे सतत संघर्ष करना पड़ रहा है, जिसमें उसके परिजनों का सहयोग मिलता तो उसे सहूलियत होती किन्तु उसकी पत्नी, मेरा मतलब नन्दा जी, उसे सहयोग करना तो दूर उसे परेशान कर रही हैं। वे, यानी नन्दा जी, यह साबित नहीं कर पाई कि निरंजन ने उससे कभी मारपीट या दहेज की माँग की है। माननीय स्वयं समझ सकते हैं कि निरंजन के पास जब स्वयं के भरण-पोषण का साधन नहीं है, तब वह नन्दा जी को कहाँ से गुजारा-भत्ता दे सकेगा। जबकि नन्दा जी सरकारी नौकरी में हैं और उन्हें प्रतिमाह 29,727.00 रुपए वेतन मिलता है। वकील ने साक्ष्य के तौर पर नन्दा के वेतन पत्रक की प्रति प्रस्तुत की। अतः मेरा माननीय न्यायालय से निवेदन है कि निरंजन की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अगर नन्दा जी को तलाक स्वीकार की जाती है तो न्याय के हित में निरंजन को गुजारा-भत्ता दिलाने की कृपा की जाए।''

नन्दा का वकील ठहाका मारकर हँसा और बोला—

''माननीय! मेरे काबिल दोस्त तो एक उल्टी ही धारा बहाना चाह रहे हैं। पुरुष को गुजारा-भत्ता दिलाने की माँग बड़ी हास्यास्पद है श्रीमान्! मेरे काबिल दोस्त की अकल पर तो मुझे तरस आता है कि ये श्रीमान् पति के लिए गुजारे-भत्ते की माँग कर एक नई पद्धति का विकास करना चाह रहे हैं। मैं माननीय न्यायालय से गुजारिश करता हूँ कि महोदय न्यायालय का समय खराब कर रहे हैं, इनकी दलील स्वीकार करने योग्य है ही नहीं।''

अदालत में सन्नाटा छा गया। प्रकरण बड़ा पेचीदा हो चुका था। नन्दा का वकील निरंजन पर मारपीट या दहेज की माँग का आरोप सिद्ध नहीं कर पा रहा था। निरंजन से नन्दा को गुजारा-भत्ता दिलाने की माँग का कोई औचित्य भी स्थापित नहीं कर पाया था। न्यायालय स्वयं इस पेशोपेश में था कि वह किसका पक्ष सही माने और किसका गलत। निरंजन के वकील ने प्रकरण में ऐसे तथ्य प्रस्तुत किए जिनमें निरंजन कतई दोषी नहीं माना जा सकता था, उल्टा उसने नन्दा को ही संदेह के घेरे में लाकर खड़ा कर दिया कि वह अपने पति का सहयोग न कर उसे परेशान कर रही है। वह अपने पति की परेशानियों को सुलझाने में सहयोगी न होकर परेशानियाँ खड़ी करने में लिप्त रहने वाली है। वह स्वयं अपनी और अपने पति की परेशानी का निमित्त है। निरंजन के वकील ने सांकेतिक तरीके से यहाँ तक कह डाला—

''श्रीमान् जी! मैं नारी का सम्मान करता हूँ और मेरी कोशिश है कि किसी भी हालात में मेरे द्वारा ऐसा एक भी शब्द न निकल जाए जो नारी के सम्मान पर आघात पहुँचाए किन्तु नन्दा जी का कार्य-व्यवहार अनेक संदेहों को जन्म दे रहा है। निरंजन से प्रेम विवाह करना, प्रथम दिन से ही उससे अनबन पालना, उसके चरित्र और व्यवहार पर झूठे आरोप लगाना, कई तरह के प्रश्नों को जन्म दे रहा है। जो श्रीमान् स्वयं समझ रहे होंगे। मुझे इससे आगे कुछ भी नहीं कहना है। श्रीमान् स्वयं न्याय की रक्षा करना चाहेंगे।''

निरंजन के वकील ने इशारों-इशारों में वह सब कुछ कह डाला जो प्रकरण की जड़ में

था। उसने न्यायालय को एक ऐसी पहेली में उलझा दिया जिसका हल आसान नहीं दिख रहा था। न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुनकर दो माह बाद की पेशी देने के आदेश के बाद कार्यवाही पर विराम की घोषणा कर दी।

न्यायालय की कार्यवाही अगले कार्य दिवस तक के लिए स्थगित हो गई और सभी बाहर निकलने लगे किन्तु सभी के मन-मस्तिष्क में निरंजन के वकील द्वारा पूछे गए प्रश्न घूम रहे थे। सभी अपनी-अपनी तरह से नन्दा-निरंजन प्रकरण के बारे में टीका-टिप्पणी कर रहे थे। कैलाश कह रहा था, ''कहीं नन्दा अपना पाप बेचारे निरंजन के माथे मढ़ने के चक्कर में तो नहीं थी इसलिए बेचारे को प्रेम जाल में फँसाया हो? औरत भी क्या चीज बनाई। क्या कुछ कर डाले भरोसा नहीं होता।''

मनोहर का ख्याल उससे भिन्न था। उसे निरंजन की मर्दानगी पर शक था। जितने मुँह उतनी बातें किन्तु अब तो प्रकरण टिक चुका था भरण-पोषण के लिए देने वाले गुजारे-भत्ते पर कि कौन किसे गुजारा भत्ता दे, जो कमा रहा है अथवा जो बेकार-बेरोजगार फिर रहा है।

न्यायालय के सामने ऐसा पहला प्रकरण था कि मर्द कमाता नहीं है और औरत अच्छी खासी पगार पाने वाली है। तब सच्चा हक किसके पक्ष में आता है। न्याय कभी पक्षपात नहीं करता है। उसकी दृष्टि में लिंग-जाति विभेद का कोई मायना नहीं होता किन्तु हमारा समाज नारी के प्रति सहानुभूति रखने के कारण उसके प्रति नरमी की सोच रखता है। इस प्रकरण में नरमी का हकदार किसे माना जाए, उसे जो एक भोले-भाले इंसान के ज़ज़बातों से खेलकर उसक साथ दगा करने के लिए आमादा है या उसे जो निर्दोष है और उस पर कई झूठे आरोप लगाए जाते रहे हैं जो पुष्ट नहीं हो सके।

न्यायालय को न्याय का पक्ष देखना है। कानूनी प्रावधान नारी को शोषण से संरक्षण देने का हिमायती है किन्तु जब नारी नर का शोषण करने पर उतारू हो, वह भी अकारण निर्दोष का, उन हालातों में कानूनी प्रावधानों के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है। इस उधेड़बुन के लिए दो माह तो क्या उससे कहीं अधिक समय भी अपर्याप्त था। सच में यह अवधि कब गुजर गई किसी को पता ही नहीं चल सका।

''आज पेशी है।'' नन्दा के वकील ने नन्दा से कहा कि—

''अब हम उस पर क्या आरोप लगाएँ आप बताएँ।''

''यह आपका काम है, मैंने आपको मुँह-माँगी रकम दे रखी है।''

''मेम साहब! रकम से न्याय नहीं पलटा जा सकता। आपने उस पर जो-जो आरोप लगाए सब झूठे निकले। आप एक भी आरोप साबित नहीं कर पाईं। इसमें वकील या जज क्या कर लेगा। मनगढ़न्त झूठे आरोपों के आधार पर जीत हासिल करना किसी वकील के वश की बात है ही नहीं। न ही ऐसा अन्यायपूर्ण फैसला कोई जज कर सकता है।''

''आप जज को खरीद लो। मैं उसको मुँह-माँगी रकम दे दूँगी।''

''यह मेरे वश की बात नहीं है मेम साहब। आप स्वयं कोशिश कर लें। वैसे मेरी राय से तो जितना पैसा जज को खरीदने पर व्यय करने का इरादा बना रही हैं आप, उससे तो कम निरंजन को गुजारा-भत्ता देने पर भी नहीं आएगा। क्यों न हम निरंजन की माँग ही मान लें।''

''आप धोखेबाज निकले हैं वकील साहब! आपके बहकावे में आकर मैंने उस बेचारे पर तरह-तरह के लांछन लगाए। जग हँसाई कराई और अब तुम मुझे बेवकूफ बना रहे हो।''

''मैं आपके घर नहीं आया था कि आप आपस में लड़ो, तलाक माँगो और फिर अपना और मेरा सिर पीटो। मुझे नहीं लड़ना है ऐसा केस। आप कोई दूसरा वकील कर लें।''

''कल तक तो बहुत बड़े होशियार बन रहे थे आप, फिर आज ऐन मौके पर फुस्स उड़ गए, धोखेबाजी पर उतर आए।''

''आपने ही केस बिगाड़ा है। आपने नौकरी कर ली, आपकी आमदनी ने आपका पक्ष कमजोर कर दिया और उसका मजबूत। मैं क्या कर सकता हूँ। ये तो आपकी गलती है न?''

''तो क्या मैं दूसरों पर आश्रित रहकर उनके हाथों की कठपुतली बनकर अपना शोषण कराती रहती।''

''ये तो आपकी समस्या है मेरी नहीं। यह आपको सोचना था। जहाँ तक मेरा प्रश्न है यह मेरा व्यवसाय है। घोड़ा अगर घास से यारी करेगा तो भूखा मर जाएगा और मैं ऐसी गलती करने का आदी नहीं हूँ। हाँ मैं आपके विरुद्ध साक्ष्य नहीं बनूँगा।''

वकील के दो टूक जवाब से नन्दा के पैरों के नीचे की जमीन खिसक गई। वह उस चौराहे पर आ खड़ी हुई थी जहाँ से उसे अपने हितार्थ कोई राह नजर नहीं आ रही थी। वह आँखें बन्द करके बैठ गई। कुछ देर सोचती रही। जब आँखें खोली तो वकील वहाँ से जा चुका था। उस समय वह अपने आपको दोष देने के लिए शब्द नहीं खोज पा रही थी। उसके सामने सिर्फ दो ही रास्ते बचे थे—एक निरंजन से क्षमा माँगकर उसके साथ समझौता कर लेना, दूसरा उसे गुजारा-भत्ता देने की सहमति देकर एक अनजान बियाबान की भटकन में स्वयं को धकेल देना। इसी उधेड़बुन में उलझी रही वह और पेशी पर जाने का समय पास आ गया।

सम्पादक—'कर्मनिष्ठा' (मासिक),
सुन्दरम बंगला, 50, महाबली नगर,
भोपाल-462042 (म.प्र.)

कहानी

फरिश्ता

प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा

सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष। स्नातकोत्तर राजनीति शास्त्र। वरिष्ठ साहित्यकार, अधिस्वीकृत स्वतंत्र पत्रकार। विभिन्न विधाओं में 13 पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। अनेक रचनाएँ अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनूदित और प्रकाशित।

उस दिन मोहम्मद हसन ने अपने किवाड़ खोले तो एक अधेड़ से व्यक्ति को सामने खड़ा पाया—बड़ी-बड़ी आँखें, तराशी हुई हल्की दाढ़ी और भयानक सी शक्ल। मोहम्मद हसन को देखते ही वह आदमी आगे बढ़ा और आदाब अर्ज की। मोहम्मद हसन, औपचारिक उत्तर देकर, उसकी तरफ प्रश्नवाचक दृष्टि से देखता रहा।

वह आदमी आगे बढ़ते हुए बोला—''ऐसे क्या देख रहे हो हसन भाई? मुझे पहचाना नहीं? मैं याकूब हूँ, जुम्मन शेख का बेटा। गाँव में तुम्हारे पड़ोस में ही तो हमारा मकान था।''

मोहम्मद हसन को गाँव छोड़े अरसा बीत गया था। साहूकार का कर्ज चुकाते-चुकाते, जब उसकी सारी जमीन बिक गई तो शहर में आकर एक प्राइवेट दफ्तर में चपरासी के पद पर काम करने लगा। अभी पाँच साल पहले अपने पद से रिटायर हुआ तो माथुर साहब के यहाँ उसने नौकरी कर ली। माथुर साहब, दफ्तर में भी उसके अफसर थे—बड़े नेक और दयालु। शहर आने के बाद वह एक-दो बार ही गाँव जा पाया था। सो, याकूब को तो वह नहीं पहचान पाया, लेकिन जुम्मन शेख की उसे याद आ गयी। गाँव का नामी पहलवान था। अच्छा खाता-पीता घर था। एक दिन न जाने क्या हुआ कि जुम्मन शेख के पेट में बहुत जोरों से दर्द उठा और वही दर्द उसके लिए काल बन गया। जुम्मन शेख, मोहम्मद हसन से करीब दस साल बड़ा था और उसके पिता से दस साल छोटा। इससे, जुम्मन शेख की मोहम्मद हसन से भी दोस्ती थी और उसके पिता से भी। फिर भी मोहम्मद हसन कहता उसे काका ही था। उसी जुम्मन शेख के बेटे को आज अपने सामने देखकर उसे बहुत खुशी हुई। बड़े प्यार से वह याकूब को अपने कमरे में लाया और इधर-उधर की बातें होने लगी।

बातों के बीच में, इधर-उधर देखकर, याकूब ने फुसफुसाते हुए कहा—''हसन भाई! अब इस देश में अपने मजहब को कोई नहीं पूछता। मुझे लगता है, हालात अगर यही रहे तो कुछ ही दिनों में अपना मजहब इस देश से नेस्तनाबूद हो जाएगा।''

मोहम्मद हसन को बातों का यह मोड़ समझ में नहीं आया और न मजहब के नेस्तनाबूद होने की बात समझ में आई। वह अपने मजहब का पक्का था और आज तक उसे, इसमें कोई अड़चन महसूस नहीं हुई थी। मजहब के खतरे में होने की बात भी उसे समझ में नहीं आई।

याकूब ने उसे समझाते हुए कहा—''मजहबी झगड़े, हिन्दुओं के द्वारा ही शुरू किए जाते हैं। इससे हर मुसलमान की जिन्दगी खतरे में हैं।'' फिर थोड़ा रुककर, अपनी आवाज को और भी धीरे करता हुआ वह बोला—''फिर तुम्हारा मालिक भी तो हिन्दू ही है हसन भाई! क्या पता...?''

''याकूब!'' —मोहम्मद हसन ने डाँटा—''मेरे मालिक बहुत अच्छे हैं। उनके खिलाफ मैं कोई बात नहीं सुन सकता।''

मोहम्मद हसन यह बात कैसे भूल सकता था कि माथुर साहब की कृपा से ही, उसे इस शहर में नौकरी मिली हुई है, अन्यथा उस जैसे रिटायर हुए बूढ़े आदमी को कौन पूछता? इसे भी बढ़कर एक बात और थी। मोहम्मद हसन के एक जवान बेटी थी—सलमा, जिसके विवाह की चिन्ता उसे खाए जा रही थी। उसके पास इतना पैसा नहीं था कि कहीं ठीक जगह उसका विवाह कर दे। माथुर साहब ने अपनी तरफ से उस लड़की की शादी की और सारा खर्च खुद उठाया। माथुर साहब, मोहम्मद हसन को नौकर नहीं, अपने घर का एक सदस्य मानते थे। फिर ऐसे देवता पुरुष के प्रति कटु वचन वह कैसे सहन कर सकता था।?

मोहम्मद हसन के बदले तेवरों को देखकर, याकूब ने भी अपने स्वर को थोड़ा बदल लिया। मोहम्मद हसन की नब्ज टटोलते हुए वह कहने लगा—''मैं अकेले माथुर साहब की बात नहीं करता हसन भाई! उनके घर में और भी तो लोग हैं। दो तो जवान बेटे ही हैं। उनके बेटे शंकर के बारे में तो सुना है कि वह हमारी कौम का कट्टर दुश्मन है।''

''नहीं, नहीं। यह तुम्हारा विचार गलत है। शंकर भैया तो बहुत अच्छे हैं।'' —मोहम्मद

हसन ने कह तो दिया लेकिन अपने स्वर की कमजोरी उसे खुद समझ में आ गई। माथुर साहब के अपने तथा रिश्तेदारों के भी सभी बच्चे, उसे 'हसन काका' कहते थे। शंकर भी उसे 'हसन काका' कहता, लेकिन केवल माथुर साहब के सामने। उनके पीछे वह उसे कभी 'हसन' कहता और कभी 'हसनू'। मोहम्मद हसन को शंकर का इस तरह बोलना अच्छा नहीं लगता, परन्तु वह अपने आप को यह कहकर समझा लेता कि वह अभी नादान है। कभी-कभी शंकर की अशिष्टता की बात माथुर साहब के कानों में जाती तो शंकर को बुरी तरह डाँटते, लेकिन मोहम्मद हसन मुस्कराकर माथुर साहब को शान्त कर देता। शंकर के अशिष्ट व्यवहार से मोहम्मद हसन खिन्न अवश्य रहता था, फिर भी वह इस समय यह मानने के लिए तैयार नहीं हो सकता कि अट्ठारह वर्ष का नादान शंकर उसका या उसकी पूरी कौम का दुश्मन हो सकता है।

मोहम्मद हसन के स्वर की इस कमजोरी को याकूब ने भी भांप लिया। अंधेरे में फेंके गए अपने तीर की इस सफलता पर खुश होते हुए वह बोला—''हसन भाई! तुम बहुत भोले हो। तुम्हें पता नहीं, हमारे खिलाफ कैसे-कैसे जाल बिछाए जा रहे हैं। अपनी हिफाजत के लिए तुम्हारे पास कुछ न कुछ हथियार तो होना ही चाहिए। तुम्हीं बतलाओ, है तुम्हारे पास कोई हथियार?''

''हाँ, हैं क्यों नहीं? वह रहा मेरा हथियार।'' कहते हुए मोहम्मद हसन ने कोने में रखी अपनी लाठी की तरफ इशारा किया। याकूब ठठाकर हँस पड़ा—''किस जमाने की बातें कर रहे हो हसन भाई? आजकल तो इस सड़ी-गली लाठी से कुत्ते-बिल्ली भी नहीं डरते। फिर हमारा मुकाबला तो मनुष्यों से होगा, हथियार-बन्द मनुष्यों से। लो यह रख लो छुपाकर।''

मोहम्मद हसन चौंक गया। याकूब उसे एक पिस्तौल दे रहा था।

''कहाँ से आई तुम्हारे पास यह पिस्तौल?'' मोहम्मद हसन का स्वर काँप रहा था।

''कहीं से भी आई हो हसन भाई! तुम इसकी चिंता क्यों करते हो? तुम तो इसे चुपचाप रख लो, लेकिन छुपाकर। कहीं किसी को पता न चले। इसके साथ ये अलग से कुछ कारतूस भी हैं।''

''लेकिन मुझे क्या करना है इस पिस्तौल का?''

''अपनी हिफाजत करनी है हसन भाई! और अपनी कौम के दुश्मनों का खात्मा भी करना है।'' इसके साथ ही याकूब ने लगभग जबरदस्ती पिस्तौल मोहम्मद हसन के हाथ में दे दी। कारतूस भी उसके साथ थे।

तभी बाहर से कुछ आहट सुनाई दी। मोहम्मद हसन ने हड़बड़ा कर पिस्तौल और कारतूसों को पास में पड़े कपड़ों के नीचे छुपा दिया।

अन्दर आने वाली सुषमा थी—माथुर साहब की लाड़ली और इकलौती बेटी। अपने जीवन के बीस वसन्त देख चुकी थी। कॉलेज में एम.ए. की छात्रा थी। अन्दर आते ही बोली—''हसन काका! आपको मम्मी ऊपर बुला रही हैं।''

''अच्छा बेटी! अभी आया!'' मुश्किल से इतना ही मोहम्मद हसन कह पाया। उसके ललाट पर पसीने की बूँदें चमकने लगीं।

सुषमा ने मोहम्मद हसन की यह हालत देखी तो उसे चिन्ता हुई। पूछा—''क्या बात है काका? तबीयत खराब है क्या?'' यह कहकर वह आगे बढ़ी और मोहम्मद हसन के ललाट पर हाथ रखकर उसकी गरमाई देखने लगी।

''नहीं, नहीं, बेटी! मैं बिल्कुल ठीक हूँ। थोड़ी देर इनसे बात कर लूँ। फिर आ रहा हूँ। तुम ऊपर चलो।''

सुषमा ने अब ध्यान दिया। उसके पास कोई भी बैठा था। बोली—''माफ करना काका! मैंने इन्हें देखा नहीं था। कोई जल्दी नहीं है। बाद में आ जाना।'' कहकर सुषमा चली गई।

याकूब ने सुषमा को देखा तो देखता ही रह गया। ऐसी सुन्दरता उसने कम ही देखी थी। बोला—''बड़ी हसीन छोकरी है हसन भाई! कौन है?''

मोहम्मद हसन ने अपने को नियंत्रित करते हुए तनिक डाँट कर कहा—''ढंग से बातें करो याकूब! यह मेरी बेटी के बराबर है—सुषमा। माथुर साहब की लड़की।''

याकूब हल्का-सा मुस्कराकर उठ खड़ा हुआ—''अच्छा हसन भाई! अब चलूंगा।'' इससे पहले कि मोहम्मद हसन कुछ और कहे, याकूब वहाँ से चलागया।

याकूब के जाने के बाद, हसन को पिस्तौल की याद आयी। उसने कपड़ों के नीचे से पिस्तौल और कारतूस निकाले। सेना से सेवानिवृत्त हुए उसके मामा के पास एक बन्दूक थी और एक पिस्तौल भी। इसलिए पिस्तौल हसन के लिए कोई नयी चीज नहीं थी। फिर भी इतने वर्षों के बाद पिस्तौल को देखकर उसे कुछ डर-सा लगा। फिर उसका लाइसेंस भी तो नहीं था उसके पास। उसका डर कुछ और गहरा हो गया। उसने सोचा—''इस बार याकूब आएगा तो उसे लौटा दूँगा।'' और इस निर्णय के साथ उसने पिस्तौल को अपने बक्स में डाल दिया।

अगले ही दिन उस नगर में साम्प्रदायिक दंगा शुरू हो गया। कारण के रूप में एक अफवाह थी, जो अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग रूप में फैलाई गई। ब्रह्मपुरी में कुछ लोगों ने कहा कि सैयद मोहल्ले में हिन्दुओं की हत्या की जा रही है और सैयद मोहल्ले में यह फैलाया गया कि ब्रह्मपुरी में मुसलमानों की हत्या की जा रही है। उसके बाद तो लोगों का जोश, होश खो बैठा और उनका खून एकदम उबाल खाने लगा। हर आदमी अपने को धर्म और मजहब का एकमात्र संरक्षक समझने लगा। पहले साधारण झड़पें हुईं, फिर लाठियाँ

चलीं और चाकू चले। थोड़ी देर बाद न जाने कहाँ से लोगों के पास तरह-तरह के हथियार आ गए। कुछ लोगों के पास बन्दूक और पिस्तौलें भी थीं। चारों तरफ मार-काट और धाँय-धाँय होने लगी। सड़कें खून से नहा गईं।

मोहम्मद हसन ने सुना तो अचकचाकर धम्म से बैठ गया। उसने अपनी बिना लाइसेंस की पिस्तौल का ध्यान आया। कहीं मालिक को उसके बारे में जानकारी मिल जाए तो? ऐसे वातावरण में क्या सोचेंगे वे? वैसे माथुर साहब, उसके कमरे में कम ही आते थे। फिर भी आने का खतरा तो था ही। और फिर उनकी बेटी सुषमा तो अक्सर ही उस कमरे में आती जाती रहती थी। सुषमा स्वभाव से चंचल भी थी। इसलिए मोहम्मद हसन के किसी भी सामान को इधर-उधर करते रहना उसके लिए सामान्य बात थी। वैसे भी अपने काका से या उसके सामान से दुराव कैसा? मोहम्मद हसन अपने सामान में ताला कभी नहीं लगाता था। सो, अब ताला लगाने का भी कोई प्रश्न नहीं था।

मोहम्मद हसन ने कुछ सोचा और अपने हित में यही उचित समझा कि पिस्तौल को कमरे में कहीं रखने के स्थान पर, हमेशा अपने पास ही छुपाकर रखे।

पिस्तौल को अपने कपड़ों में छुपाये मोहम्मद हसन दिन भर इधर-उधर का काम करता रहा। पिस्तौल के रूप में उसे महसूस हो रहा था, जैसे वह कोई बहुत बड़ा गुनाह अपने अन्दर छुपाए हुए हो। इसलिए वह कुछ घबराया हुआ-सा लग रहा था। माथुर साहब को शंका हुई, कहीं उसकी तबीयत खराब तो नहीं है। मगर जब उन्होंने उससे पूछा तो हसन मुस्कराकर टाल गया।

दो दिन किसी तरह निकल गए। मोहम्मद हसन रोज ही याकूब का इंतजार करता, लेकिन वह नहीं आया। मोहम्मद हसन, समझ नहीं पा रहा था कि वह क्या करे?

तीसरे दिन शहर में कुछ शांति थी। उस दिन माथुर साहब किसी आवश्यक कार्य से बाहर गए हुए थे। उनका बड़ा लड़का अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई के सिलसिले में, पिछले एक महीने से बाहर था। दोपहर ढले मोहम्मद हसन, माथुर साहब के छोटे लड़के शंकर के कमरे में एक स्टूल पर चढ़ा हुआ कुछ तस्वीरें टाँग रहा था। शंकर उस समय चारपाई पर लेटे हुए एक पत्रिका पढ़ने में व्यस्त था। शंकर की प्रकृति माथुर साहब के बिल्कुल विपरीत थी। सबसे छोटा होने के कारण, घर में उसे आवश्यकता से अधिक लाड़-प्यार मिला। इससे उसके स्वभाव में कुछ दम्भ आ गया था। शायद इसी दम्भ के कारण वह मोहम्मद हसन को अक्सर उचित सम्मान नहीं दे पाता था।

पत्रिका पढ़ते-पढ़ते उसने मोहम्मद हसन पर नजर डाली तो वह काँप गया। उसके कुर्ते के नीचे रखी पिस्तौल का एक भाग शंकर को साफ नजर आ गया। उसके दिमाग में कई बातें एक साथ कौंधी। शहर में फैला हुआ साम्प्रदायिक दंगा, बहुत से व्यक्तियों से पुलिस द्वारा प्राप्त बिना लाइसेंस के हथियार और आज उसके ही घर में, उसके पिता के विश्वस्त नौकर की बगल में लगी पिस्तौल। क्षण भर के लिए वह भौंचक्का रह गया। फिर सँभल कर बैठ गया। उसकी इच्छा हुई कि मोहम्मद हसन से टकरा जाए। लेकिन पिस्तौल को देखकर उसकी हिम्मत पस्त हो गई। उसे महसूस हुआ कि केवल उसका ही नहीं बल्कि उसका परिवार के सभी सदस्यों का जीवन खतरे में है। मोहम्मद हसन से कुछ कहना सुनना भी उसे खतरे से खाली नहीं लगा। वह चुपचाप बाहर निकल पड़ा। उसका एक मित्र था सुधीर मेहता। उसके पिता पुलिस में इंस्पेक्टर थे। शंकर का विचार जल्दी उन्हें खबर देना था। आने वाला प्रत्येक क्षण उसे खतरे से भरा हुआ लग रहा था।

मोहम्मद हसन जब ऊपर काम कर रहा था तो सुषमा उसके कमरे में बैठी हुई कुछ पढ़ रही थी। अचानक उसने आवाज सुनी–''हसन भाई!''

सुषमा ने गर्दन उठाई तो वही व्यक्ति था, जिसे वह एक बार पहले भी हसन काका के साथ देख चुकी थी–याकूब।

सुषमा ने शिष्टता से कहा–''हसन काका ऊपर हैं। आप बैठिए। मैं अभी बुला देती हूँ।''

याकूब सुषमा की तरफ मादक नजरों से देखता हुआ कमरे के अन्दर आ गया और पास में पड़ी एक कुर्सी पर बैठता हुआ बोला–''कोई जल्दी नहीं है। आ जाएगा धीरे-धीरे। आप बैठिए।''

सुषमा को याकूब की नजरों में छुपा शैतान नजर आ गया। वह बाहर की तरफ लपकी तो याकूब ने उसे पकड़ लिया–''कुछ हमारी भी तो सुन लो। ऐसी जल्दी क्या है?''

सुषमा चीख पड़ी–''छोड़ दे दुष्ट! नहीं तो मैं अभी चिल्ला दूँगी।'' यह कहकर उसने याकूब के हाथ को काट लिया।

याकूब दर्द से बिलबिला उठा। फिर भी उसने सुषमा को छोड़ा नहीं। हाँ, आगे बढ़कर दूसरे हाथ से सुषमा का मुँह अवश्य बन्द कर दिया।

सुषमा पिंजरे में बन्द पक्षी की तरह तड़फड़ाने लगी। बन्द मुँह से आवाज निकालने की कोशिश जरूर कर रही थी, मगर वह बहुत हल्की थी।

जब याकूब सुषमा पर अपना नियंत्रण जमाने की कोशिश कर रहा था, तभी मोहम्मद हसन अपना काम निपटाकर आ गया। मोहम्मद हसन ने स्थिति देखी तो उसकी आँखों में खून उतर आया। वह क्रोध से चीखा–''याकूब!''

याकूब ने मोहम्मद हसन को देखा तो वह सहम गया, लेकिन केवल क्षण भर के लिए। वह हँसते हुए बोला–''अरे हसन भाई! अच्छा हुआ तुम भी आ गए। मैं इस लड़की से निकाह करूँगा। तुम मेरी मदद करोगे ना? कौम का सवाल है हसन भाई!''

''हट जा कौम के कुत्ते!'' कहकर मोहम्मद हसन याकूब के पास पहुँच गया और उसे जबरदस्ती सुषमा से अलग करने लगा। याकूब ने उसे पैर से धकेलना चाहा, परन्तु बूढ़े शरीर में ताकत कम न थी। तब, याकूब ने एक हाथ से सुषमा का मुँह पकड़े हुए दूसरे हाथ से अपना चाकू निकाल कर मोहम्मद हसन के मार दिया। वार सीने पर पड़ा और काफी गहरा उतर गया। मोहम्मद हसन गिर गया और मदद के लिए चिल्लाने लगा। घर में इस समय केवल मालकिन थी और वह भी तीसरी मंजिल पर। काफी अधेड़ थी और कुछ ऊँचा भी सुनती थी। मोहम्मद हसन जानता था कि उनका आना सम्भव नहीं है और अगर आ भी गई तो वह कर भी क्या सकती हैं? माथुर साहब का यह मकान भी बस्ती से कुछ हटकर एकान्त में था। मोहम्मद हसन अपनी मजबूरी पर रोने लगा। उसकी नजरों के सामने सुषमा बेटी की इज्जत जा रही थी और वह मजबूर था।

अचानक मोहम्मद हसन को कुछ याद आया। उसने कपड़ों में छुपी अपनी पिस्तौल को निकाला और पड़े-पड़े ही याकूब से बोला– ''छोड़ दे याकूब, सुषमा बेटी को। नहीं तो आज तू जिन्दा नहीं रह सकता। तेरी पिस्तौल आज तेरा ही खून कर देगी।''

याकूब पिस्तौल देखकर क्षण भर के लिए हक्काबक्का रह गया। अगले ही क्षण उसने सुषमा को छोड़कर मोहम्मद हसन पर छलांग लगा दी और पिस्तौल छीनने की कोशिश करने लगा। मगर इस बीच में, मोहम्मद हसन की काँपती उँगली पिस्तौल का ट्रिगर दबा चुकी थी। धाँय की आवाज हुई और याकूब का निर्जीव शरीर एक ओर लुढ़क गया। मोहम्मद हसन स्वयं आश्चर्यचकित था। पिस्तौल भरी हुई है, इसकी तो उसे भी जानकारी नहीं थी।

आतंकित सुषमा सहमी-सी खड़ी थी। याकूब को गिरते देखकर उसका ध्यान मोहममद हसन की तरफ गया। उसके सीने से खून निकल कर कमरे की जमीन को लाल कर रहा था और उसकी आँखें बन्द होने लगी थीं। सुषमा एक हल्की चीख के साथ हसन काका से पिट गई। ठीक उसी समय शंकर, पुलिस इंस्पेक्टर मेहता को लिए हुए लगभग दौड़ता-सा दरवाजे में दाखिल हुआ। उसने गोली की आवाज सुन ली थी। उस आवाज को सुनकर उसे महसूस हुआ कि मोहम्मद हसन उसके परिवार में अवश्य ही किसी की हत्या कर चुका है। मगर जब, यहाँ पर हालात कुछ और देखे तो वह आश्चर्यचकित रह गया। उसके कुछ समझ में नहीं आया।

इंस्पेक्टर मेहता के इशारे पर शंकर जल्दी से गया और डॉक्टर को आने के लिए टेलीफोन करके वापिस आ गया। तब तक इंस्पेक्टर मेहता अपने रुमाल से पिस्तौल पकड़ कर जाँच कर चुका था। वह एक विदेशी पिस्तौल थी। पिछले दिनों इसी तरह के अनेक विदेशी हथियार शहर में पकड़े गए थे। सुषमा हसन के पास बैठी सिसक रही थी।

''यह पिस्तौल तुम्हारे पास कहाँ से आइ?'' इंस्पेक्टर मेहता ने मोहम्मद हसन से पूछा।

मोहम्मद हसन ने धीरे-धीरे से अपनी आँखें खोलीं और अटकते हुए बोला–''इसी ने दी थी इंस्पेक्टर साहब! मैं नहीं चाहता था लेना, लेकिन यह जबरदस्ती मेरे पास पटक गया और आज जब सुषमा बेटी की इज्जत से खेलना चाहता था तो मैंने इसी की पिस्तौल से इसको गोली मार दी। सच मानना इंस्पेक्टर साहब, मुझे तो यह भी पता नहीं था कि इसमें गोलियाँ भरी हुई हैं। मैं तो इसे केवल डराना चाहता था।''

इंस्पेक्टर मेहता निर्जीव याकूब के पास जाकर उसे गहरी नजर से देखते रहे। इसके बाद कुछ सोचते हुए उसकी दाढ़ी को पकड़ कर खींचा तो वह उनके हाथ में आ गई। इंस्पेक्टर मेहता आश्चर्यचकित रह गए। फिर एकदम चिंहुक उठे। बोले–''अरे यह तो मज्जू है, मशहूर बदमाश और विदेशी जासूसों का गुर्गा। शहर भर में जो हथियार बाँटे गए, उनके पीछे इसी का हाथ था। हमें तो इसकी बहुत सख्त तलाश थी। इस मामले में तुमने पुलिस की बहुत मदद की है!''

''खुदा मालिक है इंस्पेक्टर साहब! जो भी करवाता है, वही करवाता है।'' फिर मोहम्मद हसन ने दूर खड़े शंकर को इशारे से अपने पास बुलाया। उसकी आवाज डूबती जा रही थी–''शंकर भैया! मालिक जब आएँ तो उनसे कहना कि उनके अनजाने में, मैंने पिस्तौल को अपने पास रखकर बहुत बड़ा गुनाह किया था। खुदा ने मुझे उसकी सजा दे दी। अब वे भी मुझे माफ कर दें।''

शंकर अब तक सब कुछ समझ चुका था। मोहम्मद हसन पर शक करने के लिए, उसे अपने पर बड़ी ग्लानि हो रही थी। धीरे से मोहम्मद हसन के पास बैठ गया और बोला–''हसन काका! आपने कोई गुनाह नहीं किया। आप तो फरिश्ता हैं। गुनहगाह तो मैं हूँ, जो हमेशा आपका अपमान करता रहा और आज भी पिस्तौल देखकर आप पर शक किया। परन्तु चिन्ता न करो हसन काका, डॉक्टर आ रहा है। आप ठीक हो जाएंगे।''

डॉक्टर के आने की बात सुनकर, मोहम्मद हसन के मुर्दा चेहरे पर पल भर के लिए हल्की-सी मुस्कान छा गई और फिर वह शान्त हो गया। अगले ही क्षण बाहर डॉक्टर की कार रुकने की आवाज आई। सुषमा जाकर डॉक्टर को लिवा लाई। डॉक्टर ने मोहम्मद हसन की नब्ज देखी। प्राण पक्षी उड़ चुके थे। सुषमा चीखकर हसन काका पर गिर पड़ी। शंकर ने झुककर हसन के पैर छू लिए। पुलिस इंस्पेक्टर मेहता ने अपनी कैप उतार कर उसे सम्मान दिया।

10/611, मानसरोवर, जयपुर-302020 (राजस्थान)

कहानी

उसका विद्रोह

किशन लाल शर्मा

चिंतनशील कहानीकार, कई पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, लेख प्रकाशित। लेखन में सक्रिय उपस्थिति।

''सरोज को इस घर में क्या कमी है? जैसे घर में दूसरे लोग रहते हैं, वह भी रह लेगी। एक औरत को जीने के लिए क्या चाहिए? दो जून की रोटी और तन ढकने को कपड़ा।'' बेटे का पत्र पढ़कर श्यामलाल इत्मीनान से बोले। श्वसुर की बात सुनकर सरोज के दिल को ठेस लगी। कितने हल्के फुल्के ढंग से उन्होंने एक औरत के जीवन का फैसला कर दिया था। इस निर्णय को सुनकर सरोज तिलमिला गई। वर्षों से सोई पड़ी उसकी आत्मा जाग गई। इसी का परिणाम था कि वह फट पड़ी, ''औरत को पेट भरने को रोटी और तन ढकने को कपड़ा ही नहीं चाहिए... उसकी भी इच्छाएँ होती हैं... जरूरतें होती हैं... इसीलिए वह जीवन साथी के रूप में पुरुष का वरण करती है।''

सरोज अपनी बात कहकर अपने कमरे में चली गई। सरोज की बातें सुनकर श्यामलाल ही नहीं परिवार के दूसरे सदस्य भी हक्के बक्के रह गए। श्यामलाल के खानदान में पर्दा प्रथा थी। सरोज श्वसुर एवं अपने से उम्र या रिश्ते में बड़े मर्दो से पर्दा करती थी। वह उन लोगों के घर में रहने पर कभी ऊँची आवाज में बात नहीं करती थी। लेकिन आज सरोज शर्म-हया छोड़कर जोर से बोल पड़ी थी। सरोज में अचानक आये परिवर्तन से परिवार के सभी सदस्य स्तब्ध रह गए। सब लोग एक ही बात सोच रहे थे। क्या हो गया था, आज उसे अचानक?

सरोज अपने कमरे में जाकर पलंग पर बैठ गई। वह काफी देर तक सोचती रही और फिर मन ही मन में निर्णय करके उठ खड़ी हुई। सूटकेस निकालकर अपने कपड़े जमाने लगी।

हमारे यहाँ शादी का मतलब होता है, जीवन भर का बन्धन। जिस घर में औरत की डोली जाती है, उससे उसकी अर्थी ही उठती है। लेकिन उसने पुरानी परम्परा को तोड़ कर घर छोड़ने का निर्णय कर लिया था।

हर लड़की जवानी की दहलीज पर कदम रखते ही अपने भविष्य का सुन्दर सपना देखने लगती है। उसने भी अपने भविष्य का हसीन सपना देखा था। परन्तु उसका देखा सपना इस तरह छिन्न-भिन्न हो जाएगा, इसकी कल्पना उसने स्वप्न में भी न की थी। शादी सरोज के लिए मखौल बन कर रह गयी थी। अगर श्यामलाल ने शादी करने से पहले अपने बेटे की पसंद पूछ ली होती, तो उसे आज यह दिन न देखना पड़ता। अगर उसे जरा-सा भी एहसास होता कि शादी के बाद उसके साथ ऐसा होगा, तो वह कभी शादी के लिए तैयार नहीं होती। ऐसी शादी से बेहतर आजीवन कुँवारी रहना पसन्द करती। महज अपनी झूठी शान, इज्जत और अकड़ के चक्कर में श्यामलाल ने उसका जीवन बर्बाद कर दिया था।

श्यामलाल के तीन बेटे नरेश, महेश और सुरेश थे। नरेश और महेश ने गाँव के स्कूल में आठवीं की पढ़ाई पूरी की थी। फिर वे पिता के साथ अपना पुश्तैनी धन्धा खेती करने लगे थे। सुरेश गाँव के स्कूल से आठवीं पास करने के बाद आगे पढ़ना चाहता था। बेटे की इच्छा का ख्याल करके श्यामलाल ने सुरेश को कोटा पढ़ने भेज दिया। यहाँ रहकर उसने बी.ए. और फिर एम.बी.ए. किया था।

पढ़ाई पूरी करने के बाद सुरेश ने अपने दोनों भाइयों की तरह पुश्तैनी धन्धा खेती नहीं अपनाया था। वह नौकरी करना चाहता था। आजकल खेती फायदे का सौदा नहीं रहा। पिता ने उसे नौकरी करने की इजाजत दे दी। सुरेश की अहमदाबाद की एक कम्पनी में नौकरी लग गई।

श्यामलाल पुराने खयालात के रूढ़िवदी इंसान थे। उनका मानना था कि बेटा-बेटी की शादी करना माँ-बाप का विशेषाधिकार था। उन्होंने अपने दोनों बेटे नरेश और महेश की शादी अपनी पसन्द की लड़की से की थी। दोनों बेटों ने अपने पिता के फैसले पर कोई ऐतराज नहीं किया था। उन्होंने सुरेश के लिए भी एक लड़की पसन्द कर ली। लड़की के बारे में न सुरेश को बताया और न उसकी पसन्द पूछी थी। सुरेश को फोन करके गाँव बुला लिया। सुरेश गाँव आया तब उसे पता चला था कि उसका रिश्ता तय कर दिया गया है। और चट मँगनी, पट व्याह कर दिया जाएगा।

अपने रिश्ते की बात सुनकर सुरेश बुरी तरह बौखला गया था। बेटे के विद्रोही तेवर देखकर श्यामलाल के कान खड़े हो गए। कहीं वह चुपचाप घर से चला गया तो गाँव

में बड़ी बदनामी होगी। उनकी इज्जत धूल में मिल जाएगी। सुरेश कोई गड़बड़ न कर पाए इसलिए श्यामलाल ने उस पर पहरा बिठा दिया। माँ ने भी अपनी कसम दिलाकर उसे दूल्हा बनने पर मजबूर कर दिया। न चाहते हुए भी उसे सरोज के साथ सात फेरे लेने पड़े। सुहागरात को औरतों ने उसे जबरदस्ती सरोज के कमरे में ढकेल दिया। सरोज सुहाग सेज पर बैठी थी। सुरेश उसके पास जाकर बोला, ''मैं दूसरी लड़की से प्यार करता हूँ और उससे शादी करना चाहता हूँ। मैं तुमसे शादी करना नहीं चाहता था, लेकिन मुझे जबरदस्ती तुम्हारे साथ ब्याह दिया गया।''

सुरेश अपनी बात कहकर कमरे में पड़े सोफे पर सो गया था, लेकिन सरोज पूरी रात सुहाग सेज पर बैठी आँसू बहाती रही।

सुरेश शादी के बाद गाँव से गया तो फिर लौटकर नहीं आया था। सरोज नारी जात शर्म और संकोच की वजह से यह बात किसी से कह नहीं पाई। सुरेश ने अहमदाबाद की नौकरी छोड़ दी थी। वह कहाँ गया, पता नहीं।

सरोज समाज की नजरों में विवाहित थी। लोगों की नजरों में वह सुरेश की पत्नी थी। परन्तु वास्तविक जीवन में शादी के बाद भी कुँवारी थी। उसकी देह अछूती थी। विवाहित होने के बाद भी पति ने उसे पत्नी का दर्जा नहीं दिया था।

पत्नी की ससुराल में इज्जत तभी होती है, जब वह पति की चहेती हो। पति उसे प्यार करता हो। अगर पति पत्नी को नहीं चाहता हो... उससे प्यार नहीं करता हो... उसकी उपेक्षा करता हो, तो ससुराल में उसकी स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है। सब लोग उसकी उपेक्षा करने लगते हैं। ऐसा ही सरोज के साथ हुआ था। ससुराल में उसकी स्थिति नौकरानी जैसी हो गई। वह सुबह से रात तक कोल्हू के बैल की तरह काम में लगी रहती, तब कहीं जाकर उसे दो जून की रोटी नसीब होती। परिवार के सभी सदस्य छोटा हो या बड़ा, सभी उसे नौकरानी समझते। सभी उससे आदेश के स्वर में बातें करते।

श्यामलाल का मानना था कि समय गुजरने के साथ सुरेश को अपनी भूल का अहसास होगा। सरोज भी यही सोचती थी। एक दिन पति को उसकी याद आएगी और वह उसके पास आएगा। अपने किए पर माफी माँगेगा और उसे अपना लेगा। इसी उम्मीद के सहारे धीरे-धीरे दिन गुजर रहे थे। और पाँच साल गुजर गए। पाँच साल बाद पति नहीं, उसका खत आया था। उसने लिखा था, ''आपने मेरी शादी मेरी मर्जी के खिलाफ जबरदस्ती की थी। इस शादी को मैं नहीं मानता। मैंने शादी कर ली है। मेरी तरफ से सरोज पूर्णतया आजाद है। वह अपने जीवन के बारे में जो चाहे फैसला कर सकती है।''

ससुराल पति की वजह से होता है। जब पति ही उसका नहीं रहा, तो वह ससुराल में रहकर क्या करती? श्यामलाल चाहते थे, सुरेश की दूसरी शादी की बात गाँव में किसी को पता न चले। ऐसा तभी सम्भव था, जब सरोज वहीं रहे। लेकिन सरोज को यह मंजूर नहीं था। वह सूटकेस लेकर अपने कमरे से बाहर आई।

''मैं जा रही हूँ।''

''बेहतर होता तुम यहीं रहती'', श्यामलाल सरोज को समझाते हुए बोले। ''यह घर तुम्हारा है, तुम इस घर की बहू हो।''

''मेरा घर...'' सरोज विद्रूप-सी हँसी हसी। ''जब पति ही मेरा नहीं रहा, तो यह घर मेरा कैसे हो गया...?''

जिस घर से सरोज की अर्थी उठनी थी, उस घर से सरोज जीते-जी चली गयी थी।

103, रामस्वरूप कॉलोनी, शाहगंज,
आगरा-282001 (उत्तर प्रदेश)

कहानी

किट्टू

विभा खरे

देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग बीस वर्षों से कहानियों एवं आलेख आदि का प्रकाशन। रेडियो स्टेशन झाँसी और मथुरा से कहानियों का प्रसारण।

किट्टू ...किट्टू... तुम कहाँ हो? इधर आ जाओ...। जल्दी से आओ देर हो रही है। चलो घर चलें। मैंने तुम्हारे लिए गर्मागरम दाल बनायी है। आ जाओ...

हे भगवान! पता नहीं किधर को निकल गयी? चार घंटे से परेशान हो रहा हूँ आखिर गई कहाँ? धरती खा गयी या आसमां निगल गया?

ढूँढते-ढूँढते रात के दस बज गए। काली अंधेरी रात... हाथ में टार्च लिए एक तरफ से सारी झाड़ियों, गड्ढों, घास-फूस सब जगह बड़े ध्यान से देख रहा था।... पता नहीं कहाँ भटक गयी?

किसी सम्भावित आशंका से मेरा दिल धड़क रहा था। नन्हीं सी जान... पता नहीं किस हाल में होगी? दुनिया की चालबाजियों से बिल्कुल अनजान है वो...। कहीं किसी छोटे, बड़े जानवर का शिकार तो नहीं बन गयी? कहीं किसी कुत्ते की पकड़ में तो नहीं आ गयी?

ज्यों-ज्यों रात बढ़ती जा रही थी तरह-तरह की आशंकाएं मेरे मस्तिष्क को व्यथित कर रही थीं। अगर कहीं... नहीं मिली तो क्या होगा? बच्चे लोग कितना समझा बुझाकर चार दिन के लिए रिश्तेदारी में गए थे कि किट्टू का पूरा-पूरा ख्याल रखना। बाहर मत निकलने देना।... उसके लिए प्रतिदिन अरहर की गरम-गरम दाल जरूर पका दिया करना।

...मनू बिटिया की तो जैसे किट्टू में ही जान बसती है, सोनू की भी बड़ी लाड़ली है वो। और धर्मपत्नी निर्मल... उनकी तो पूछो ही मत। इतना लाड़-प्यार और दुलार तो कोई अपने सगे बच्चों से भी नहीं करता... सचमुच... वह जब कानपुर से लौटेगी तो किट्टू को न पाकर कितना परेशान हो जाएगी? सारे के सारे एक साथ मेरे ऊपर हावी हो जाएंगे। कहेंगे... ''कहीं से भी लाओ, हमारी किट्टू को लेकर आओ?''

बताओ मैं क्या करूँ? कहाँ से दूसरी किट्टू लेकर आऊँ? अरे ढूँढ ही तो रहा हूँ। पूरे सात घंटे हो गए, सुनसान काली रात में खाक छानते। मैंने कोई जानबूझकर तो निकाला नहीं। घर का मेन दरवाजा खुला पाकर कब बाहर निकल गयी? पता ही नहीं चला।

शाम छः बजे उसकी आदत के अनुसार खाना खिलाने के लिए जब किट्टू को पुकारा तो वह नहीं आयी। बारी-बारी से हर कमरे, हर दरवाजे के पीछे, बाक्स, बेड, सोफा आदि के नीचे देखा। किचेन, बाथरूम, बालकनी... सब जगह छान मारा, वह घर में नहीं मिली। तभी से उसे पूरे एरिया में ढूँढ रहा हूँ।... पता नहीं कहाँ छुपकर बैठ गयी है?

धीरे-धीरे मुझे खुद पर ही झुँझलाहट होने लगी...। मैंने ही तो उन्हें ले जाकर दिया था।... स्कूल से मध्यावकाश पर लंच के लिए जब मैं कॉलोनी में पहुँचा था... तभी मुझे वह नन्हा सा बिल्ली का बच्चा मिला था।... वह गोल मटोल नन्हा सा बच्चा मेरे स्कूटर के कवर के नीचे छुपने का प्रयास करता हुआ मुझे दिख गया था।... छुपने की कला से अनजान वह पूरी तरह आश्वस्त था कि उसे कोई देख नहीं रहा।... कवर के नीचे से चुपचाप टुकुर-टुकुर मुझे देख रहा था। जिसे मैंने बड़ी चालाकी से कुछ खिलाने का लालच देकर धीरे से पकड़ कर गोद में उठा लिया था।

कितना प्यारा सा था वो।... सुनहरा रंग, भूरी आँखें, लाल सुर्ख होंठ, पतली सी पूँछ, रेशम से चिकने बाल... कितना कोमल...। ...मेरे प्यार से सिर और पीठ पर हाथ फेरते ही वह दुबक कर मेरी गोद में सुरक्षित महसूस करते हुए मेरे हाथों को बड़े स्नेह से चाटने लगा था।

''मोनू... सोनू... इधर आओ... देखो मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ।'' कहता हुआ मैं सीढ़ियाँ चढ़ रहा था।... दोनों बच्चे आवाज सुन कर सीढ़ियों के पास आ गए थे। पास पहुँचते ही वह खुशी से उछल पड़े थे। ...बिल्ली का बच्चा... हाय! कितना प्यारा है।... ''पापा प्लीज मुझे दो ना'', ...''नहीं मुझे दो...'' कहते हुए बच्चे उसे लेने के लिए आतुर हो रहे थे।

तब तक किचेन से चिमटा हाथ में लिए श्रीमती जी भी आ गयीं। उन्होंने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया। उसे सहलाने लगीं।... उससे प्यार करते हुए कुर्सी पर बैठ गयीं। दोनों बच्चे उसे छू-छू कर प्रफुल्लित हो रहे थे।

किचेन से रोटी जलने की गंध आयी तो निर्मल बिल्ली के बच्चे को सौंप कर किचेन की तरफ भागी थी।... दोनों बच्चे उसे बारी-बारी से खिलाते रहे। टन-टन-टन-टन स्कूल की घंटी बज गयी। समय का पता ही नहीं चला। अभी लोग बिना खाए स्कूल के लिए भागे थे।

स्कूल की छुट्टी होने पर बच्चे और मैं बड़ी तेजी से घर पहुँचे।... घर में श्रीमती जी का लाड़-प्यार चल रहा था। उसे गोद में लिए दाल खिला रही थी।... बच्चे अपने-अपने बैग्स मेज के ऊपर पटक कर बिल्ली की ओर लपके।... ओफो! अरे इसे खाना तो खा लेने दो... मम्मी अब इसे मैं खिलाऊँगा, सोनू ने जिद की तो मम्मी ने उसे धीरे से पकड़ा दिया। मनू ने हाथ में दाल की कटोरी पकड़ ली। दोनों बच्चे उसे बड़े प्यार से दाल खिलाने लगे।

एक दो दिन में ही वह बिल्ली का बच्चा हमारे घर का सबसे खास सदस्य हो गया। सभी उसे प्यार से किट्टू कह कर पुकारने लगे। धीरे-धीरे वह इस नाम पर रिस्पान्स देने लगा। पुकारने पर दौड़ कर पास आ जाता। गोद में बैठ जाता। कभी-कभी अपनी खुशी का इजहार करने के लिए चढ़ कंधे पर जा बैठता।

निर्मल के बड़े भइया की बड़ी बेटी शालिनी हमारे यहाँ से ही अपनी पढ़ाई कर रही थी। वह हाईस्कूल की छात्रा थी। सभी लोग शालिनी को शीलू कह कर पुकारते थे। वह अक्सर सोफे पर बैठ कर पढ़ती थी। किट्टू उसकी गोद में बैठ कर घंटो सहपाठिनी बनी रहती। कभी-कभी सोफे के सहारे चढ़ कर कंधे पर जा बैठती और वहीं से शीलू की पढ़ाई पर पूरी-पूरी निगरानी रखती। अधिक देर हो जाती हो आराम फरमाने के लिए पुनः गोद में आ बैठती और बड़े प्यार से सो जाती।

किट्टू घर भर का खिलौना बन गयी थी। वह सभी के साथ खूब खेलती। मनू के साथ उसका छुपन-छुपाई का खेल तो बड़े ही कमाल का था। मनू कहती ''किट्टू चलो लुका-छिपी खेलें।'' वह दौड़ कर सोफे के नीचे, दरवाजों के पीछे, बेड या बॉक्स के नीचे कहीं जाकर दुबक जाती। मनू ढूँढना शुरू करती... ''अरे किट्टू कहाँ छुप गयी है भाई''... ''अरे ये तो मिल ही नहीं रही।'' ...किट्टू थोड़ी देर बाद निकल कर मनू के पैरों पे आकर धप्पा कर देती।... ''चलो फिर छुप जाओ।'' किट्टू फिर दौड़ कर कहीं जा छुपती। कुछ देर बाद धप्पा कहने फिर पास आ जाती।

किट्टू को गेंद खेलने में बड़ा मजा आता था। छोटे से प्लास्टिक के गेंद को पंजों से पकड़ कर इधर-उधर भागती। कभी एक पैर के सहारे गेंद उछालती, दौड़ कर पकड़ती... मुँह में दबाकर भागती... यानी कि जाने क्या-क्या करती।

कभी-कभी प्लास्टिक की डलिया से खूब खेलती। डलिया पर पंजा मार कर उछालती, तो वह गोल-गोल घूमने लगती। किट्टू बड़े गौर से उसके चारों ओर घूम-घूम कर उसे नाचते हुए देखती। उसे बड़ा मजा आता।

सचमुच किट्टू की हर आदत में गजब की दीवानगी थी, एक मोहक अदा थी कि लोग उसके खेल में ही मस्त रहते। जब कभी कोई मेहमान या बच्चों के यार दोस्त आ जाते तो वह भी किट्टू के साथ घंटो खेलते रहते।

किट्टू निर्मल के साथ ही सोती। बगल में चिकने चादर को मोड़ कर बिछा दिया जाता, उसमें ही वह सोती, चादर के कोने को पकड़ कर नन्हें बच्चों की तरह दूध पीती। कभी-कभी सीने से चिपक कर सो जाती।

धीरे-धीरे पूरी टीचर्स कॉलोनी में किट्टू की कलाबाजियों की चर्चा होने लगी। लोग उसके भी हाल-चाल पूछने लगे। हम लोगों का जीवों के प्रति नैसर्गिक प्यार-स्नेह देख कर लोग किट्टू को हमारा पारिवारिक सदस्य मानने लगे थे।

शाकाहारी होते हुए भी बिल्लियों की अण्डों के प्रति अधिक रुचि जान कर घर में अण्डे भी आने लगे।... कच्चे अण्डे भगौने में उबलने के लिए रख दिए जाते। किट्टू की तो जैसे ड्यूटी लग जाती। जब तक अण्डे उबलते, वह भगौने के आस-पास घूमती रहती।... वह उचक-उचक अण्डों को उबलता हुआ देखती रहती। बार-बार लालच में अपनी जीभ को ओंठों पर फिराती।... यानि की जब तक अण्डे उसे छील कर खिला नहीं दिए जाते उसे चैन नहीं मिलता। कितने चाव से वह अण्डे खाती जैसे उसे जन्नत में अमृत मिल गया हो।

ग्रीष्मावकाश पर हर वर्ष अपने गाँव माँ के पास जाना होता था। इस बार कैसे जाएँगे? किट्टू का क्या होगा? इसे किसके पास छोड़ेंगे? कोई भला क्यों रखेगा एक जानवर को? वह भी बिल्ली, न किसी काम की न काज की, दुश्मन अनाज की।

क्या किया जाए? क्या साथ में गाँव ले जाएँ? लेकिन गाँव तो 250 कि.मी. दूर है। वहाँ तक कैसे जाएगी? फिर ट्रेन का सफर। किसी टी.टी. ने देख लिया तो। सोच नहीं पा रहे थे कि क्या किया जाए?

बहुत विचार-विमर्श पर तय हुआ कि किसी ढक्कन वाली बाँस की डलिया में छुपाकर ले चलें। डलिया खरीद कर उसके अन्दर सबसे नीचे कागज बिछा कर ऊपर से मिट्टी की तह लगा दी गयी। जिससे किट्टू को किसी भी आवश्यक कार्य हेतु बाहर न निकलना पड़े कि लोग उसे देख लें और टी.टी. के सामने हंगामा न करने लगें।

खैर भगवान को याद करते-करते डलिया के अन्दर बैठी किट्टू की बिना टिकट यात्रा सम्पन्न हुयी। संभाल कर रखते-रखाते... बस की 30 कि.मी. की जर्नी भी तय हो गयी। फिर दो कि.मी. पैदल चल कर अपने गाँव के किनारे पहुँचे थे।

पंडों वाली बाँस की डलिया, हाथ में लेकर चलने के अंदाज से ही आभास हो रहा था कि इसके अन्दर कुछ है जरूर, लेकिन क्या? लोग-बाग ताँक-झाँक करने लगे। धीरे-धीरे गाँव के लोगों में कानाफूसी शुरू हो गयी... पता नहीं क्या छुपा रखा है?

घर पहुँचते ही डलिया का ढक्कन खुला और फुर्ती से किट्टू कूद कर बाहर आ गयी। ''अरे इसमें तो बिल्ली थी'' अरे देखो ता ये लोग शहर से क्या लाए हैं? बिल्ली! निर्मल ने हाँ कहते हुए सिर हिला दिया लेकिन बीच में मनू बोल पड़ी, ''जी नहीं, ये बिल्ली नहीं, किट्टू है किट्टू। आपको यह बिल्ली दिख रही है?'' बचपन का स्वभाव... लोग हँस पड़े थे।

गाँव में किट्टू की कुछ अधिक ही देख-रेख करनी पड़ी कि कहीं कोई कुत्ता न झपट ले। चारों तरफ खुला-खुला...। खैर किसी तरह

कुछ दिन काटे। किट्टू गाँव में एडजेस्ट नहीं कर पा रही थी। कहाँ शहर की चिकनी मक्खन जैसी फर्श, वह गेंद, वह डलिया, छुपन छुपाई के खेल और यहाँ ये गाँव रूखा-सूखा, खुरदरा सा, बिल्कुल धूल भरा... किट्टू का मन नहीं लग रहा था। यहाँ आकर तो जैसे वह सारे खेल ही भूल गयी। म्याऊँ... म्याऊँ करती रहती... जैसे कह रही हो, ''जल्दी अपने घर चलो, मुझे यहाँ नहीं रहना।''

वह गुम-सी रहने लगी। खाना-पीना भी कम कर दिया। सेहत गिरने लगी। अन्ततः हम लोगों को शीघ्र ही वापस लौटना पड़ा था।... लेकिन इस बार कोई चार दिन के लिए रिश्ते की एक शादी में बच्चे लोग बाहर गए हैं। किट्टू की सारी जिम्मेदारी मेरे कंधों पर थी। लेकिन... मैं उसे चार दिन भी सुरक्षित नहीं रख पाया। मैं कितना गैर जिम्मेदार हूँ...। मैं ढूँढता-ढूँढता थक गया.. वह नहीं मिली तो नहीं मिली। देर रात मैं घर वापस लौट आया।... बिना कुछ खाए-पिए ही लेट गया। किट्टू के सम्बन्ध में तरह-तरह की आशंकाओं में घिरा मैं कब सो गया? पता ही नहीं चला।

सुबह-सुबह किसी ने दरवाजा खटखटाया...। ...इतनी सुबह कौन हो सकता है? कहीं बच्चे तो नहीं लौट आए? मैं क्या जवाब दूंगा? सोचते हुए मैंने धीरे से दरवाजा खोला। सामने मेरे पड़ोसी मित्र किट्टू को गोद में लिए खड़े थे।

मैं खुशी से उछल पड़ा, ''अरे यह आपको कहाँ मिली? मैं तो रात भर जाने कहाँ-कहाँ ढूँढता रहा पूरा एरिया छान मारा मिली ही नहीं।'' ''आपको कहाँ मिल गयी?'' मैंने उसे अपनी गोद में ले लिया, उसे पाकर ऐसा लगा जैसे दुनिया की सारी खुशियाँ मुझे मिल गयीं। सिर पर हाथ फेरते ही वह मेरी गोदी में दुबक गयी।

आज उसके चेहरे से खुशी व शरारत नदारद थी। वह बड़ी सहमी-सी डरी-डरी मुँह छुपाए बैठी थी। वे बोले... ''तुम्हारी किट्टू हमारे कुत्ते के घर में छुपी बैठी थी। कुत्ता घर के अन्दर था। सुबह जब घर से बाहर निकला तो कुत्ते के घर से कुछ आहट सी महसूस हुयी। पास जाकर देखा तो... ये वहाँ छुपने का प्रयास करते हुए दुबक कर बैठी थी।... धीरे से पुचकार कर पकड़ा, तब पता चला कि अरे ये तो वर्मा सर की किट्टू है और इसे आपके पास ले आया।

''थैंक यू सर! बहुत-बहुत धन्यवाद। थैंक गॉड! सर कल शाम से ये गायब थी। मैंने जाने कहाँ-कहाँ नहीं खोजा कल रात बारह बजे तक मैं इसे सारे एरिया में ढूँढता रहा। मैं बहुत परेशान था कि मनू लोगों को क्या जवाब दूँगा? आपने मेरी सारी समस्या सुलझा दी।''

''नहीं सर! ये तो अपने घर जैसी बात है।''

उसी दिन शाम चार बजे तक बच्चे भी शादी से वापस लौट आए। आते ही सारे लोग किट्टू की सेवा में लग गए।... खो जाने की सारी व्यथा सुन कर निर्मल ने किट्टू को गले लगा लिया।...

''मेरी किट्टू को कुछ हो जाता तो मैं कैसे रहती?'' मेरी लापरवाही के कारण दो-चार नसीहतों के साथ बात आयी गयी हो गयी।

किट्टू उसी दिन से खाना कम खाने लगी थी। हम लोग कुछ समझ नहीं पा रहे थे। पहले की तरह ही उसे गर्मागर्म अरहर की दाल और घी लगी रोटी खिलाते। वह खाने का प्रयास तो करती, लेकिन एक-आध निवाला खा कर चल देती और वापस सोफे के नीचे जाकर बैठ जाती।... ऐसा महसूस होता जैसे उसे कोई तकलीफ है।

उसे अरहर की गरमागरम दाल कितनी पसन्द थी। प्रतिदिन उसे लिए अरहर की दाल जरूर बनानी पड़ती थी।... कितने चाव से वह पेट भर कर खा लेती थी। खाते समय अपनी मूँछों में जीभ फिराते हुए उन्हें चाटती वह कितनी अच्छी लगती थी। हम लोग उसे खाते हुए बड़े गौर से देखते मुग्ध हो जाते थे।... लेकिन अब तो यह पहले का दसवाँ हिस्सा भी नहीं खाती।

वेटरनरी डॉक्टर से सम्पर्क कर किट्टू को पशु चिकित्सालय ले गए। वहाँ उसकी जाँच की गयी, टेम्परेचर नापा गया। ''अरे इसे तो काफी तेज बुखार है'', डॉक्टर ने कहा।

''डॉक्टर साहब आप इसे कैसे भी जल्दी से ठीक कर दीजिए'' मिसेज के शब्दों में किट्टू के प्रति अपनत्व और स्नेह स्पष्ट झलक रहा था।

''आप चिन्ता न करें, मैं अपनी तरफ से पूरा प्रयास करूँगा। सिम्पली फीवर ही तो है एक दो दिन में ठीक हो जाएगा।''

उन्होंने पर्चा बनाया, बाजार से भी कुछ दवाएँ मँगवायी, इंजेक्शन लगा कर, सभी दवाओं का डोज समझाया तथा अन्य हिदायतों के साथ हमें विदा कर दिया।

लेकिन कई दिन गुजर गए। कोई फायदा नहीं हुआ। उसने खाना बिल्कुल ही छोड़ दिया। वह रात-दिन सोफे के नीचे लेटी रहती...। कई बार पुकारने पर पास तो आती लेकिन थोड़ी देर बाद फिर वहीं जाकर बैठ जाती।

मिसेज ने उसे गोद में उठा कर प्यार से शरीर में हाथ फेरा तो... ''अरे इसके पेट में ये गाँठ-सी कैसी है? हो सकता है इसी से बुखार रहता हो।''

दोपहर के समय किट्टू को पुनः पशु चिकित्सालय में ले गए। डॉक्टर ने देखा, चेकअप करके बोले, ''मैं दवा लिख रहा हूँ इसे खिलाइए। अगर कोई फोड़ा आदि भी बन रहा है तो वह बैठ जाएगा।'' इस छोटे से जीव के प्रति हम लोगों का ऐसा स्नेह देख कर डॉक्टर साहब का हम लोगों के प्रति बड़ा ही सहानुभूतिक बर्ताव हो गया था। वह बड़े ध्यान से किट्टू का इलाज कर रहे थे।

हम लोग किट्टू को घर ले आए। परामर्श के अनुसार दवाएं समय पर दी जाती रहीं, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। दूसरे दिन तक गाँठ और बढ़ जाने से उसका दर्द और बुखार बढ़ गया।... बुखार से तपता शरीर दर्द भरी उसकी कराह, हम लोग बेचैन थे कि अब क्या किया जाए?

दूसरे दिन तक गाँठ मुलायम सी हो गयी थी। उस स्थान पर टच करते ही किट्टू कराहती और धीरे से कहीं छुपकर जा लेटती।... हम लोग उसे पास बुलाते तो वह दूर भागती...।

किट्टू को लेकर पुनः डॉक्टर के पास पहुँचे। चेकिंग के बाद उन्होंने बताया, ''सर मुझे बड़ा अफसोस है, वह अब बचेगी मुश्किल।''

''क्यों डॉक्टर साहब।'' हम लोग अवाक रह गए।

डॉक्टर ने किट्टू का पेट हिलाकर दिखाया, ''देखिए इसका फोड़ा अन्दर ही फट चुका है और पस बनकर सारे शरीर में फैल चुका है।''

हम लोगों की आँखों में आँसू भर आए। ''डॉक्टर साहब कुछ भी कीजिए, हमारी किट्टू को किसी भी कीमत पर बचा लीजिए, प्लीज।'' मिसेज फफक कर रो पड़ी।

''मैं भी चाहता हूँ कि मैं इसे बचा लूँ, लेकिन क्या करूँ? समझ में नहीं आता।'' बिना आपरेशन किए इसे बचाया ही नहीं जा सकता। लेकिन आपरेशन बहुत ही रिस्की है।'' बहुत विचार विमर्श के बाद आपरेशन करना ही तय हुआ कि ''हो सकता है बच जाए।''

डॉक्टर ने ऊपर वाले का ध्यान कर बड़ी जिम्मेदारी से आपरेशन कर पेट का सारा पस बाहर निकाला। डेढ़ घंटे तक चले आपरेशन के बाद होश में लाने के लिए ड्रिप लगा दी गयी। लगभग एक घंटे बाद किट्टू को होश आया। हम लोग उसे घर ले आए।

पूरे पेट में पट्ट बाँधे किट्टू सोफे के नीचे लेटी रहती। खाना-पीना बिल्कुल छूट गया। अब वह किसी के पास नहीं आती थी। बुलाने पर वहीं से 'म्याऊँ' कह कर रिस्पांस दे देती थी। जब उसे ट्वायलेट महसूस होती तो नियत स्थान पर रखे तसले में बिछी मिट्टी के ऊपर ही जाकर करती और धीरे से पुनः सोफे के नीचे जाकर लेट जाती।

उसकी तकलीफ हम लोगों से देखी नहीं जाती थी, वह बहुत कमजोर हो गयी थी। चलने पर उसके पैर लड़खड़ाते, हिलती-डुलती फिर भी आवश्यकता पड़ने पर वह उसी तसले में जाकर आवश्यक कार्य करती। चलते-चलते कई बार उसके चारों पैर बाहर को फैल जाते जिससे वह गिरकर पेट के बल फर्श से चिपक जाती। उसकी दशा देखकर मेरा दिल फूट-फूट कर रोता। मेरे अन्दर से आवाज आती, ''यह सब तुम्हारी लापरवाही से हुआ है। तुमने उसका ठीक से ख्याल नहीं रखा।'' जिस रात वह बाहर रही, तभी से वह बीमार पड़ गयी।

लेकिन ऐसा क्या हुआ? समझ में नहीं आया। मुझे लगता है, कालोनियों की सुरक्षा में लगा कंटीला तार ही कहीं उसके पेट में चुभ गया जिसने अन्दर ही अन्दर टिटनेस का रूप ले लिया।

दो दिन से सारे लोग बहुत उदास थे। लगता था किट्टू का साथ अब छूट जाएगा। हम लोग अपनी जान से भी ज्यादा प्यारी किट्टू को नहीं बचा पा रहे थे। उस समय हम लोग अपने को कितना लाचार महसूस कर रहे थे।

हम लोग रात-दिन दुआएँ माँगते, ''हे ईश्वर इसे बचा लो, बदले में हमें कोई भी कष्ट दे दो हमें मंजूर है। लेकिन इस मासूम को ठीक कर दो। ये बेचारी बेजुबान है, हम लोगों के सहारे है।'' लेकिन हाय री किस्मत! हम कुछ भी नहीं कर पा रहे थे।

अगले दिन सुबह-सुबह किट्टू की स्थिति बहुत बिगड़ गयी। कोई भी स्कूल नहीं गया। सभी लोग उसके चारों ओर बैठे उसके स्वस्थ होने की दुआएँ करते, आँसू बहाते रहे। किट्टू की हालत बिगड़ती ही गयी।

उसके सिर पर हाथ फेरते तो वह अपना हाथ बड़ी मुश्किल से उठा कर हमारे हाथ के ऊपर रख देती। इशारे से धीरे-धीरे हाथ हिलाती। जैसे कह रही हो, ''मुझे बचा लो, मैं अभी मरना नहीं चाहती। आप लोगों के साथ मुझे अच्छा लगता है। मुझे मनू दीदी के साथ खेलना है, सोनू भैया की पीठ में बैठना है, शीलू दीदी के कंधे पर चढ़ना है। मुझे बचा लो। मम्मी जी, क्या आप सब लोग मेरे लिए इतना नहीं करोगे?''

धीरे-धीरे किट्टू की साँसे शिथिल पड़ती गयीं। उसने एक दो बार लम्बी साँस ली... गले से खर्र-खर्र की आवाज आ रही थी। उसे साँस लेने में बहुत ताकत लगानी पड़ रही थी।... बड़ी मुश्किल से उसने एक-दो बार गहरी साँस ली... और...।

हम सारे लोग रोने लगे। मनू की मम्मी तो उसे गोद में उठा कर फफक-फफक कर रो पड़ी। ''मेरी किट्टू, तू हमें छोड़ कर क्यों चली गयी? हमसे क्या गलती हो गयी?''

मैं अपराधबोध से सिसकता हुआ दूसरे कमरे में चला गया। मुझे लग रहा था, मैं हत्यारा हूँ, मैंने ही नन्हीं सी बच्ची की जान ली है।

घंटों तक सभी लोग मिट्टी को लिए सिसकते रहे। किट्टू के मोहपाश में बँधा पूरा परिवार दुःख के भँवर में फँसा रहा।... दोपहर से शाम होने को आयी। आखिर दिलों में पत्थर रख हम लोग किट्टू के अंतिम संस्कार के बारे में सोचने लगे।

किट्टू को दफनाने के लिए विधिवत गड्ढा खोदा गया। उसके मन पसन्द चिकने चादर में लपेट कर छोटे बच्चों की तरह दफना दिया गया।... कई दिन तक घर में खाना नहीं बना। बच्चे प्रतिदिन उसकी कब्र पर जा कर फूल चढ़ाते और शाम को देशी घी का दिया जलाते। यह सिलसिला महीनों चलता रहा।

इस हादसे से नॉर्मल स्थिति में आने में काफी समय लग गया। काफी दिनों बाद हम लोग सामान्य हो पाए थे।

आज भी जब किट्टू की याद आती है तो उसके स्नेह की सारी बातें मीठा-मीठा दर्द दे जाती हैं।

एलबम में बच्चों के साथ खेलती हुयी, गोद में बैठी हुयी किट्टू अब भी हम लोगों के आसपास कहीं न कहीं मौजूद रहती है।

जी-9, सूर्यपुरम्, नन्दनपुरा, झाँसी-284003 (उ.प्र.)

व्यंग्य-कथा

शरीफ आदमी

जसविंदर शर्मा

आठ पुस्तकों का प्रकाशन, हरियाणा राज्य साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित, सहारा कथा पुरस्कार प्राप्त। वर्षों से लेखन में सक्रिय।

अगर इस जन्म में किसी ने नरक देखना हो तो शरीफ आदमी के घर जाकर देखना चाहिए क्योंकि आजकल शरीफ आदमी की जिन्दगी किसी नरक से कम नहीं है। विनोदी लाल इतना शरीफ साबित हुआ कि बड़े-बड़े बदमाशों को उसका किस्सा सुन कर शर्म आ जाए। विनोदी लाल जैसे सीधे आदमी के साथ किसी ने इतनी बड़ी बदमाशी की, बदमाश आदमी को लगेगा कि लानत है उसकी बदमाशी पर। उस बदमाश आदमी को क्या खाक मजा आया होगा एक मरे हुए आदमी को फिर से मारने में।

इस दुनिया में सदा से ऐसा ही होता आया है। हर तरफ शरीफ आदमी ही बार-बार दबाया-कुचला जा रहा है। उसे गन्ने की तरह इकहरा, दोहरा व तिहरा करके रस निकालने वाली मशीन में डाला जाता है और उसकी खून की आखिरी बूँद तक सिस्टम उसे निचोड़ लेता है। हैरानी की बात तो यह है कि शरीफ आदमी अपने इस शोषण के खिलाफ कुछ भी नहीं बोलता, जरा भी हाय-तौबा नहीं करता। इसे अपनी नियति समझ कर चुपचाप सहता हुआ बदहाली और गुमनामी के अँधेरों में खो जाता है।

विनोदी लाल जब इस दफ्तर में आया था तो थोड़ा-बहुत चंट-चालाक था। लगता था कि शहर के तौर-तरीके सीख जाएगा। जालंधर के पास के गाँव का था। चण्डीगढ़ तब नया-नया आबाद हो रहा था। विनोदी लाल तीन भाई थे। पिता खेती करते थे, बिल्कुल अनपढ़। ये तीनों बच्चे पढ़-लिख गए। दसवीं के बाद उन्हें चण्डीगढ़ में ही नौकरी मिल गई। विनोदी लाल तो आगे न पढ़ पाया मगर उसके दोनों भाई यहाँ आकर डिग्री करके अच्छे ओहदों पर पहुँच गए।

विनोदी लाल का दफ्तर अंग्रेजों के जमाने का था। उन दिनों इस विभाग में आसामियाँ काम करवाने के एवज में पैसे तो न देती मगर बाबू लोग उनके जरिए अपने कई काम करवा लेते थे। विनोदी लाल दफ्तर के सिस्टम से शुरू से ही मिसफिट रहा। उससे अपनी सीट का काम ही न सँभलता, आसपास के मामलों में क्या खाक चंटी दिखाता।

विनोदी लाल ने घरवालों ने उसे ऐसी बीवी ढूँढ कर दी जो विनोदी लाल से तो इक्कीस तो थी मगर थी अनपढ़-गँवार। वह भी शराफत से उसकी कुछआ गति से इस आधुनिक शहर में चुपचाप जीने लगी। शुरू के कुछ दिनों तक उसने विनोदी लाल की बातें मानी मगर धीरे-धीर आसपास के माहौल के प्रति वह थोड़ा सजग होती गई। समाज में जिन्दा रहने के लिए दोनों में से एक ने तो नेतृत्व करना ही था। दोनों ही शरीफ थे और यह बात दोनों के ही खिलाफ जाती थी।

विनोदी लाल हर मामले में ढीलू लाल था। न ढंग के कपड़े, न सभ्य बातचीत और न ही अच्छे व तेज लोगों का साथ। चुस्त लोग उसे पास खड़ा न होने देते और अब यह आलम था कि उसने हर समझदार आदमी से दूरी बना ली थी।

दफ्तर में तो वह बिल्कुल बाहर का आदमी ही समझा जाता और जहाँ वह रहता था वहाँ के लोग तो उसे बिल्कुल ही घास न डालते। वह साथ रहता भी तो अपने से भी गए-गुजरे और भौंदू लोगों की संगत में जो उसको उल्लू बना कर मजे लेते। विनोदी लाल की सारी कमजोरियाँ, मजबूरियाँ और मान्यताएँ उसकी शराफत का अटूट हिस्सा बन गई। उसकी यह बेमतलब की कायराना शराफत सारी हदें पार कर गई तो हर कोई उसे उल्लू, भोंदू और भोला जैसे नामों से बुलाने लगा।

सारा जमाना उसे चुगद समझता ही था मगर विनोदील लाल की बीवी ने इधर एक नया गुल खिलाना शुरू किया। विनोदी लाल से उसे शारीरिक सुख क्या मिलना था, कोई औलाद भी नसीब न हुई। विनोदी लाल किराए के घर में रहता था। उसका मकान मालिक मनोहर सिंह छँटा हुआ कमीना और रसिक आदमी था। विनोदी लाल और उसकी बीवी शरीफ थे और इसी बात का फायदा मनोहर सिंह ने भरपूर उठाया।

मकान मालिक मनोहर सिंह को इन दोनों की शराफत पर तरस आ गया। जहाँ आसपास के मकान मालिक अपने किराएदारों की नाक में हरदम दम करके रखते, उन्हें साल भर से अधिक रहने न देते, वहाँ विनोदी लाल के मकान मालिक के मन में इन दोनों शरीफ

लोगों के लिए तरस था, रहम था और कुछ अलग ही सोच थी। मनोहर सिंह अपने बाकी किराएदारों से सीधे मुँह बात न करता और उन्हें लानत-मलानत करने का कोई मौका चूकता नहीं था मगर विनोदी लाल और उसकी बीवी सीमा से उसे विशेष लगाव था।

मनोहर सिंह पुलिस विभाग से रिटायर हुआ था। उसने अच्छे वक्तों में चण्डीगढ़ में पाँच मरले का तीन मंजिला घर बना लिया था। दोनों मंजिलें किराए पर उठा रखी थी और नीचे की मंजिल पर खुद रहता था। पहले-पहल विनोदी लाल को उसने बरसाती का कमरा किचन किराए पर दे रखा था मगर जैसे जैसे विनोदी लाल की बीवी सीमा से मनोहर सिंह के ताल्लुकात घनिष्ठ हुए, उसने विनोदी लाल और उसकी बीवी को नीचे के तल पर अपने पास ही रहने के लिए कमरा-किचन दे दिया।

मनोहर सिंह बच्चों वाला था। बीवी तो कब की गुजर गई थी, दो लड़कियाँ थीं। दोनों शादी-शुदा और विदेश में थी। पहले तो दो-तीन साल में आती थीं मगर अब तो पाँच साल हो गए थे। मनोहर सिंह 65 के आसपास था। खुराक अच्छी थी और शरीर की डेंटिंग-पेंटिंग और रख-रखाव अच्छा था, अभी भी आकर्षक व्यक्तित्व का स्वामी था।

सीमा अभी तीस की थी और मनोहर सिंह उससे दुगुनी उम्र का था। इस उम्र में इश्क में अजीब-सी लगावट होती है। बुढ़ापे का प्रेम आदमी से क्या कुछ नहीं करवाता। मनोहर सिंह ने सीमा को पाने के लिए अपनी इज्जत और दौलत ताक पर रख दी।

विनोदी लाल अपने दाम्पत्य जीवन में असफल साबित होने लगा था। वह ऑफिस में होता तो पीछे सीमा मनोहर सिंह के साथ लंच करती। धीरे-धीरे मनोहर सिंह की बातों में उसे रस आने लगा। वह उसके हँसमुख व्यवहार और चंटी से प्रभावित होने लगी।

ऐसा नहीं था कि विनोदी लाल बिल्कुल गधा था। उसने उन दोनों के इस लगाव को महसूस किया और उसने प्रतिरोध किया मगर वह विरोध बेहद मृदुल, कायराना और शराफत भरा था। कई रातों तक वह परेशानी में रहा। सीमा से लड़ा-झगड़ा भी। सीमा उसकी कोमल नस पर प्रहार करके सच्ची हो जाती। हर बार यही कहती, ''वह तो मेरे पिता की उम्र के हैं।''

विनोदी लाल ने किराए के घर को बदलने की सोची मगर शरीफ और भोंदू होने के कारण वह चुप रहा। मनोहर सिंह और अपनी बीवी की इस अंतरंगता को लेकर अन्दर ही अन्दर कुढ़ने लगा। अब तो उसकी कमजोर शराफत बेचारगी के स्तर तक आ गई।

दो बदन प्यार की आग में बुरी तरह जले और आँच विनोदी लाल तक पहुँची और उसका दिमागी संतुलन बिगड़ गया। सीमा खुलेआम मनोहर सिंह के साथ बाजार जाती, सिनेमा देखती और पार्क में सैर को जाती। विनोदी लाल दीवारों से बातें करता रहता। ऑफिस वाले तो उसे पहले ही अहमक और सिरफिरा समझते थे। उसे अच्छी जगह से दिमागी ईलाज करवाने की सलाह देते। सरकारी ऑफिस था सो ऐसे नकारा और दीवाने लोग खप जाते थे।

एक दिन आया कि मनोहर सिंह ने शराफत का कत्ल करने की सारी हदें पार कर दी। शरीफ आदमी का घर किसी नरक से कम नहीं होता क्योंकि वह किसी गलत बात का विरोध करने में शर्म महसूस करता है। विनोदी लाल अब कमरे में अकेला ही पड़ा रहता। दीवारों से मिल कर रोता और पता नहीं अपने-आप से क्या-क्या बातें करता रहता। इन्हीं हरकतों से तंग आकर उसकी बीवी ने मनोहर सिंह के बेड-रूम में ही सोना शुरू कर दिया था।

शरीफ आदमी हमेशा से ही अकेला रहा है। कौन था जो विनोदी लाल के पक्ष में खड़ा होता। इतना अहमक कोई नहीं है इस युग में। उसके भाई व रिश्तेदार पहले से ही उससे किनारा कर चुके थे।

और इस तरह एक शरीफ आदमी ने अपनी शराफत में अपने घर को नरक बना डाला था।

5/2-डी, रेल विहार, मंसा देवी कॉम्पलेक्स,
पंचकूला-134109 (हरियाणा)

लघु कथाएँ

सुनील गज्जाणी

जाने-माने लेखक, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। बुनियाद साहित्य एवं कला संस्थान (राजस्थान) के अध्यक्ष के रूप में भागीदारी।

दवा

जैसे-जैसे रात गहराती उस बुड्ढे मरीज के खर्राटे मानो परवान पर होते। सर्द रातों में वे खर्राटे सन्नाटों को बींध रहे होते थे। वार्ड के अन्य मरीज रात को शुरू में तो सिर्फ बड़बड़ाते थे जब वो बुड्ढा वार्ड में भर्ती हुआ था, मगर जैसे-जैसे कुछ दिन बीते तो उसे कोसने लगे, उसके परिजनों से लड़ने पर उतारू हो जाते कि बुड्ढे के कारण हमारी नींद में खलल पैदा होती है। मगर परिजन बेबस थे, खर्राटे लेने से कौन किसे रोक सकता है। जबकि वो बुड्ढा कितने दिन का मेहमान है, पता नहीं। कभी उसकी तबीयत सही होती तो कभी बिगड़ जाती।

बुड्ढे के सबसे पास का मरीज एक लड़की थी, जो कभी कुछ नहीं बोलती थी उसके खर्राटों के बारे में। वो केवल खर्राटे सुन अपनी आँखें बंद किए बुदबुदाती रहती और बुदबुदाती-बुदबुदाती जाने कब सो जाती पता नहीं।

कुछ दिन बाद वो बुड्ढा चल बसा। उस रात वार्ड के मरीजों ने चैन की नींद ली, मगर वो लड़की उदास थी। उस रात देर तक जागी रही, परिजन भी ''बेटी सो जाओ, बहुत रात हो चुकी है अब, सो जाओ ना'' कह-कहक कर थक गए थे। मगर लड़की टकटकी लगाए बुड्ढे वाले पलंग को देखती हुई बोली, ''माँ! मेरे लिए वो खर्राटे किसी लोरी से कम नहीं थे, मैं उन खर्राटों को गिनते-गिनते कब नींद की आगोश में चली जाती, पता ही नहीं लगता था। माँ! अब फिर से नींद की वो दवाई दो ना जो बुड्ढे बाबा के आने से पहले डॉक्टर मुझे दिया करते थे, वरना इस ऑपरेशन के दर्द से आज नींद नहीं आएगी।'' माँ विस्मित हो निरुत्तर थी।

सौदा

''साहब! मैंने ऐसा क्या कर दिया जो मुझे बर्खास्त कर दिया'' वृद्ध चपड़ासी बोला।

''तुमने तो सिर्फ अपना कर्तव्य निभाया था, जिससे मुझे आघात पहुँचा'' अधिकारी बोला।

''साहब! मैं समझा नहीं?''

''ना तुम बारिश में कई दिनों से भीग कर खराब हो रहे फर्नीचर को महफूज जगह रखते और ना ही नया फर्नीचर खरीद की जो स्वीकृति मिली थी, वो निरस्त होती।'' अधिकारी ने लाल आँखें लिए प्रत्युत्तर दिया।

प्रार्थना

भारत और श्रीलंका के बीच दांबुला में चल रहा ट्वन्टी-ट्वन्टी क्रिकेट मैच रोमांचक स्थिति में था। 12 साल की गुड़िया मेरे साथ बैठी मैच देख रही थी हालांकि क्रिकेट का उसे इतना ज्ञान नहीं था। मैं टीवी स्क्रीन पर आँखें गड़ाए उत्सुकता में था।

''पापा... क्या इंडिया जीतेगा?''

''बेटा! पता नहीं। मगर मैच जबरदस्त रोमांचक हो रहा है। भारत के दो विकेट बाकी है और अब अन्तिम चार गेंदों पर दो रन बनाने हैं।''

मलिंगा ने गेंद फेंकी जहीर खान से स्ट्रोक खेला मगर दुर्भाग्य जयसूर्या ने चार कदम तेजी से आगे बढ़कर शानदार कैच ले लिया; खचाखच भरे स्टेडियम में खामोश बैठे दर्शकों में इस कैच आउट ने जबरदस्त जोश भर दिया।

''पापा अब क्या इंडिया जीतेगा?''

''हो सकता है।''

मलिंगा ने तीसरी गेंद फेंकी नए बल्लेबाज ईशान्त शर्मा ने हुक किया मगर रन नहीं बन पाया।

अब दो गेंद पर दो रन... मेरी धड़कनें तेज हो रही थीं।

''पापा सीरियस क्यूँ हो गए... चाय ठण्डी हो रही है ना?''

''बेटा हमें जीतने के लिए दो गेंदों पर दो रन चाहिए मैच का रिजल्ट कुछ भी हो सकता है।''

''पा अगर मैं प्रे करूँ तो इंडिया जीत जाएगा?''

''मन से की गई प्रार्थना का असर तो होता ही है।''

मेरे जवाब से पहले ही वो प्रार्थना भाव में बैठ गई तभी स्क्रीन पर पवेलियन का एक दृश्य दिखाया गया जिसमें एक लड़की भी प्रार्थना भाव में बैठी थी।

मलिंगा ने सैकिण्ड लास्ट गेंद फेंकी। ईशान्त शर्मा ने हल्का सा पुश किया और तेजी से दौड़ कर एक रन बना लिया। मैच बराबरी पर आ गया।

दर्शकों का जोश परवान पर था। अब एक गेंद और एक रन। बस जीत... मलिंगा ने अन्तिम गेंद फेंकी, भज्जी ने बल्ला चलाया मगर गेंद बल्ले को छू नहीं पायी। मैच टाई हो गया... मुझे लगा शायद दो प्रार्थनाएँ आपस में टकरा गयी।

भूख

मंगला भिखारी दर्द से कराह रहे कालू कुत्ते के पाँव को सहलाता बोला, ''बेचारे भूखे को रोटी के बजाए लड्डू खिला दिया, जानवरों की तो कोई कद्र ही नहीं करता।''

''जब से आटे के भाव बढ़े हैं, लोगों ने रोटियाँ देनी कम कर दी हैं। कहते हैं कि अब रोटियाँ गिन कर बनाते हैं, थोड़ी हमारी भी दो-चार रोटियाँ गिन लें तो पहाड़ थोड़े ही टूट पड़ेगा उन पर, बेचारे को जोर से भूख लगी है''। उसकी पत्नी रुकमा बोली।

''भूख में भूल गया था कि ये उस सेठ के बंगले के सामने, खड़ा हो कूकने लगा जहाँ चौकीदार लड्डू लिए खड़ा रहता है।''

''इसमें सेठ का क्या दोष। सेठ के नौकर जब उस पालतू कुत्ते को बिस्किट खिला रहा था तो मुँह में पानी आ गया होगा, सोचा होगा कि जब उसे बिस्किट खिला रहे हैं तो मुझे भी खिलाएँगे, मैं भी तो कुत्ता हूँ।''

''दोनों कुत्तों की किस्मत का फर्क है कि गर्मा-गर्म बन रही घरों में रोटियों की खुशबू से मेरी भूख भड़क रही है।''

''मेरे कटोरे में तो सूखी रोटी है।''

''पगली, मुँह में दाँत होते ये भी खा लेता।''

''मैं कहीं से माँग कर लाती हूँ।''

रुकमा चल देती है। मंगला दर्द से कराह रहे कालू कुत्ते को पुचकारने लगता है।''

रोटियों की खुशबू मंगला के मुँह में पानी भर रही थी। कुछ समय बाद रुकमा लँगड़ाती हुई आई।

''क्या हुआ'' चौंकता हुआ मंगला बोला।

''थोड़ी दूरी पर एक नया घर बना है। उस उपलक्ष्य में वहाँ खाने का कार्यक्रम था। मैं दरवाजे के पास जाकर खड़ी हो गई। तभी उस घर की कोई महिला सदस्य आयी। उसे देख मैं बोली—''माई कुछ खाने को दो ना। मेरे पति भूखे हैं।''

''ब्राह्मण भोजन से पहले किसी को कुछ नहीं मिलेगा और भिखारियों को तो पूरा खाने का कार्यक्रम सलटने के बाद।'' वो झिड़कती-सी बोली।

मैं बोली, ''आप लोग ही तो कहते हैं कि मेहमान भगवान का रूप होता है, थोड़ा खाना दे दो ना।''

''ठहर तुझे अभी वहाँ आकर बताती हूँ।'' फिर उसने मुझे धक्का दे दिया। बोली, ''भिखारी हो के जुबान लड़ाती है।'' गिरने से थोड़े घुटने छिल गए। दर्द हो रहा है।''

''वाह रे! सभ्य समाज में खाने में धक्का। खैर, ये तो हमारे जीवन का एक हिस्सा-सा बन गया है फिर हम लोगों की और कालू की किस्मत में कितना अन्तर है।''

मंगला बोला, ''सिर्फ इतना ही कि हम इन्सान के रूप में हैं और ये जानवर के।''

''खुशबू से लगता है कि पराठे भी बन रहे हैं, है ना।''

''चलो, हम उस कचरे की ढेरी के पास चल कर बैठें तो तुम्हारे लिए ठीक रहेगा।''

रुकमा सूखी रोटी को देखती बोली।

छह रुपए

''महीने का हिसाब-किताब बिगड़ गया है। चीनी लेने गई थी। दुकानदार बोला पैंतीस रुपए किलो हो गई है, छह रुपए और दो। वापिस आ गई। पैसे और नहीं ले गयी थी मैं। होते भी कहाँ से, सब्जी वाले का, आटे का, दूध वाले का, गुड्डू की फीस सभी को जोड़ कर देख लिया। किसी में से छह रुपया नहीं बचता है। हाँ, वे सभी बोल रहे थे कि हम भी पैसे बढ़ाएंगे। हम लाएंगे कहाँ से? आपके सेठ के पास गई थी छह रुपया लेने तो बोला रुपया छः लो या सौ ब्याज बराबर लगेगा और बोला कि तुम्हारे पति की बीमारी के इलाज वास्ते वैसे भी उधार बहुत दे दिया, अगर वो थोड़े-थोड़े भी ठीक हो गए हों तो काम पे भेजो ताकि कर्जा उतरने लगे।

मैं अपना-सा मुँह लिए चली आई। ''सुनो, तुम्हारी नौकरी छठे वेतन में नहीं आती क्या? जहाँ भी देखो इसी की चर्चा सुनने को मिलती है। वैसे ये है क्या? खैर, अभी मतलब की बात करूँ कि मैं ये छह रुपए किस खर्चे में से निकालूँ बताओ ना...?

द्वारा श्री मोतीलाल गज्जाणी, सथारों की बड़ी गवाड़, बीकानेर-334005 (राजस्थान)

लघु-कथा

चलो अच्छा हुआ

डॉ. शोभा अग्रवाल 'चिलबिल'

लेखिका केन्द्रीय विद्यालय से स्वैच्छिक सेवानिवृत्त अध्यापिका हैं। प्राथमिक शिक्षा एवं स्त्री-सम्बन्धी मुद्दों पर लेखन व पुरस्कार प्राप्ति।

''चलो अच्छा हुआ, सुनीता चली गयी।'' विद्रूप सी हँसी के साथ प्रभात बोला।

''कैसे भाई हो तुम?'' उसकी पत्नी रंजीता ने कहा।

''कैसा भाई होना चाहिए? अपनी जमीन-जायदाद सब लुटा दूँ क्या?'' कुछ आक्रोशित होते हुए प्रभात ने कहा।

''मैं जमीन-जायदाद लुटाने के लिए नहीं कह रही हूँ। सिर्फ इतना कहना चाहती हूँ कि पापा की जायदाद में सुनीता का भी तो कुछ हक है। मम्मी-पापा एक्सीडेंट में चले गए तो क्या हमें सुनीता की शादी नहीं करनी चाहिए थी?'' रंजीता कुछ उत्तेजित होते हुए बोली।

''बड़ी आदर्शवादी बनती हो, पहले तो रंजीता की शादी के लिए मेरा दिमाग खाती रहीं। अब जब वह मुँह काला करके भाग गई, तब भी मेरे ऊपर ही दोषारोपण कर रही हो।''

''हैरत है मुझे! मैंने ऐसा भाई नहीं देखा। मैं तो फिर भी उसकी भाभी हूँ। जब उसकी शादी हम लोग नहीं कर रहे थे, तब उसने मजबूर होकर यह कदम उठाया।'' रंजीता बोली।

''ज्यादा उपदेश मत दो, अब तो जो होना था, हो गया। अब क्या किया जा सकता है?'' प्रभात ने कहा।

''तुम्हारे संज्ञान के लिए बता दूँ कि सुनीता बहुत अच्छी लड़की है। उसने कोई गलत कदम नहीं उठाया है।''

बात काटते हुए, ''क्या बक रही हो?''

''मेरी पूरी बात तो सुनो। वह भागी नहीं है, मुझे बता कर गयी है...''

''बात तो वही हुई न।''

''बात तो पूरी होने दो। सुनीता संकल्प के साथ भाग कर नहीं गयी है। मैंने ही उसे अपनी एक सहेली के घर भेज दिया है। मैं तो केवल यह देख रही थी कि यदि सुनीता भाग जाती, तब तुम्हारे ऊपर क्या असर पड़ता।'' रंजीता एक साँस में बोल गयी।

''आखिर तुम चाहती क्या हो?'' प्रभात झुँझलाते हुए बोला।

''मैं सिर्फ इतना चाहती हूँ कि हम लोग सुनीता का विवाह कर दें। लड़के वाले कोई दान-दहेज तो माँग नही रहे हैं। साधारण रूप से दोनों तरफ के लोगों का खाना-पीना करना है। एक कपड़े का बक्सा सुनीता को देना है। हम इतना तो कर ही सकते हैं।

आखिर कल हमारी बेटी चुनमुन बड़ी होगी, तब क्या हम उकसे लिए कुछ नहीं करेंगे। सोचो प्रभात! सोचो!''

''ठीक कहती हो! चलो अच्छा हुआ कि सुनीता भागी नहीं, उसे बुला लो। मैं आज लड़के वालों से बात करके महीने भर के अन्दर शादी करता हूँ।''

रंजीता हँसते हुए बोली, ''चलो अच्छा हुआ।''

आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, दुर्गा कॉलोनी, नई दिल्ली-110060

गीत

डॉ. कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'

डॉ. कृपाशंकर शर्मा 'अचूक' कवि, गीतकार, पत्रकार एवं समीक्षक हैं। कई वर्षों से लेखन में सक्रिय।

(1)

शब्दों के संग खेले खाएं, सुखद सुमीत बनें
साँसें सब सरगम हो जायें, सुर संगीत बनें।
झुरमुट आकाशी गंगाएँ
अति आमोद करें
तारों की अगणित लड़ियों से
सबकी गोद भरें
आगत विगत मोह जब छूटे, परहित नीत बनें
शब्दों के संग खेलें खाएं, सुखद सुमीत बनें
श्लेष अलंकारों के आगे
नाद विहंगम हो
धरा धाम का रज कण बोले
कोई ना कम हो
सागर की मदमस्त तरेंगें, जन-जन जीत बनें
शब्दों के संग खेलें खाएं, सुखद सुमीत बनें
शब्द-शब्द में निज उजियारा
साधक समता में
वाणी सत्य शिवम् को जोड़े
खेद विषमता में
भेदान्तर 'अचूक' दूर तो, नित नवगीत बनें
शब्दों के संग खेलें खाएं, सुखद सुमीत बनें।

(2)

मेरे कब तक साथ चलोगे,
मुझको चलना अन्त अकेला
जाते-जाते इतना जानो,
जीवन चलता फिरता मेला।
हाथों की रेखाएँ अब तो
अर्थहीन सारी की सारी
सपनों में नित मोती मिलते
आँख खुले रोती बेचारी
तारकोल सी दिखे अवस्था
सदियों से ही इसको झेला
मेरे कब तक साथ चलोगे,
मुझको चलना अन्त अकेला
भूल गए अतीत भी सारा
वर्तमान की बात कहें क्यों
आगत पाती बाँचे कोरी
किस किस का आघात सहें क्यों
छेनी से संपर्क जब मिला
बदल गया प्रस्तर का डेला
मेरे कब तक साथ चलोगे
मुझको चलना अन्त अकेला
बुझे दिए कह रहे सभी से
मावस के घर जोति लुटाई
जंग लगी भी कहती छेनी
मन्दिर प्रतिमा काम न आई
कैसी चाल 'अचूक' चलाई
खेल आज यह कैसा खेला
जाते-जाते इतना जानो,
जीवन चलता फिरता मेला।

(3)

श्रम का अग्रदूत जग कहता,
धरती सुत कहलाते
परिभाषा श्रम की समझने,
हम धरती पर आते
नई समय की बहती धारा
दशा दिशा अनुशासित
हर पल साधक करे साधना
क्षण प्रतिक्षण परिभाषित
निश दिन होती रहे प्रतीक्षा,
समरसता बरसाते
परिभाषा श्रम की समझाने,
हम धरती पर आते
भूगोलों की रचना रचते
भाषा का हो परिचय
भाव सुभाव बदलता रहता
विचरण करते निर्भय
हवा साथ खुशबू के झोंके,
मन ही मन मुस्काते
परिभाषा श्रम की समझाने,
हम धरती पर आते
प्रेम एकता भाईचारा
सीखा सबने अब तक
भेदभाव को छोड़ छाड़के
पाया है अपना हक
थकना कभी नहीं मन भाता,
यह संदेश सुनाते
परिभाषा श्रम की समझाने,
हम धरती पर आते
खेत और खलिहान झूमते
श्रम की बूँदें पाकर
फसलें करतीं नाच अनूठा
घूम-घूम कर शरमा कर
वेद ऋचाएँ मंत्र मुग्ध हो,
स-स्वर पाठ सुनाते
परिभाषा श्रम की समझाने,
हम धरती पर आते
समय 'अचूक' सीखता चलना
यह बातें जग जाहिर
आसमान नतमस्तक होता
चलता है निज पथ पर
दिनकर के आने पर सारे,
अंधकार भग जाते
परिभाषा श्रम की समझाने,
हम धरती पर आते।

38-ए, विजय नगर, करतारपुरा, जयपुर-302006

मन पर दोहे

योगेश्वर नारायण शर्मा

लेखक का एक उपन्यास, एक नाटक, दौ सौ आर्टिकल, आधा दर्जन कहानियाँ, अनेक कविताएँ, रेडियो रूपक आदि प्रकाशित-प्रसारित हो चुके हैं। वर्षों से लेखन में सक्रिय।

चंचल मन खुद से कहे, ठहरूँ मैं किस ठौर।
मेरे मन कुछ और है, सबके मन कुछ और।।

मन मलंग मन शाह भी, मन ही रहत फकीर।
मन तुलसी रहिमन मना, मन ही बनत कबीर।।

मन नैया पतवार मन, मन ही नदिया धार।
मन ही यात्री नाव का, मन ही उतारे पार।।

मन फूलों की गन्ध है, मन पराग मकरन्द।
जहाँ पे भी दो मन मिलें, वहीं पे परमानन्द।।

नन्हा सा मन तन बड़ा, बिन मन तन गुणहीन।
पल-पल ढलता तन मगर, मन है सदा नवीन।।

मन ग्रन्थों में वेद है, ऋतुओं में ऋतुराज।
मन धरती का मूल है, धरती मन ब्रजराज।।

हर कोई करता यहाँ दूजे मन की बात।
पर कोई रहता नहीं, अपने मन के साथ।।

जीवन मुट्ठी रेत है, मन पत्थर पर रेख।
पहले मन की मान तू, बाद में बुद्धि देख।।

मन अंकुर संदेह का, संन्यासी मन काम।
बिना छाँव घिरने लगे, मन के आँगन शाम।।

मन को खूब तपाइये, जैसे मरुधर रेत।
मन तपकर होता नहीं, संघर्षों में खेत।।

मन हर पल सहता यहाँ, अहंकार की घात।
फिर भी मन भूले नहीं, असल तत्व की बात।।

वेद पुराणों से बड़ा, मन रचना संसार।
आत्म तत्व भी चल रहा, लेकर मन आधार।।

जी-3, संगम रेजिडेन्सी, 9/10, हीरा नगर-ए,
गंगाराम की ढाणी, वैशाली नगर, जयपुर-302021

डोगरी कविताएं

मूलः प्रो. ललित मंगोत्रा
हिन्दी अनुवाद : कृष्ण शर्मा

लेखक मूलतः कहानीकार हैं। देश की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन। 2005 में कहानी लेखन के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार। जम्मू कश्मीर साहित्य अकादमी सम्मान। बाल साहित्यकार सम्मान 2013 में, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से 2014 में सौहार्द सम्मान।

पल

अभी तुम मेरे साथ हो—

अभी ये पल
इतने सुंदर प्रतीत नहीं हो रहे
जितने ये कल महसूस होंगे
कल इन्हें यादों के फ्रेम में
कैद हो जाना है।

कल रिश्तों की भीड़ नहीं होगी
नहीं दिखेगी उनकी आवाजाही
उनका शोर-शराबा सुनाई नहीं देगा
समय की कैंची इन्हें 'क्रॉप' करके
फेंक देगी यादों की खिड़की से बाहर

यादों के चौखटे में
रहेगी सुरक्षित-सुसज्जितः
तुम्हारी मुस्कराहट की स्निग्धता,
तुम्हारे मुखड़े पर
मिलन की चमक की आभा,
तुम्हारी साँसों की सुगन्ध पर सवार
तुम्हारी बातें, और
हमारे मध्य तुम्हारे प्यार की
मूक-मधुर गरमाहट

कल ये बीते हुए पल
बहुत सुंदर महसूस होंगे!

उदासी

मेरे भीतर
मौजूद रहता है
उदासी का एक अतल
अंधा कुआँ।

प्रतिदिन सुबह
अँजुरी भर-भर
उँडेलता हूँ उदासी को
कुएँ से बाहर
थोड़ा स्थान हो जाता है खाली
गुज़र जाता है और एक दिन—

अगले रोज फिर
भर जाता है भीतर का कुआँ
काली-अँधेरी उदासियों से
फिर कुछ जगह खाली करनी पड़ती है
फिर गुज़र होती एक नये दिन की
रात भर भरता रहता है कुआँ।

कभी-कभी सोचता हूँ—
क्यों करता हूँ मैं यत्न
कुएँ को खाली करने का?
जबकि उदासी अब
बन चुकी है मेरे जीवन का हिस्सा
तभी तो बार-बार भर जाता है
मन का अतल कुआँ
स्याह काली उदासी से

मन अब रहना चाहता है उदास
और, उदासी में ही
मिलने लगा है अब सुकून
और तो और
स्वयं से भेंट भी अब
होती है उदास पलों में ही...!

152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001

मुक्तक

चाँद शेरी

कई पुरस्कारों से सम्मानित कवि-लेखक की रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। कई पत्रिकाओं में सम्पादन सहयोग के साथ-साथ स्टील फर्नीचर के व्यवसायी।

राष्ट्रीय एकता को समर्पित मुक्तक

(एक)

दिलों से नफरत की सियासत को मिटाना है।
अम्न-शांति-भाईचारे का गीत गाना है।।
जश्न-ए-आजादी हो या हो के गणतंत्र दिवस।
हमें तो घर-घर में अब तिरंगा फहराना है।।

(दो)

मैं गीता, बाईबिल, कुरान रखता हूँ।
सभी धर्मों का मैं सम्मान रखता हूँ।।
ये मेरे पुरखों की जागीर है लोगों।
मैं अपने दिल में हिन्दुस्तान रखता हूँ।।

(तीन)

वाहे गुरु, ॐ, अल्लाहू बोलते हैं।
वतन की मिट्टी को खुशबू बोलते हैं।।
हों भाषाएँ हमारी या मज़हब अलग।
हम दिल से तो हिन्दी उर्दू बोलते हैं।।

(चार)

ये तुलसी, ये मीरा, ये रसखान की मिट्टी है।
ये गाँधी, ये बिस्मिल के बलिदान की मिट्टी है।।
यहीं गूँजती है सदाऐं अमन चैन की।
यही मेरे प्यारे हिन्दुस्तान की मिट्टी है।।

(पाँच)

नादान न बन कोई तेरा यार नहीं है।
जुल्मत में तो साया भी वफादार नहीं है।।
वो सिख है, ना ईसाई, ना हिन्दु ना मुसल्माँ।
जिस शख्स में इंसान का किरदार नहीं है।।

(छह)

मन की सुन्दरता का ज़ेवर दे मुझे।
बस यही अनमोल ग़ोहर दे मुझे।।
ईद-दीवाली, मनाएँ मिल के सब।
देखने को ऐसा मन्ज़र दे मुझे।।

(सात)

हम कभी मिट्टी से बग़ावत नहीं करते।
हम कभी लाशों की तिज़ारत नहीं करते।।
हम वतन की खातिर बहा देते हैं अपना खूँ।
रहबरों जैसी हम सियासत नहीं करते।।

गज़ल

(1)

तू न अमृत का पियाला दे हमें
सिर्फ रोटी का निवाला दे हमें
जिसको पढ़कर एक हो अहले वतन
वो मुहब्बत का रिसाला दे हमें
ढूँढ लें जुल्मत में मंज़िल के निशां
या खुदा इतना उजाला दे हमें
सीख पाएँ हम जहाँ इन्सानियत
कोई ऐसी पाठशाला दे हमें
एक दर हो एक जिनका आस्ताँ
ऐसी मस्जिद दे शिवाला दे हमें
दिल मगर उजला हो पारस की तरह
जिस्म गोरा दे कि काला दे हमें
और कुछ चाहे दे न दे 'शेरी' मगर
शायरी का फन निराला दे हमें।

(2)

खुश्क मौसम रुत सुहानी ले गया
चहचहाती जिन्दगानी ले गया
मन्दिरों का मस्जिदों का आदमी
बस्तियों की शादमानी ले गया
नागफनियों का हमें देकर फरेब
वो हमारी रात-रानी ले गया
बन के दाता इक भिखान का कोई
चन्द सिक्कों में जवानी ले गया
या खुदा कोई लुटेरा लूट कर
मेरे दिल की राजधानी ले गया
खत का मज़्मूँ भाँपने वाला कोई
प्यार के किस्से-कहानी ले गया
अब कहाँ 'शेरी' वो मंज़िल के निशां
आके तूफाँ हर निशानी ले गया।

(3)

क्या खूब पत्थरों में वफा ढूँढते हैं लोग
खामोश मकबरों में सदा ढूँढते हैं लोग
भड़के जो शोले उन को हवा दे के और भी
इंसा के सोजे-गम में रज़ा ढूँढते हैं लोग
मातम गरीब मौत का भी क्या अजीब है
लाशों में दफन अपनी दुआ ढूँढते हैं लोग
कुद बात पीने वालों की पूछो न दोस्तो
इंसान के लहू में नशा ढूँढते हैं लोग
'शेरी' बुझेगी आग हवस की भी किस तरह
अपने गुनाह में भी अदा ढूँढते हैं लोग

के-30, आई.पी.आई.ए., रोड नं. 1,
कोटा-324005 (राजस्थान)

कविता/गीत/मुक्तक/गज़ल/दोहे/नवगीत

गज़ल

राजेन्द्र तिवारी

तीन दशकों से अधिक समय से गज़लों से गहरा जुड़ाव। यदा-कदा गीत, आलेख, समीक्षा आदि का प्रकाशन। 'संभाल कर रखना' गज़ल संग्रह 2012 में प्रकाशित। 'जबान कागज पर' गज़ल संग्रह प्रकाशनाधीन। अली अवार्ड-2000 भोपाल, वाकिफ रायबरेली सम्मान 2001 आदि। सम्प्रति स्वतंत्र लेखन।

(1)

हो ज़ियादा चाहने वाला या कम कोई तो है।
हाँ! वो पत्थर का सही, मेरा सनम कोई तो है।

दर्द को राहत है दिल को है सुकूं इस बात से,
फिक्र है मेरी किसी को, आँख नम कोई तो है।

हौसला देता है, समझाता है, तेरी ही तरह,
राम जाने तू है या तेरा भरम कोई तो है।

वो नज़र आता नहीं महसूस करता हूँ मगर,
ज़िन्दगी के रास्तों में हमकदम कोई तो है।

चाँद-सूरज और सितारों को चमक देता है कौन,
कौन है? किसके हैं सब दैरो-हरम? कोई तो है।

(2)

मुस्कुराती ख्वाब में खोई हुई थी चाँदनी।
झील पर कल बेखबर सोई हुई थी चाँदनी।।

रात काली मगर रौशन था मेरा कुल वजूद।
दिल में तेरी याद ने बोई हुई थी चाँदनी।।

आस्मां के चाँद से दीगर कोई नज़रों में था।
दरमियाँ अपने गज़लगोई हुई थी चाँदनी।।

फूल शबनम से लिपट कर रहे थे तब्सरा।
रात के आँसू थे या रोई हुई थी चाँदनी।।

चाँद में भी देखती है दाग़ दुनिया की नजर।
हमने देखा दूध की धोई हुई थी चाँदनी।।

(3)

ग़मों की भीड़ में कोई खुशी तलाश करें।
इन्हीं बुतों में चलो जिन्दगी तलाश करें।।

नदी हमेशा समुन्दर तलाश करती है।
मजा तो जब है समुन्दर नदी तलाश करें।।

बजाय इसके गिनाएं हम ऐब गैरों के।
हमें ये चाहिए अपनी कमी तलाश करें।।

जो आफताब हुआ है शिकार साजिश का।
कहाँ है कैद चलो रोशनी तलाश करें।।

खुदा तलाश करेंगे तो मिल भी जाएगा।
जो खो गया है कहीं आदमी तलाश करें।।

(4)

मेरी खामोशियों में भी फसाना ढूँढ लेती है।
बड़ी शातिर है ये दुनिया बहाना ढूँढ लेती है।।

हकीकत ज़िद किए बैठी है चकनाचूर करने को।
मगर हर आँख फिर सपना सुहाना ढूँढ लेती है।।

उठाती है जो खतरा हर कदम पर डूब जाने का।
वही कोशिश समुन्दर में खजाना ढूँढ लेती है।।

न कारोबार है कोई न चिड़िया की कमाई है।
वो केवल हौसले से आबोदाना ढूँढ लेती है।।

समझ पाई न दुनिया मस्लहत 'मंसूर' की अब तक।
जो सूली पर भी हँसना-मुस्कराना ढूँढ लेती है।।

जुनूं मंज़िल का राहों में बचाता है भटकने से।
मेरी दीवानगी अपना ठिकाना ढूँढ लेती है।।

(5)

खुदा ही जाने, बिखर या सँवर रहा हूँ मैं।
वो जितना कहता है, उतना ही कर रहा हूँ मैं।।

ये और बात है... बे-बालो-पर रहा हूँ मैं।
मगर सफर में... तेरा हमसफर रहा हूँ मैं।

कदम-कदम पे है खतरा भटक भी सकता हूँ।
तवील दश्त से... तन्हा गुजर रहा हूँ मैं।।

सब आसमान में उड़ते हैं, वो भी बेपर के।
और अपने आप में... गहरे उतर रहा हूँ मैं।।

मैं पढ़ रहा था ठहर कर मिजाज दरिया का।
तमाशबीन ये समझे कि... डर रहा हूँ मैं।।

(6)

अश्कों की ज़बानी हम।
खामोश... कहानी हम।।

ज्ञानी हैं न ध्यानी हम।
बस प्यार के मानी हम।।

प्यासे हैं बहुत सहरा।
सहराओं का पानी हम।।

गर यार का दरिया तू।
दरिया की रवानी हम।।

मिसरा न लगा जिस पर।
वो मिसरा हम।।

38-बी, गोविन्द नगर, कानपुर-208006 (उ.प्र.)

कविताएँ

विमल सहगल

पिछले चार दशकों से साहित्य-सृजन में लगे विमल सहगल विभिन्न ललित कलाओं में भी दक्षता रखते हैं। पूर्व-राजनयिक रह चुके हैं। एक विदेशी समाचारपत्र में स्तंभकार एवं विदेश मंत्रालय में सलाहकार।

कुरुक्षेत्र

अनंत क्षितिज के तेज का मुखड़ा
मेरे हिस्से की धूप का यह टुकड़ा
मेरी खिड़की से झाँक
अंतःकरण के अंधकार को फाँक
जग-पीड़ा का बोझ भुला
उन्मुक्त अम्बर में मुझे उड़ा चला
जहाँ अमृत-वर्षा में भीग रहा
इन्द्र-धनुष का झूला।

नहीं लौटना मुझे, ऐ धरा खोल दे बंधन
बस रहना है यहीं जहाँ नहीं पीड़ा का स्पंदन
लुभा रहा बादलों का बेलगाम तैरता कारवाँ
पंछियों की उड़ानों पर हर्षाता आसमां।

पर निश्वासों की डोर से लटक
अपने कृतव्य-कुरुक्षेत्र में लौटना होगा
अधिकारों की लड़ाई में फिर से जूझना होगा
उड़ना है मुझे तो सिर्फ समूह में
इस जाल को एक साथ ले उड़ना होगा
कौरव संख्या-बल को फिर छेदना होगा
एक नया अभिमन्यु बन
वही पुराना चक्रव्यूह भेदना होगा।

पड़ाव

चलो लौट चलें / उस खोए समय में
जहाँ कभी दोनों / हमकदम थे।
समायें फिर / उस भीड़ में
जहाँ मिल कर / खो जाते थे
अपने आप में।
समुद्र किनारे / नंगे पैर / फिर से चलें / रेत
में / अपने कदमों / के निशान ढूँढते।
बंद खिड़की / की झिर्री
से फिर / झाँक तुम
राह तकना / मेरी / शाम भर।
चलो / फिर से चलें / उन अनबूझी
राहों पर / फिर से पायें
अपने अस्तित्व को।
खेवें खुद / फिर / वक्त के थपेड़ों
से जीर्ण / अपनी नाव को;
कुछ / पड़ाव अभी / बाकी हैं।

दस्तक

अन्तःकरण की अँधेरी, संकरी
गलियों में आशाओं के दीप जला
अपने चिर सोए / अरमानों को
जगाने निकला हूँ।

उनींदी-अलसाई आँखों
के झरोखों से झाँक / एक हेय दृष्टि में
मेरे अस्तित्व को समेट
अगाध गर्भ के गहन में
फिर खो जाते हैं हताश
यह अरमान / छोड़ मुझे फिर से
इस भूली-बिसरी / नगरी में भटकने को
किसी नए द्वार पर / दस्तक देने को।

शायद कोई तो / मंजिल होगी अनबूझी
कहीं बिसरी पड़ी / किसी के इंतजार में
मेरे व्याकुल कदमों की डगमग
जिसके कर्णों तक पहुँचे।

टिमटिमाती लौ को / आँचल में सहेज
फिर आ पहुँचा हूँ / अगले द्वार पर
अन्तःकरण की / अँधेरी, संकरी
गलियों में।

पेच

असमंजस / के सोये / जाल को
सेंध लगा / संवेदनाओं / के गुब्बार
ले उड़ते हैं / उसमें से / आकांक्षाओं की
कुछ / उनींदी लड़ियाँ / और छुपा आते हैं
उन्हें / हृदय के / किसी / अनबूझे
शरण्य में / जहाँ बैठी / अदम्य कल्पना
बुन रही / उन्हें चुन / संकल्पों के
करघे पे / एक हठीला / ताना-बाना।

उन्मुक्त / तितलियों मानिंद / मचलती
थिरकती / कुलाँचें भरती / हसरतों को
ढील दे / उड़ा रही– / चरखी पकड़े
उकसाते, / खुली छतों पे / है सबको
बुला रही।

उठो, / उलझनें / सँवारो;
अपनी-अपनी / डोरियाँ / संभालो।
आसमान की / गहराई को / आजमाओ;
चलो जिंदगी से / फिर / पेच लड़ाओ।

जीवन संध्या

जीवन-संध्या के इस
सुरमई प्रकाश से उज्ज्वल
अपने कर्मों की किताब
बाँचने बैठा हूँ
क्या खोया, क्या पाया
हिसाब आँकने बैठा हूँ।

हाय! यह कैसा माया-जाल है।
उपलब्धियों से लबा-लब खाते अचानक
नव-बोध के पैमाने से रिक्त मिले
पश्चाताप रहा जिन पर उम्रभर
आज गौरवमयी वही मिले।

नजरों से दुविधा के जाले हटा
एक नए तेज ने झाँका है
कुछ नए सन्दर्भ जुड़े हैं
नए मूल्यों को आँका है।

यह कैसा मायाजाल है!
यह मायाजाल है, या फिर वह मायाजाल था
जिसे भेद मैं एक नई मंजिल की राह पर
आ निकला हूँ जीवन के इस संध्या-काल में।

ई-602, पंचशील अपार्टमेंट्स, प्लाट नं. 24,
सैक्टर-4, द्वारका, नई दिल्ली-110078

कविताएँ

डॉ. सरोज कुमारी

डॉ. सरोज कुमारी दिल्ली विश्वविद्यालय के विवेकानंद कॉलेज के हिंदी विभाग में प्राध्यापिका एवं कविता लेखन में सक्रिय। इनकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

क्योंकि मैं तदर्थ हूँ

मातृव्य की वेदी पर लड़खड़ाती स्त्री,
कमजोर हो गई,
क्योंकि समाज और शासन की लचर
व्यवस्था आप मजबूत हो गई।

दाँव पर लगा है जीवन और कर्म,
कौन समझेगा इसका मर्म
वह है मजबूर बड़ी,
वर्तमान और भविष्य के दोराहे पर खड़ी,
वह निराश है, वह निहत्थी है,?
कैसे दे जन्म भविष्य को
हम नहीं है उसे, क्योंकि वह 'तदर्थ' है।

उदर में नौ माह के जीव को लेकर
गर्म तपती दोपहर में,
काँपती, हाँफती, / धीरे-धीरे कदम बढ़ाती,
मातृत्व की वेदी पर लड़खड़ाती,
हक नहीं है उसे माँ का जीवन जीने का
अपने अंश को छाती से लगाने का,
गुनगुनाने का, सहलाने का
और लोरी सुनाने का
अपने भविष्य की आँखों में,
नए सपने संजोने का

रुक जाते हैं कदम यह सोचकर,
थम जाती हैं साँसें यह जानकर,
और टूट जाते हैं सपने यह महसूस कर
कि मैं 'तदर्थ' हूँ, मेरा ममत्व मैं व्यर्थ हूँ।

मुझे आपत्ति है

मुझे आपत्ति है, उन शब्दों से
जो आज मुहावरे बन गए हैं,
प्रतीक बन गए हैं, / और बन गए हैं उपमान,
स्त्री की पहचान के।

जो चोट करते हैं—सीधे स्त्रीत्व पर
जो ललकारते हैं—उसके स्त्री होने को
स्त्रीत्व क्या है?
और क्या होता है स्त्री का होना
कितना भारी है यह शब्द
कितना सार्थक और कितना गूढ़,
समझना होगा इसे
मानना होगा इसका लोहा
और बदलने होंगे वे मुहावरे,
वे प्रतीक, वे उपमान
जो संवेदनहीन हैं इसके प्रति,
क्योंकि यही वह शब्द है—
जो प्रतीक नहीं कमजोरी का
ये उपमान नहीं असक्षमता का
और यह मुहावरा कि लो चूड़ियाँ पहनों
और घर के अंदर बैठो।
स्त्रीत्व को ओढ़कर / एक कोने में!

अब बदल गए हैं इसके मायने
बदल गयी है समाज की वह धारा
जिसके बीच में अथाह झंझावतों के बाद
आज भी खड़ी है वह
अटल, अमिट और अपरिमित त्याग को लेकर
पहले भी ऐसी ही थी वह
चूड़ियाँ पहनकर इसने
झाँसी का युद्ध लड़ा और
दुर्गावती का रूप धरा
कभी जोधा, तो कभी मीरा बनकर,
समाज को मोड़ा / चूड़ियाँ पहन कर ही इसने
शासन किया, सैर की आसमानों की
और हराया विश्व को खेल के मैदानों में
चूड़ियाँ पहन कर ही
वह लड़ रही है आतंकियों से निडर होकर
और लिख रही देश का नया इतिहास
शासन कर रही देश पर,
उड़ रही है आसमान में,
कहाँ नहीं है इसकी उपस्थिति,
कहाँ नहीं है इसकी ताकत
चूड़ियाँ पहन कर ही वह लड़ रही समाज से
अपने अस्तित्व की लड़ाई,
चुनौती दे रही है पुरुषत्व को

इसलिए बदल दो यह मुहावरा
कि चूड़ियाँ पहनो और घर बैठो
ओढ़कर अपने स्त्रीत्व को, एक कोने में।
क्योंकि बदल गए हैं, इसके मायने
और बदल गयी है समाज की धारा
आज यह शब्द पर्याय बन गया है—
साहस और संघर्ष का
ज्ञान और शौर्य का / भावना और प्यार का
स्वीकारो इसे और आत्मसात करो!

लाल बत्ती

बत्ती हरी होने पर भी दौड़ा नहीं कोई,
भागा नहीं कोई, / बल्कि रुक गए वहीं,
ठिठक गए वहीं,
कुछ के पैर जम गए, इस तरह सड़क पर
जैसे रेत में धँस जाने पर हो जाते हैं जाम,
कुछ की आँखें पत्थर की तरह कठोर
और हाथ पत्तों की तरह, थरथरा रहे थे।
हुआ कुछ ऐसा जिसे देखकर
रुक गई थी जिन्दगी दिल्ली की
जो प्रायः रुकती नहीं है, भूकम्प और
बाढ़ के प्रकोप से भी।
लालबत्ती पर रोज
तरह-तरह की कलाबाजियाँ करती
गाती गुनगुनाती
प्यारी सी आठ साल की सोना
बेसुध पड़ी थी।

खुली पट्टी थी उसकी आँखें
उसी थैली की तरह,
जो आप बिखरी पड़ी थी सड़क पर
उसके साथी भी आज,
गाड़ी के शीशे जबरदस्ती,
साफ नहीं कर रहे थे
न ही माँग रहे थे पैसे, /बस बैठे थे उदास,
जैसे बैठ जाता है कोई, / पिंजड़े के पास,
जब पंछी उड़ जाता है,
बहत दूर अंजान जगत में
कभी वापस न आने के लिए।

(द्वारा जयपाल सिंह)
विवेकानंद कॉलेज, हिन्दी-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नजदीक वेलकम मैट्रो स्टेशन, दिल्ली

कविता/गीत/मुक्तक/ग़ज़ल/दोहे/नवगीत

कविताएँ

स्वेदश भारती

हिन्दी के सुपरिचित कवि, उपन्यासकार, सर्जनात्मक साहित्य के श्रेष्ठ रचनाकार, कई आधुनिक काव्य-आंदोलनों के प्रवर्तक। हिन्दी भाषा-साहित्य को देश-विदेश में प्रचारित-प्रसारित करने के लिए पचास वर्षों से समर्पित। राष्ट्रीय हिन्दी आकदेमी के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं साहित्यिक हिन्दी पत्रिका 'रूपाम्बरा' के सम्पादक। अनेक सम्मानों से सम्मानित एवं लगभग 100 पुस्तकों के लेखक।

यात्रा पथ के सोपान

कितने सारे सोपान पीछे छोड़े
कितने सारे गन्तव्य-पथ की ओर जाने वाले
छोटे-बड़े, संकरे, चौड़े, ऊबड़ खाबड़
कटकाकीर्ण, मरुथल, जंगल, पठार छोड़े
कितने सारे तर्क-वितर्क के पैमाने तोड़े
अपने रास्ते को सुनिश्चित मंजिल की ओर मोड़ा

वे सभी स्मृतियाँ, मस्तिष्क-वन की आग में
झुलस गईं। आकृति-हीन हो गईं
हृदय, मन, बुद्धि के अश्वधारी शक्तिरथ
परोक्ष भाव से मुझे खींचते रहे
ओर एक स्पष्ट आवाज दिलासा देती रही
चलो चलो चलो, रुको मत
अकेले चलो अपने गन्तव्य की ओर
और उसी स्वर-शब्द-ज्ञान को तभी तो
अपनी अभिव्यक्ति से जोड़ा।

सूर्य-दृष्टि

सूर्य अपना समय-पथ स्वयं निर्धारित करता है
छः मास उत्तरायण और छः माह दक्षिणायन रहता है
तिल तिल कर प्रतिदिन अपना पथ बदलता
ब्रह्माण्ड का वही एकमात्र नक्षत्र है
जो हजारों लाखों अणु बमों से अधिक
जाजल्यमान स्वनियंत्रित महाशक्ति
ज्वाला में जलता है
सूर्य प्रतिदिन अपना पथ बदलता है
और रहता सदा स्फूर्ति, शक्ति, शौर्य में श्रेष्ठ
शून्याकाश में क्षितिज-दर-क्षितिज
निरंतर चलता
पृथ्वीजनों को देता प्रकाश, नव पथ-ज्ञान,
मनुष्य, प्रकृति के कण-कण को करता जागृत
देता नव संदेश—उठो, जागो,
अभीष्ट-पथ पर चलो
समर्पित करो अभीष्ट पाने के लिए
मन-प्राण, चेतना-ज्ञान
सूर्य ही देता नवजीवन,
प्रकृति को नव विहान, नवान्न
अपनी आलोक-प्रभा से बर्फाच्छादित
पर्वत-शिखरों
उद्वेलित सागर, कुहासे में डूबी घाटियों,
नदियों, मरुथल सघन जंगलों को
बनाता समृद्ध, जीवन्त, सौन्दर्यपरक, अर्थवान
सूर्य हमें ऊर्जा देता, फल, फूल औषधियाँ देता
जीवन को आलोक से भरता।

जीवन का क्रय-विक्रय

मैंने मिट्टी के भाव बेंच दी सुबहें,
दोपहरी और शाम
बेच दिए मन की आशाएँ, सपने
प्रतिष्ठा जनित अस्मिता के विविधवर्णी रूप
सताती रही निरन्तर असमय की कड़ी धूप
बेच दी मैंने प्राण संवेदना की भाव-भूमि
मौन का अन्धकार घिरता रहा
रिक्त हाथ मलती रही अभिव्यंजना
इस क्रय-विक्रय में सक्रिय रही प्रवंचना
खेलती रही आत्मानुरागी किन्तु कुत्सित क्रीड़ा
मिला भी तो संबंधों का मेल-अमेल
ऐसे में जाती नहीं दिमाग से
भयाक्रान्त पीड़ा।

रूपाम्बरा, 331, पशुपति भट्टाचार्य रोड,
कोलकाता-700041

हाँफ उठे अवरोध

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

ज्ञानवृद्ध-सहृदय रचनाकार, कवि, 21 पुस्तकें प्रकाशित, कई पुरस्कारों से सम्मानित, वर्षों से लेखन में सक्रिय।

(1)
हारी बाधायें सकल, हाँफ उठे अवरोध।
जिस क्षण मन को हो गया, आत्मशक्ति का बोध।।
(2)
मैंने चलने के लिये, बढ़ा दिये हैं पाँव।
पथ की बाधायें हटीं, मिला लक्ष्य का गाँव।।
(3)
चलते रहे सदैव ही, पग अपने अविराम।
किसी बड़े अवरोध को, कभी न किया प्रणाम।।
(4)
जो बाधाओं से डरा, चल न सका पग एक।
चलने वाले का हुआ, पग-पग पर अभिषेक।।
(5)
बाधायें रचती रहीं, कोटि-कोटि संजाल।
कर्मवीर के सामने, कभी न गलती दाल।।
(6)
निर्बल पाकर घेर कर, किये वार पर वार।
मारुति की कृपा से, विघ्न गये सब हार।।
(7)
बाधाओ को काटता, जिसका कर्म-कुठार।
पग-पग उसका तीर्थ है, हर पल है त्यौहार।।
(8)
भूत गया, आया नहीं, जब आगत का द्वार।
तब जीवन ऐसे जियो, ज्यों पल-पल त्यौहार।।
(9)
बाधायें बाधा बनें, उनका अपना काम।
मन! मारुति की शरण रह, जपो राम का नाम।।
(10)
होली दीवाली कभी, ईद पोंगलम सत्य।
पग-पग सन्त पुनीत हैं, पर्व देश में नित्य।।

86, तिलक नगर बाईपास रोड,
फिरोजाबाद-283203 (उ.प्र.)

पुस्तक-समीक्षा

ज्ञानवृद्ध गुरु की खेती-बारी

डॉ. वेदप्रकाश सिंह

डॉ. वेदप्रकाश सिंह युवा आलोचक-समीक्षक एवं जामिया मिल्लिया इस्लामिया से पीएच.डी. उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। इनकी समीक्षाएँ, रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित।

यह पुस्तक शिष्यों के बारे में है। ऐसे शिष्यों के बारे में जिन्होंने अपने गुरु डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के भाव-संसार को और व्यापक बनाया। यहाँ संस्मरण रूप में ऐसी कहानियाँ प्रस्तुत हैं, जो अकल्पनीय और सत्य हैं। शिष्यों की अकल्पनीय दुनिया को आत्मीय ढंग से यहाँ याद किया गया है।

लेखक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के गुरु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का पुण्यस्मरण कर उनकी जीवनी लिखी 'व्योमकेश दरवेश'। आकाशधर्मा गुरु के समान ही शिष्य वत्सल गुरु डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपनी आत्मीयता के अनुभव के आस्वाद-शिष्यों पर यह पुस्तक लिखी 'गुरुजी की खेती-बारी'। पुस्तक में शिष्यों के बारे में लिखने से पूर्व अपने आदि गुरु रच्छा राम पंडित का स्मरण किया गया है। जो उनके गाँव बिस्कोहर के गयाप्रसाद शिवाला में फूलपुर गाँव से आकर पढ़ाते थे। उस पाठशाला में उन दिनों न नाम लिखाया जाता था और न ही लाड़-प्यार का दिखावा किया जाता था। पढ़ाना और पीटना साथ-साथ चलता था। न पाठ्यक्रम, न पुस्तकें, न परीक्षा। इतना अनौपचारिक विद्यालय जो आ जाए विवद्यार्थी। जो न आ पाए तो पंडित रच्छा राम घर जाकर स्कूल लिवा लाते। लेखक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के बचपन की ऐसी ही एक घटना है—''एक बार मैं बीमार पड़ गया। दो-तीन दिन तक स्कूल नहीं गया। चौथे या पाँचवें दिन पंडित रच्छाराम मेरे घर आए और अगले दिन मेरे घर आकर मुझे अपने साथ स्कूल ले गए।'' बिना दाखिले वाले विद्यालय के मास्टर भी अपने विद्यार्थियों की हाजिरी मन में लेते ही होंगे। दुर्लभ गुरु-शिष्य सम्बन्ध तब सामान्य था। अब अकल्पनीय लगता है।

एक घटना और है। यह इस किताब में दर्ज नहीं है। लेकिन किताब में दर्ज संस्मरणों की पूर्वपीठिका है। यह घटना बिस्कोहर से दूर बनारस की है। लेखक तब कानपुर से बनारस आ गए थे। और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का शिष्यत्व पाने उनके घर गए। गुरु और शिष्य के प्रथम मिलन की यह घटना संवादों में दर्ज है—''मैंने लपकर चरण-स्पर्श किया।'' ''कैसे आए हो?'' ''आपकी शरण में आया हूँ। असहाय हूँ। आपके चरणों का आश्रय पाकर मेरा जीवन बन जाएगा।'' ''कोई दूसरा किसी का जीवन नहीं बनाता। तुम अपना जीवन खुद बना-बिगाड़ सकते हो।'' ''मैं एम.ए. में प्रवेश चाहता हूँ। आपका शिष्यत्व मुझे प्राप्त हो जाएगा।'' ''कैसे नंबर थे बी.ए. में?'' ''लगभग साठ प्रतिशत, तीन अंकों की कमी से फर्स्ट क्लास रह गया। हाईस्कूल, इंटर में फर्स्ट क्लास था। वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर में अध्यापक आशा करते थे कि यूनिवर्सिटी में टॉप करूँगा। प्रथम श्रेणी भी नहीं आई। शर्म के मारे वहाँ से भाग आया हूँ। पं. राम सुरेश त्रिपाठी जी ने कहा था।'' मैं पता नहीं कैसे यह सब कह गया। बोलते समय घबराहट से मैंने क्या कहा, पंडित जी ने क्या सुना—कह नहीं सकता। ''कुछ आर्थिक कष्ट है।'' ''उसका प्रबंध मैं

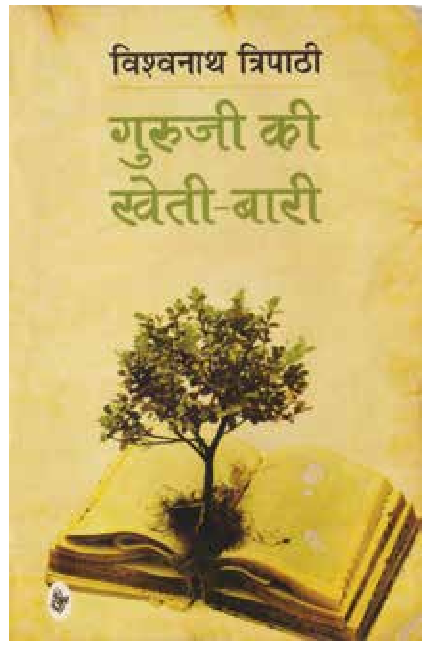

पुस्तक : गुरुजी की खेती-बारी

लेखक : विश्वनाथ त्रिपाठी

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन,
नई दिल्ली।

संस्करण : 2015

मूल्य : 125 रुपए

कर लूँगा। मुझे बस आपकी कृपा चाहिए।'' ''जब तुम मेरे शिष्य हो गए तो गुरु-शिष्य से बढ़कर आत्मीय-संबंध और कौन होता है?'' (व्योमकेश दरवेश, भूमिका, पृ. 14)

यही अंतिम वाक्य—''गुरु शिष्य से बढ़कर आत्मीय संबंध और कौन होता है?'' उन चालीसेक वर्षों की अध्यापकीय यात्रा का पाथेय-मंत्र बना जिसे डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने संस्मरणों में अपरोक्ष रूप में प्रकट किया है।

इस पुस्तक में उन छात्र-छात्राओं के संस्मरण हैं जो अपनी जीवन-स्थितियों में असामान्य थे। जहाँ असामान्यता वाली बात निकल कर नहीं भी आ रही है वहाँ ऐसी घटनाएँ जरूर हैं जो अध्यापक-लेखक के मन पर अमिट निशान छोड़ गई हैं। ये घटनाएँ अजीब-अबूझ तौर पर लेखक की अंतश्चेतना का अंग हैं।

मास्टरी का पहला अनुभव भी बिस्कोहर से ही जुड़ा है। अध्यापक विश्वनाथ त्रिपाठी और विद्यार्थी चंद्रकलाधारी त्रिपाठी। यानी छोटे भाई शेर सिंह। यहाँ भी पढ़ाई-पिटाई साथ-साथ। इस संस्मरण का शीर्षक है—पिटते-पिटते बचे 'गुरुजी'। गुरुजी यानी लेखक। शेरसिंह छोटे बस उम्र में ही थे। डील-डौल में नहीं। हाथ से कैनी छीन कर गुरुजीमुद्राधारी बड़े भाई को भी लगाने का भाव सामर्थ्य रखते थे। पीटने पर आमादा मास्टरी मुद्रा वाले बड़े भाई ने जानबूझकर मुश्किल सवाल दिया। गलत करने पर पीठ पर छड़ी लगाई। एक-दो बार की पिटाई से हुए दर्द को आँसू बहाते हुए शेर सिंह ने सह लिया। लेकिन जब ''तीसरी बार हाथ उठाया तो उसने हाथ पकड़ के कैनी हाथ से छीन ली। अब आँसू छलछलाने वाली बात नहीं थी। हिचक-हिचक कर रो रहा था, कैनी उठाकर रोते हुए ही बोला, ''अब्बै हम एक ठो जमा दें तो कैसन लागी?'' तो पीटते हुए गुरुजी पिटते-पिटते बचे।

अध्यापकी का दूसरा अनुभव बनारस से जुड़ा है। शिष्य थे लाल जी और गिप्पी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के पुत्र। यहाँ भी लालजी यानी मुकुंद द्विवेदी बिलकुल शेरसिंह की भाँति प्रस्तुत। जब गुरुजी-लेखक विश्वनाथ त्रिपाठी ने लालजी के कान खींचे तो वे गुरुजी को अपने दादा टाइप मित्रों का हवाला देकर पिटवाने की धमकी देते।

विधिवत अध्यापकी मिली 16 नवंबर 1958 को। नैनीताल के देवीसिंह बिष्ट महाविद्यालय में। लगभग ग्यारह महीने वहाँ अध्यापन किया। लेखक-अध्यापक की उम्र तब 27 की थी। दुबले-पतले होने के कारण लगते 22-23 के थे। ऐसे नवागत किशोरवय लड़के जैसा लगने वाले अध्यापक को तंग करने की योजना छात्रों ने बनाई। अध्यापक का विद्यार्थियों से पहला विधिवत-मनोरंजक परिचय इस प्रकार हुआ—''मैं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कक्षा-अनुशासन और अध्यापन-पद्धति का उत्साह लेकर क्लास में दाखिल हुआ। क्लास में खचाखच भीड़। 75 लड़कों का नाम रजिस्टर में, संख्या कम-से-कम 150 की थी। छात्र-छात्राओं ने कहा, ''नया टीचर आया है, लड़के-जैसा लगता है। चलो मजा लें। आज पहला क्लास है उसका।'' सीनियर अध्यापक डॉ. पुत्तुलाल शुक्ल ने समझाया, ''घबड़ाइएगा नहीं। एक लौंडा है—चंद्रशेखर चंदोला। एक नंबर का शातिर है। बच के रहिएगा। टेरर है नए अध्यापकों के लिए।'' क्लास में इतनी चीख-पुकार कि हाजिरी लेने में छात्र-छात्रा का नाम ही न सुनाई पड़े। मुझे उन जाति-नामों से परिचय नहीं था। वे मुझे अपरिचित लगते। रोमन लिपि में लिखा उनका नाम भी मैं ठीक से नहीं ले पाता। सानवाल, थपलियाल, बड़थ्वाल, कपकोटी—इनका ठीक-ठीक उच्चारण करने में गड़बड़ा जाता। मैं रुआँसा, कहाँ फँस गया? कासी की सारी विद्या व्यर्थ! सारा तेज हवा! क्लास में ऐसी चिल्ल-पों कि मैं असहाय अध्यापक कुछ बोलने का प्रयास करूँ तो चीख, चिल्लाहट, शोर और बढ़ जाए।''

इसके बाद का वृतांत और रोचक किंतु विस्तृत है। चंद्रशेखर ने अपने ढंग से तंग किया। अध्यापक बनने का रोमांस चूर-चूर होने लगा। लेकिन यह स्थिति जल्द ही आत्मीयता में बदल गई। जब नौकरी दिल्ली के किरोड़ीमल कॉलेज में लगी तो वहाँ से मयसामना बस से काठगोदाम आकर दिल्ली की ट्रेन पकड़ी। स्टेशन पर विदाई देने अनेक छात्र आए। उनमें चंद्रशेखर भी। छात्रों के स्नेह को देखकर एक यात्री ने पूछा—कब से आप पढ़ा रहे थे?'' मैंने कहा—''ग्यारह महीने से।''

समय के साथ अध्यापकीय जीवन के अनुभव बढ़ते गए। किरोड़ीमल कॉलेज आकर दिल्ली के माहौल से परिचय हुआ। 'मॉरिस नगर से मॉरिस नगर' में छठवें दशक की दिल्ली, कॉलेजों, शिक्षा व्यवस्था, राजनीति, संस्कृति, लोगों के आपसी संबंध, दिल्ली विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग, कॉलेज के साथी शिक्षक, गतिविधियाँ, लेखक सभी दर्ज हैं। दिल्ली की बसों से लेकर सोवियत अंतरिक्षयान 'लाइका' तक का जिक्र इसमें मिलता है। आजादी मिले एक दशक से ज्यादा समय हो चुका था। उस समय में बने और बनने जा रहे देश और उसकी राजधानी की एक अच्छी खासी छवि इसमें मिलती है। बिलकुल ऐसी मानो दिल्ली के पचास साल पहले के चित्रों की प्रदर्शनी लगी हो। इतनी मनोहर प्रदर्शनी जिसमें सबके लिए कुछ न कुछ दृश्य सुरक्षित हैं। दिल्ली आए तो दिल्ली की चकाचौंध मन में बस गई। राजनेता से लेकर बड़े रचनाकारों तक सबसे मिलना सुलभ था। वे सब यहाँ आसानी से मिलते-दिखते थे। लेखक इस माहौल का इतना तटस्थ और प्रभावशाली वर्णन करते हैं कि खुद को खुद से अलग करके देखने लगते हैं। खुद को कई जगह अन्य पुरुष में भी लिखते हैं।

तब हिन्दी विभाग में डॉ. नगेन्द्र का डंका बजता था। प्रभाव ऐसा कि उनसे फोन पर बात करते हुए भी लोग खड़े रहते। इसी दुनिया में गुरुजी भी हैं और उनके अपने विद्यार्थियों की दुनिया भी। इसमें योग्य-अयोग्य विद्यार्थी हैं। निम्नवर्गीय-निम्मध्यवर्गीय उम्रदराज होते बेरोजगार लड़के-लड़कियाँ हैं। उनकी महाकाव्य पीड़ा है। उनका टीस भरा असहाय कर देने वाला बयान है। पढ़ने और आगे बढ़ने के साथ-साथ पीछे छूट गए विद्यार्थी हैं। उनकी पारिवारिक स्थितियाँ, दुख-दर्द, संघर्ष, खुशियाँ-गम यहाँ दर्ज हैं।

सबका बयान नहीं हो सकता। उसके लिए तो किताब ही पढ़नी चाहिए। कुछ घटनाएँ और कहानियाँ हैं। एक छात्रा और उसकी माँ के सपने की दारुण कथा है। मानो करुणा के किरणीले कण हैं—''छात्रा सीधी-सादी थी—वयस्क, मोटी और थुलथुल। निरीह। दो-तीन दिन के बाद उसकी माँ आई। मुझे पूछते हुए स्टाफरूम में। डिब्बे में आधा किलो

बर्फी। अलग ले जाकर पूछा, ''सर ये मेरी लड़की एम.ए. कर लेगी तो इसे प्रोफेसरी मिल जाएगी?'' प्रोफेसरी यानी लेक्चरशिप। उन दिनों लेक्चरर को आम लोग प्रिंसीपल या प्रोफेसर कहते थे। हिन्दी-संस्कृत के अध्यापक को गुरुजी या शास्त्रीजी। उसने दो-तीन बार आग्रहपूर्वक पूछा, ''यह कहती है कि एम.ए. करने के बाद मुझे प्रोफेसरी की जॉब मिल जाएगी।'' उस वृद्धा की आँखों में यह सवाल पूछते हुए जो भाव था, उसे मैं बयान नहीं कर सकता। भाषा में उसके लिए शब्द नहीं।''

छात्र-छात्राओं की इन मनोदशाओं का जिक्र किताब में बार-बार आता है। हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों की आर्थिक-पारिवारिक स्थिति और सपने कमोबेश एक जैसे होते हैं। लड़के-लड़कियाँ नौकरी लायक होकर अनेक वर्षों तक इंतजार की सलीब पर टँगे रहते। यह स्थिति कमोबेश आज भी वैसी है। कुछ बढ़ोत्तरी ही हुई होगी। लेकिन शिष्यों की ऐसी दशाओं पर सोचने और उसे लिखने वाले अध्यापक नदारद हैं।

1977 की एक उदास कर देने वाली घटना है। शिष्य की नहीं। शिक्षा व्यवस्था और बेरोजगारी की—''1977 में जिस दिन मुझे विश्वविद्यालय के कला संकाय में नौकरी मिली, तो प्रसन्नचित्त से मैं कॉफी हाउस गया। मुझे अकेले खाना-पीना बुरा नहीं लगता। प्रसन्नचित्त अवस्था में अकेले स्वाद लेना मुझे अच्छा लगता है। लेकिन काफी की मेज पर एक अधेड़ व्यक्ति आ गया। मैंने देखा, उसकी मूँछ के बाल सफेद होने लगे थे। मैंने पूछा, ''आप किस कॉलेज से हैं?'' उसने डूबती आवाज में कहा, ''पार्ट टाइम हूँ। एम.ए. लगभग 15 वर्ष पहले किया था। मन उखड़ गया।'' मेरी प्रसन्नता भी बुझ गई। आप उन महिला दिखने वाली छात्राओं और उनके माता-पिता के मानसिक सन्ताप की भी कल्पना करें।''

इस अनिश्चय में अनेक तरह के रोजगारपरायण कौशलों का भी प्रयोग किया जाता। चापलूसी, चुगली, निंदा-प्रशंसा, सम्पर्क-साधन की गतिविधियाँ होतीं। नौकरी पाने की जुगत लगाई जती। अच्छे-बुरे सभी तरह के काम करने पर लड़के-लड़कियाँ मजबूर होते। अध्यापक इन सब गतिविधियों और उनके निहित कारणों को समझते। फिर दया, घृणा, करुणा, उपेक्षा जो उपयुक्त समझते—-देते।

इनमें सभी छात्र-छात्राएँ जुगाड़ू नहीं होते। लेकिन जो जुगाड़ू होते उन्हें भी लेखक-अध्यापक ने खलनायक नहीं माना। उनके अन्तर्मन को खोलने की कोशिश की है। कुछ छात्र गलत तरीके आजमाते। झूठ बोलते। नकल करके पीएच.डी. लिखते। उनमें से एक के बारे में लिखा है—''शोध-प्रबंध का जो अंश उसने मुझे दिखाया, वह उसका खुद का लिखा नहीं था। मुझे शक हुआ। मैंने उससे कहा, ''साफ बताओ, यह तुम्हारा लिखा है कि नहीं?''वह बार-बार कहता रहा, ''मेरा लिखा है।'' मैंने करीब 50 बार पूछा। उसने हमेशा कहा, ''नकल नहीं है।'' मैंने कहा, ''ठीक है, अगर नकल होगी तो मैं तुम्हारी शिकायत ऊपर कर दूँगा। तुम मुझसे भी झूठ बोल रहे हो। देखो, गुरु से झूठ नहीं बोला जाता।'' वह अडिग। बाद में मैंने उसे किताब दिखाई। एक प्रसिद्ध लेखक की किताब से उसने 50 पृष्ठ उतार लिए थे। वह चुप, रुद्ध-श्वास। मैंने उसकी रपट कहीं नहीं की। छात्र और अध्यापक के बीच किसी अधिकारी के आने की क्या जरूरत! मैंने उसकी गलती बता दी, बस। लेकिन उसके मन में भय बैठ गया। उसके मन की नदी का दूसरा किनारा धुँधला और दूरतर होता गया। उसने पीएच.डी. कर ली थी लेकिन उत्तर ठीक से नहीं दे पाता था। चयन समिति में मैं होता तो यह सुनकर ही वह भाग जाता, इंटरव्यू नहीं देता। उसे नौकरी नहीं मिली। पता नहीं वह कहाँ है! उसकी निराशा, अपराधबोध से ग्रस्त, सहमी-मटमैली आँखें मुझे कभी-कभी घूरती हैं। मैं कर्तव्यपालन कर रहा था, उसे उसकी गलती समझा रहा था या कि उसके कैरिअर की हत्या कर रहा था?'' यह एक गुरु की शिष्य की यातना से द्रवित स्वीकारोक्ति है।

इन हृदयद्रावक घटनाओं में अनेक मनोरंजक किस्से और घटनाएँ भी हैं। एक घटना है नसीबवती की। किस्सा लेखक से ही सुनिए—''एक छात्र का नाम था—नसीबवती। गोरी, चिट्टी। फर्स्ट ईयर में दाखिल हुई थी। ऐच्छिक विषय दो थे—भाषा विज्ञान या 'प्रियप्रवास'। मैं 'प्रियप्रवास' पढ़ा रहा था। वह क्लास में धड़धड़ाती आई। कुछ पूछा नहीं। मेरे हाथ से किताब लगभग छीनी, देखा फिर, तुम तो 'प्रियप्रवास' पढ़ा रहे हो जी।'' कहती हुई वापस लौट गई। आज भी याद करके हँसता हूँ। उस समय क्लास में ठहाके लग रहे थे।''

ऐसे ही मनोरंजन के आलंबन थे धवन। धवन का किस्सा बड़ा नाटकीय है। इस घटना से नाटक का भी सम्बन्ध है। घटना स्थल है किरोड़ीमल कॉलेज। प्रेमचंद पर समारोह था और वक्ताओं में डॉ. जैनेंद्र, हंसराज रहबर, रामविलास शर्मा और डॉ. नगेन्द्र आमंत्रित थे। साथ ही प्रेमचंद की कहानी 'कफन' का मंचन होना था। इसमें थानेदार की भूमिका कॉलेज की हर गतिविधि में हस्बमामूल धवन को निभानी थी। जिनकी वेशभूषा से लेकर उच्चारण सबमें हास्योपादकता का अद्भुत संयोग घटित होने वाला था। वे बोलते तो उनकी साँस फूल जाती। तमाम तैयारी के बाद भी पाखंड को परचंड बोल दे रहे थे। खैर नाटक शुरू हुआ। देखने वालों में वक्तागण भी उपस्थित। धवन की कद-काठी, वेशभूषा देखकर ही दर्शक हँसने लगे और बाद में वही हुआ जिसका डर था। वे बोले—''तुम लोगों ने यह क्या परचंड मचा रखा है?'' यह बोलना था और सभागार हँसी से हिलने लगा। साथ में डॉ. रामविलास शर्मा और डॉ. नगेन्द्र भी।

इन्हीं स्वनामधन्य धवन साहब ने वाइस चांसलर सी.डी. देशमुख को प्रिंसिपल सेठी द्वारा योग्यता प्रमाण दिलवाने का उल्लेखनीय मूर्खतापूर्ण कार्य किया। घटना कुछ यूँ है—''धवन तत्कालीन प्रिंसिपल सेठी के इर्द-गिर्द बहुत रहते थे। प्रिंसिपल सेठी सीधे थे। धवन के कहने में आ गए। धवन ने चुन-चुन कर अपने लोगों को पुरस्कार समारोह में योग्यता के प्रमाण-पत्र दिलवाए। देशमुख आए। धवन

को देखा। पुरस्कार प्राप्त करने वाले छात्रों को ताड़ा, कुछ सोचा होगा। धवन बगल में ही खड़े रहे, कुछ जरूर सोचा होगा कि लोगों ने देखा, वाइस चांसलर चिंतामणि द्वारिकानाथ देशमुख ने एक बड़े प्रमाण-पत्र को बीचोंबीच से फाड़कर, दो टुकड़े करके फेंक दिया। उनका चेहरा लाल। पुरस्कार का वह प्रमाण-पत्र खुद वाइस चांसलर के लिए था। देशमुख ने अपना भाषण नहीं दिया। सभागार से बाहर निकलते हुए प्रिंसिपल सेठी से कहा, ''मेहरबानी करके मुझसे कल आप सबेरे दस बजे आफिस में मिल लीजिए।'' इस तरह के मनोरंजक जीवंत किस्से भी 'गुरुजी की खेती-बारी' में अनेक हैं।

एक किस्सा अमिताभ बच्चन के बारे में भी है। वे तब किरोड़ीमल कॉलेज में पढ़ते थे। और घर आने वाले शिक्षकों को जीभ दिखाकर चिढ़ाया करते थे। साथ ही दिनेश ठाकुर, कुलभूषण खरबंदा, वी.डी. बडोला, हरीश खरे, फ्रेंक ठाकुर दास और निर्देशक राजेन्द्र नाथ का भी जिक्र यहाँ मिलता है।

कई बार विद्यार्थी गुरु को छकाते हैं, तंग करते हैं। कई बार ऐसा दांव गुरु भी आजमाते हैं। ऐसा ही एक मनोरंजक किस्सा घसीटे लाल शर्मा का है। शिष्य घसीटे लाल शर्मा की कारस्तानियाँ और गुरु की सीख गुरुजी से ही सुनिए—''एक छात्र थे, जो वस्तुतः अधिक वयस्क थे, जिसे ओवर एज कहते हैं। क्लास के अन्य छात्रों से उम्र में ज्यादा। ऐसी स्थिति में वह अपनी ज्यादा समझदारी का अनुचित लाभ उठाते थे। लड़के-लड़कियों के गार्जियन बनने का उन्हें शौक था। छात्र सब समझते थे, लेकिन वह वयस्कता के कारण छूट पा जाते थे। पकड़े जाते थे वह अपने नाम के कारण। माँ-बाप ने नाम रखने में परम्परा का ज्यादा खयाल रखा था। मैं हाजिरी उनका पूरा नाम लेकर पुकारता—'घसीटे लाल शर्मा'। पहले दिन क्लास में नाम लेकर पुकारा तो कोई बोला ही नहीं, मैं उन्हें पहचानता भी नहीं था। क्लास खत्म होने के बाद अकेले में मिले। बोले, ''सर, मैं ही घसीटे लाल शर्मा हूँ। लेकिन हाजिरी लेते वक्त आप मेरा नाम जी.एल. शर्मा पुकारा कीजिए।'' मैंने सोचा ठीक है। बाद में जब मुझे उसकी कारस्तानियों का पता चला तो मैंने फिर 'घसीटे लाल शर्मा' पुकारा। अकेले में मिले तो मैंने साफ कह दिया, ''क्लास में ठीक से रहोगे तो जी.एल. शर्मा, गड़बड़ करोगे, छोटे लड़के-लड़कियों को तंग करोगे तो पूरा नाम लूँगा।'' इसका कुछ असर उनके ऊपर पड़ा।

इस तरह के तो नहीं, लेकिन अन्य मनोरंजक छात्र हैं वजीरचंद। इनकी हरकतें हास्य और क्रोध एक साथ पैदा करती हैं। वे बेवकूफ हैं या शातिर पता नहीं। उनसे जुड़ी एकाधिक मनोरंजक घटनाएँ यहाँ दर्ज हैं। उनमें से एक है—''एक दिन क्लास में पढ़ाई हो रही थी। निराला की कविता कोर्स में लगी थी, ''तुम तुंग हिमालय शृंग और चंचल गति सुरसरिता।'' मैं मन लगाकर पढ़ा रहा था। लड़के सुन भी रहे थे। सहसा वजीरचंद खड़े हो गए। जोर से बोले, ''वाह सर! वाह-वाह, आज आप कितना अच्छा पढ़ा रहे हैं! कमाल है सर!'' पढ़ाई नष्ट-भ्रष्ट हो गई। ऐसी मुखर प्रशंसा की कि सब लड़के ठठाकर हँसने लगे। मैं अवाक्, असहाय! अपना काम करके वजीरचंद बैठकर गंभीर मुद्रा में आ गए। मेरी समझ में नहीं आया कि वह मूर्ख है या बदमाश।''

ऐसे छात्र-छात्राओं का भी स्मरण यहाँ किया गया है जिनकी याद सालती है। वे अब इस दुनिया में नहीं हैं। इनमें से एक थे सतीश वशिष्ठ। वे हिंदुस्तान के संपादकीय विभाग में नौकरी करने लगे थे। कई बार लेखक-अध्यापक से सतीश वशिष्ठ मिलने आए लेकिन दुर्भाग्यवश भेंट नहीं हो पाई। बाद में उनकी असामयिक मृतयु हो गई। अब उनकी याद गुरु को सालती रहती है। एक शिष्य थे श्रीप्रकाश। रंग काफी दबा हुआ। औसत से लंबे-पतले। बिहार के मुजफ्फरपुर के निम्नमध्यवर्गीय परिवार से। परिवार और बहनों की शादी की चिंता से दबे हुए। हकलाने की बेबस आदत। लड़के-लड़कियों का हाथ भी देखते। हाथ देखकर भाग्यफल बताते। किसी किसी साथी का हाथ देखकर चेतावनी भी देते। साथी नीरज कुमार की उँगलियों को देखकर कहा आपमें आत्महत्या की प्रवृत्ति है। बच के रहना। लेकिन खुद को ऐसा करने से नहीं रोक पाए। नदी पर से गुजरती हुई ट्रेन के वक्त बहुत प्रसन्न हो जाते। कहने लगते कि मन होता है, नदी में कूद पड़ूँ। संभवतः बाद में उनके साथ ऐसा हुआ भी।

इसी प्रकार एक छात्र थे—दीपक। जिनमें इस तरह की आत्महंता प्रवृत्ति तो नहीं थी लेकिन वे अपने अडिग विचारों और मानसिक तनाव की भेंट चढ़ गए। वे अपने आदर्श, विचार और असामयिक निधन की वजह से स्मृति में हैं। ''दीपक साँवले से कुछ दबे हुए रंग का सलोना, स्वस्थ और खुलकर बात करने वाला छात्र था। बेकार की बात नहीं करता। एक और सिफत थी। झूठ नहीं बोलता। खद्दर का कुर्ता, खुली मोहरी वाली पाजामा पहनता। पोशाक छात्र-नेता जैसी होती। बोलते समय उच्चारण और लय में अतिरिक्त दृढ़ता प्रकट होती। जिसकी आलोचना करता—सर्वत्र करता, उसके सामने भी, पीठ पीछे भी।'' इसके अलावा वे उस शादी में शामिल नहीं होते जिसमें दहेज लिया या दिया गया हो। जिसे और जिस बात को पसंद करते उसे सरेआम और निडर होकर कहते। वे डॉ. नित्यानंद तिवारी का बहुत सम्मान करते तो कहते ''मैं नित्यानन्दियन हूँ।'' हिन्दू कॉलेज में नियुक्त हुए तो छात्रों के प्रिय शिक्षक बन गए। शादी की उम्र थी तो मित्र अनिल राय ने कहा—''का दीपक, तुम सधुयाय जाओगे क्या?'' लेकिन वे अपने बारे में सोचने की फुर्सत नहीं निकाल पाए। विचारधारा, मित्र और परिवार के प्रति समर्पित रहे। गहरी दोस्ती वाले दीपक की राजीव कटारा से खूब बनती। उनके घर आते तो शिक्षक विश्वनाथ त्रिपाठी के कबीर पढ़ाने की तारीफ करते।

बहुत कम उम्र में ही कैंसर से उनका देहांत हो गया। अंतिम समय में अध्यापक विश्वनाथ त्रिपाठी उन्हें देखने गए। बचने की उम्मीद नहीं थी। संज्ञाहीन शरीर में गुरु को देखकर हलचल हुई। आँखों में हरकत हुई। गुरु ने शिष्य के चरणों का स्पर्श किया और कहा—

जाओ। वहाँ कोई नहीं है। तुम्हारे लिए शांति पाने की जगह वहीं है। स्वातंत्र्योत्तर भारत ने वह समाज बनाया है कि तुम्हारे जैसा आदमी लड़ेगा, तो पूरी उम्र नहीं पाएगा। शमशेर ने मुक्तिबोध के बारे में कहा था–

''जमाने भर का कोई इस कदर
अपना न हो जाए।
कि अपनी जिन्दगी खुद आपको
बेगाना हो जाए।''

छात्रों की जीवन-स्थिति को गुरु भी नजदीक से देखते और झेलते हैं। संवेदनशील शिक्षक का इनसे असंपृक्त रहना असंभव है। ऐसे में गुरु जब अपार शिष्य वत्सल हों तो शिष्य का दुःख गुरु का दुःख बनकर दिखता है। किताब में कई संस्मरणों में शिष्यों की वेदना का सह-भोक्ता गुरु-लेखक भी है। ऐसा ही एक संस्मरण है 'जो जला, वह सुगन्धि बिखेरेगा'। इसमें दुःख, दर्द के साथ छात्रा शशिबाला शर्मा का जीवट भी है।

शशि शर्मा अपनी परिस्थितियों को हरातीं, निर्भय-निडर होकर जीतीं। एक बार विभागाध्यक्ष ने कद को लेकर टिप्पणी करते हुए कहा कि ''तुम क्या नौकरी करोगी? इतनी छोटी कद की हो, तुम्हें कौन अपने यहाँ रखेगा?'' विभागाध्यक्ष की इस अनुचित टिप्पणी का जवाब देते हुए कहा–''सर, आपकी लड़की कॉलेज में नौकरी पा गई है, वह भी तो मेरे ही कद की है।''

यह स्वाभिमान भीतरी संपन्नता से उपजा है। जब हिन्दी अध्यापिका के एक इंटरव्यू में अंग्रेजी साहित्य से जुड़ा गलत सवाल पूछा गया तो उसे ठीक करते हुए अपना जवाब दिया। और विद्वता के बल पर नियुक्ति पाई।

लेकिन जीवन में कष्ट एक बार आए तो आते ही रहे। परिवार का विरोध झेलते हुए प्रेम-विवाह किया। पुत्र जो पैदा हुआ तो 10 वर्ष तक जन्म की ही अवस्था में रहा। उसकी पीड़ा को खुद झेला। पालन-पोषण किया। इतना ही नहीं उनको और भी कष्ट झेलने बाकी थे। बच्चे की बीमारी से गुजर ही रही थीं कि पति लीलाधर को कैंसर हो गया। ''शशिबाला शर्मा की अग्निपरीक्षा का अंत नहीं हुआ था। लीलाधर को कैंसर हो गया। रक्त कैंसर। एम्स में महीनों रहे। उन्हें नींद नहीं आती थी। असह्य पीड़ा होती थी। शशि बताती हैं कि शाम होते ही कहते, ''तुम घर जाओ, बच्चे इंतजार कर रहे होंगे।'' एक पुत्र और हुआ था। भगवती पंडित और डॉ. हरिमोहन शर्मा ने बड़ी सेवा की, साथ दिया, लेकिन लीलाधर बच नहीं सके। शशिबाला शर्मा एक पुत्र के साथ रह गईं। मैंने शशि को आँसू बहाते भी देखा है, लेकिन बहुत कम। चीखते कभी नहीं देखा। शायद किसी ने भी नहीं देखा होगा। अपनी विपत्ति की कहानी वह ऐसे कहती हैं, मानो किसी और की हो। दुःख ने चेहरे को मानो निर्विकार बना दिया है।''

अपने छात्रों के जीवन, छल-कपट, परेशानियों, दुःख-दर्द, जीवन-संघर्ष, सफलताएँ-असफलताएँ सब यहाँ दर्ज हैं। ऐसे ही दो छात्र थे जिन्होंने अपनी अपंगता को अपने जीवन की बाधा नहीं बनने दिया और आज बेहतर सुखद जीवन बिता रहे हैं। दोनों ही दृष्टिहीन। भाई-बहन। माता-पिता ने उन्हें सामान्य दुनिया में रहने-सहने के लिए तैयार किया। अब दोनों दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कर रहे हैं। प्रीति अडालजा और नीरव अडालजा।

दक्षिण कोरियाई छात्र किम और उसके दो घूँसे भी संस्मरणों में सुरक्षित हैं।

ब्राह्मण नहीं ब्राह्मणवाद का अकुंठ विरोध करते छात्र चंद्रभान पर भी इस पुस्तक में एक प्रेरणादायी संस्मरण है। उनके संतुलित व्यक्तित्व की झाँकी है–''चंद्रभान ज्यादा नहीं बोलते थे। जब बोलते, काम की बात बोलते। जब कुछ बोलने को हो तभी। रस सब चीजों में लेते। कपड़े-लत्ते ठीक-ठाक। भड़काऊ बिल्कुल नहीं। जब बोलते, तो मेरा मन उनकी बात सुनने को करता। गोबिंद प्रसाद, चारुमित्र, अजय तिवारी आदि उनके मित्र थे। पता चला कि किसी स्कूल में पढ़ाते हैं, यानी पढ़ाते भी हैं और पढ़ते भी हैं।''

ऐसे ही आत्मनिर्भर तो नहीं लेकिन आत्मविश्वासी-अपरिग्रही और गुरु को आश्वस्त-निश्चिंत करते छात्र नीरज और वेद प्रकाश के बारे में गुरु ने लिखा–''ये अत्यन्त साधारण घरों के थे। नौकरी की इन्हें सखत जरूरत थी। नीरज ने कभी जबान नहीं खोली। वेदप्रकाश की शादी बचपन में ही हो गयी थी। दो संतानें भी थीं। खुद उम्र तब 26 की रही होगी। एक दिन मुझे परेशान समझकर बोले, ''सर! आप हम लोगों की चिंता न करें। मेरा काम तीन-चार हजार रुपए महीने में चल जाएगा और मैं इतना कमा लूँगा।'' शिष्य विद्वान हों, यशस्वी हों, इससे अध्यापक का गौरव बढ़ता है, लेकिन वे ऐसे अपरिग्रही हों, तो उनका व्यक्तित्व ही उस सौन्दर्य बोध का प्रतीक बन जाता है, जिसकी हमें, हमारे दौर को प्रतीक्षा है।''

इन लेखों में समाजशास्त्री पिछले 80 वर्षों में बदले-बने समाज को देख सकता है। शिक्षाशास्त्री शिक्षा की बदलती परिपाटी को पकड़ सकता है। इन लेखों में दिल्ली और छात्र-अध्यापक संबंध ही नहीं देश का एक दौर जीवंत-दृश्य रूप में मौजूद है। इतना जीवंत जिसे हम इन पन्नों पर धड़कते साँस लेते देख और महसूस कर सकते हैं। गद्य ऐसा कि हर घटना दृश्य बनकर सामने आती है। घटनाएँ इतनी तटस्थ और नाटकीय रूप में प्रस्तुत हैं कि इस किताब की कई घटनाओं का मंचन भी आसानी से किया जा सकता है।

द्वारा जयपाल सिंह
36, डूप्लेक्स, द्वितीय तल,
नजदीक एम.सी.डी. स्कूल, गुड़मण्डी,
दिल्ली-110007

पुस्तक-समीक्षा

प्रेरणास्रोत मनीषी की आत्मकथा

बल्लभ डोभाल

लेखक जाने-माने साहित्यकार हैं। 'तिब्बत की बेटी' प्रसिद्ध उपन्यास, दो कविता संग्रह, 12 कहानी संग्रह। तीन संस्मरण विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए। अध्यात्म, धर्म, दर्शन पर तीन पुस्तकें और छह पुस्तकें बाल-साहित्य पर। कुल 36 पुस्तकें प्रकाशित।

जीवन अनन्त है। इस अन्तहीन जीवन का एक अंश जो हमारे हिस्से में आता है, उसे सरस, सार्थक और समृद्ध बनाकर जी लिया जाए। जीवन-यात्रा में किसी प्रकार का अवरोध, झगड़े-झंझट आड़े न आएँ... और जीवन अबाध गति से गतिमान बना रहे, यह कामना सभी करते हैं।

किन्तु जीवन की अर्थवत्ता को संघर्षों के बीच देखने वाले डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना जैसे मनीषियों की परिभाषा में, व्यक्ति के भौतिक अस्तित्व के पल-क्षण, दिवस और मास-वर्षों का एक नियत निरन्तरता में सरकते चले जाने का नाम जीवन नहीं है। कृमि, कीट-पतंग जैसे क्षुद्र प्राणियों के विपरीत मनुष्य जीवन से जुड़ी चरितार्थ की प्रतीति ही उसे जीवन की संज्ञा प्रदान करती है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना जी की परिभाषा में कर्त्तव्य-बोध और दायित्व भावना जब जन्म लेने लगे, तभी से जीवनारम्भ माना जाना चाहिए।

जीवन में कितनी समता-विषमताएँ हैं, कितने आकर्षण-विकर्षण हैं और क्या कुछ खोना और पा जाना है, ऐसे समय सापेक्ष अनेक प्रश्न तब सामने आते हैं, जब अपने जीवन के अन्तिम चरण में लिखी उनकी 'कालजयी आत्मकथा' का अवलोकन हम करते हैं। तब लगता है कि हमारे सभी प्रयास—लेखन, अध्ययन, चिंतन-मनन, सभी कुछ जीवन को जानने की प्रक्रिया मात्र हैं। सभी कुछ समझने का दावा भले कोई करे, किन्तु जीवन और उसकी गति को समझ पाना किसी के बूते का नहीं। डॉ. सक्सेना जैसे प्राज्ञ-पुरुषों की जीवन-संघर्ष गाथा—उनकी 'कालजयी आत्मकथा' इस दिशा में दूर तक हमें ले जाती है और बड़ी बेबाकी से जीवन-रहस्यों का खुलासा भी करती है। वहाँ जीवन-बीज मिट्टी की परतों को तोड़ बाहर अंकुरित होता है और वटवृक्ष की तरह दिशाओं में फैलकर अपनी छाया से सबको आश्वस्त और शीतलता प्रदान करता है। बीज से वटवृक्ष बनने की यह यात्रा बड़ी जोखिम और संघर्षों से भरी है। इसे डॉ. सक्सेना जी का जीवन-दर्शन भी माना जा सकता है। इस दार्शनिक जीवन की कुछ झाँकियाँ प्रस्तुत हैं।

...''मुझे अभी तक हास-उल्लासपूर्ण मादक बसन्त की निराली छटा देखने का सौभाग्य नहीं मिला। क्योंकि मेरी जीवनधारा उस पहाड़ी नदी की धारा के समान प्रवाहित हुई है जिसे उद्गम स्थल से निकलते ही कठोर चट्टानों से टकराना पड़ता है। नुकीली पर्वत-शिलाओं ने जिसके मर्मस्थल को पीड़ा पहुँचाई है। बड़े-बड़े उपलखंडों ने जिसके मार्ग को अवरुद्ध कर विपरीत दिशाओं में भटक जाने को बाध्य किया है। झाड़-झंखाड़ ने जिसके अंग-प्रत्यंगों में चुभन पैदा की है। खोह और कन्दराओं ने जिसे मिटाने के असफल प्रयास किए हैं।''...

...''इसमें सन्देह नहीं कि मेरी यह जीवन-धारा अपने पथ का स्वयं निर्माण करती हुई कंटकाकीर्ण राहों पर निरंतर आगे बढ़ती रही है। कभी पतन के गर्त्त में गिरी, फिर उठकर सँभली, और अपनी गति से आगे बढ़ती रही। इसका साहस कभी टूटा नहीं, वेग कभी कम नहीं हुआ। पर मैंने चरित्र और बुद्धि के बल पर जीवन-संघर्ष में जब विजय प्राप्त करने का प्रयास किया, तब दुर्दैव की भाँति पीछे पड़ा मेरा भाग्य विधाता भी सदैव मुझे विफल करने की चेष्टा में लगा रहा। मैंने जिस ओर रुचि दिखाई, उसी से मुझे वंचित किया गया। फलतः अपने शैशव काल में भजन-कीर्तन, गायन-वादन और लेखन, सभी से मुख

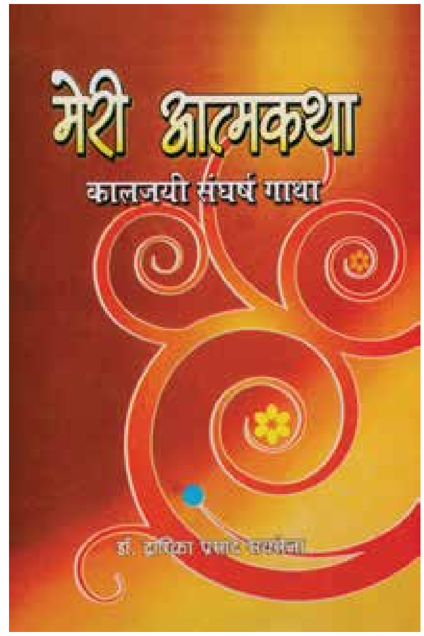

पुस्तक : मेरी आत्मकथा
(कालजयी संघर्ष गाथा)

लेखक : डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना

प्रकाशक : अग्रवाल पब्लिकेशन्स

तृतीय संस्करण :

मूल्य : 150/- रुपये

मोड़कर चुपचाप बैठ जाना पड़ा।''...

यहाँ हम उस अजस्र जलधारा को देख रहे हैं जो चट्टानों से टकराती, तंग घाटियों में गुम होती और काफी व्यापक विस्तार में फैलकर भी अपने अस्तित्व को बरकरार रखते हुए निरन्तर प्रवाहमान है। उस वटवृक्ष को भी देखा जाए जिसके पत्ते-टहनियों को नोच लिया जाए, फिर भी शीत-ताप और आँधी-पानी की मार सहता हुआ जो अपनी जगह खड़ा रह एक विशाल रूप धारण कर सबको ठंडी छाँव देता है।...

डॉ. सक्सेना जी का चिन्तन बड़ा प्रखर है। वे

जीवन से उन सच्चाइयों को खोज लाते हैं जो तीखी हैं, मधुर हैं और शास्वत सत्य हैं। उनके चिन्तन की एक बानगी—

''बहुधा (अर्थ) धन संसार में अनर्थों का मूल कारण है। किन्तु अर्थ का अभाव भी कम भयंकर अनर्थकारी नहीं होता। क्योंकि यह साहस के पैर उखाड़ देता है, आशाओं का गला घोंट देता है, हिम्मत को पस्त कर देता है, सन्तोष का कचूमर निकाल देता है, परिश्रम को पंगु बना डालता है। वहाँ आपसी प्रेम, आत्मीयता, करुणा, दया जैसे भाव फूट-फूट कर रोने लगते हैं। अर्थ के इसी अभाव ने तब मुझे ग्रस रखा था।''

जीवन के विविध अनुभव, जो इतना कुछ दे जाते हैं, उसे स्वयं अपने बूते समेट पाना संभव नहीं है। धरती की गहराइयों को नापने और आसमान में ऊँची उड़ान भरने के लिए जो क्षमता चाहिए, वह सभी के जीवन में सुलभ नहीं। उसे पाने के लिए प्रेरणा-पुरुष डॉ. सक्सेना जी की इन पंक्तियों को जीवन में उतारना जरूरी है—

''विष को अमृत मान मुदित हो पान किया है,
सदा आपदाओं का ही आह्वान किया है।
साहस और परिश्रम मेरे संग सहोदर से आए,
जिनसे जीवन की बगिया में
फूल खिले औ फल पाए।
जीवन में समझौते मैंने बहुत किए हैं,
इसीलिए अनचाहे विष के घूँट पिए हैं।
घोर विसंगतियों ने मुझको बहुत छकाया,
पर मेरा संकल्प न तिलभर भी डिग पाया।''

लेखन उन वरदानों को भी नहीं भूलता जो उसके जीवन-मरुस्थल में महकती ठंडी हवा और निर्मल गंगा की लहरों की तरह प्रवाहमान रहे हैं। प्रेम और वात्सल्य से भरे माँ के वे वरदान बादलों की तरह उमड़ कर दुलार की ऐसी बरसात करते हैं जिससे संतान के सूखे हृदय लहलहा उठते हैं। भावों की शुष्क सरिताएँ उमड़ने लगती हैं, विचारों की मुरझाई बेलें फिर से हरी-भरी हो जाती हैं। जीवन का कोना-कोना हर्षोल्लास से भर जाता है।

अपनी इस आत्मकथा में लेखक का कहना है कि भयंकर परिस्थितियों में फँसने पर जब किसी ने अनायास मुझे उबार दिया, असहाय अवस्था में सहायता प्रदान की, और निराशा में आशा का संचार किया, तब उस व्यापक सत्ता में मेरा विश्वास हो आया। मेरे हृदय में उसके प्रति अपार भक्ति भावना जागृत हो गई। इसी विश्वास के साथ विभिन्न तीर्थों की यात्रा करते हुए मैंने उसके चरित्र का गुणगान किया है। अपनी यात्राओं के साथ पर्यटन को जोड़ते हुए लेखक व्यक्ति के जीवन में पर्यटन को अनिवार्य रूप में स्वीकार करता है। लेखक का मानना है कि जीवन की परिपूर्णता में पर्यटन किसी बड़ी उपलब्धि से कम नहीं।।

भट्टी में तप कर सोना जिस तरह चटख रंग लेकर आँखों को चुँधिया देता है, वैसे ही जीवन के ताप-संतापों के बीच से निखर कर डॉ. सक्सेना जी की अन्तर्प्रतिभा हिन्दी के साहित्याकाश को जगमगा देती है। मानवीय गरिमा के साथ, संस्कृति और कलाओं के प्रति पाठकों की रुचि को बढ़ाती और परिष्कृत करती है। माँ के वरदान उन्हें सरस्वती की साधना में ले जाते हैं। शिक्षा के ऊँचे शिखर पर पहुँचने के बाद उन्होंने साहित्य-सेवा को ही जीवन लक्ष्य बना लिया और निरन्तर उसके अध्ययन-सृजन द्वारा हिन्दी जगत में अपनी एक अविस्मरणीय छवि बना डाली।

रचना को जन-जन के मन में स्थानान्तरित करने का उत्तरदायित्व समालोचकों, शोधकर्त्ताओं का है, जो रचनाकार के श्रम से कम श्रमसाध्य नहीं होता। रचना के रहस्य-रोमांच का भरपूर आनन्द वे ही लोग लेते हैं और अपनी सहज अनुभूतियों के साथ उसे पाठकों तक पहुँचाना उनका अभीष्ट है। इस अभीष्ट को सक्सेना जी वृहद्-व्यापक स्तर पर कर दिखाते हैं। उनके द्वारा रचित ग्रंथ समीक्षा की गई पद्धतियों, सिद्धान्तों और दर्शन के साथ अपना स्थान बनाते हैं। जिसका अध्ययन, अनुशीलन विश्वविद्यालयों, शिक्षा-संस्थाओं में करते हुए अनेक छात्र-छात्राएँ आचार्य पद (पीएच.डी.) जैसी उपाधियाँ अर्जित कर चुके हैं। माँ सरस्वती के वरदान इस तरह फलीभूत हुए कि भारत से बाहर भी विश्वविद्यालयों, संस्थानों में उनके दर्शन, कला, संस्कृति, साहित्य पर किए गए शोध पर भी शोध होने लगता है।

उनके द्वारा उन्नीस काव्य-समीक्षात्मक ग्रंथों की रचना की गई है। कविवर मलिक मुहम्मद जायसी से लेकर जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', निराला तथा हिन्दी के प्राचीन और अर्वाचीन कवियों की रचनाओं का पुनर्मूल्यांकन, उनकी शाश्वतता को नए आयाम देकर उकेरा गया है। इनमें 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', 'भाषा विज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा' रचना स्तर पर विशिष्ट स्थान रखती हैं। आदिकालीन काव्य ग्रंथों में कविता और काव्य सौष्ठव की युक्तिसंगत जानकारी देने वाला यह इतिहास देववाणी संस्कृत के प्रति लेखक की श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण की अभिव्यक्ति ही है।

'भाषा विज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा' जैसी रचना पर भाषा विज्ञानी ही कुछ कह सकते हैं। हमारा तो यही कहना है कि भाषा के बिना जीवन पंगु है। जड़ता को जीवन देने वाली भाषा ही होती है। भाषा क्या है, उसका निर्माण कैसे होता है। उसका रूप-स्वरूप, ध्वनि विज्ञान, अर्थविज्ञान, वाक्य विज्ञान, शैली, कोष, लिपि आदि पर विस्तार से विवेचन करते हुए, वर्तमान में हिन्दी की उपलब्धियों और उसकी विभिन्न बोलियों-उपबोलियों के स्वरूप को इस ग्रंथ में बड़ी रोचकता और संगति के साथ रखा गया है। हमारा आदि वेद (ऋग्वेद) ध्वनि, अक्षर, शब्द और भाषा का गहन विवेचन कर हमारे शरीर से उसका तादात्म्य स्थापित करता है। शब्द और वाणी की अजेय शक्ति को महर्षि पातंजलि ने भी व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। भक्ति को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने का माध्यम शब्द ही है। इसमें दो राय नहीं कि आधुनिक वैज्ञानिकों ने कितने ही प्रकार की शक्तियों को वशीभूत कर उनकी सीमाएँ भी निर्धारित कर दी हैं। किन्तु प्राचीन विद्वानों की मान्यता है कि शब्द की शक्ति सीमा में होते हुए असीमित है, उसे समय की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। इस कारण वहाँ शब्द को आध्यात्मिक माना गया है।

प्राचीन वेद-ग्रंथों में ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि का विवेचन उसके आध्यात्मिक पक्ष को मजबूत करता है, उसकी मौलिकता सिद्ध करता है। जबकि सक्सेना जी का 'भाषा विज्ञान...' ग्रंथ वर्तमान भौतिक के व्यवहारिक पक्ष में भाषा संरचना और उसके वैज्ञानिक तथ्यों को सीधे-सीधे हमारे सामने लाता है। ऐसा उपयोगी और अद्भुत कोई शोध अभी तक देखने में नहीं आया है।

डब्ल्यू-46, सैक्टर-12, नोएडा-201301
(उत्तर प्रदेश)

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता	पत्रिका भिजवाने का पता
....	....
....	....
....	....
....	....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष................	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.. दिनांक.................................

रु./US$..................................... बैंक...भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

कार्यक्रम अधिकारी (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप ....

नाम..

पद...

दिनांक..

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिंद (अरबी) और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल हैं। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।

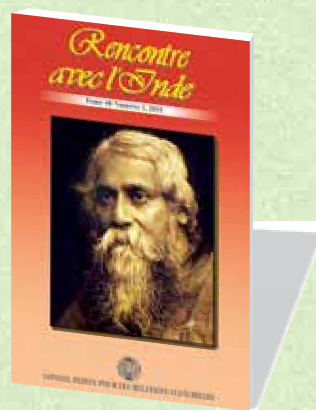

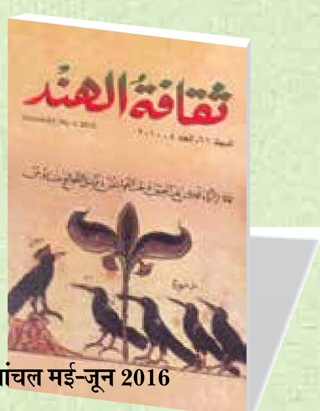

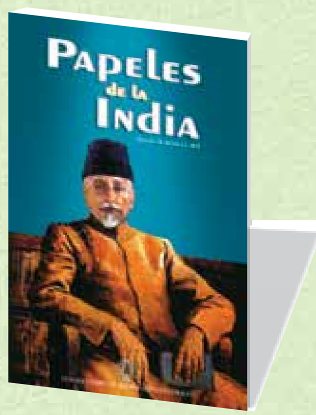

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

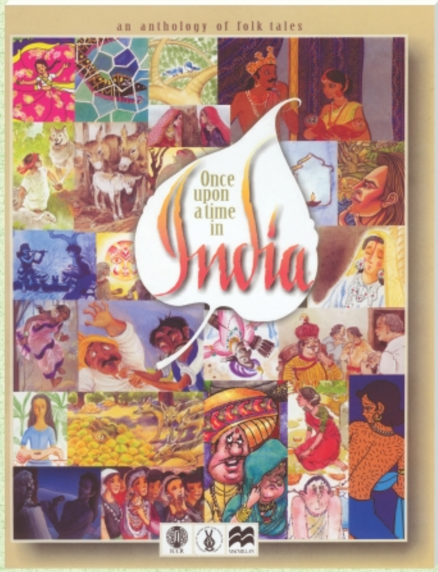

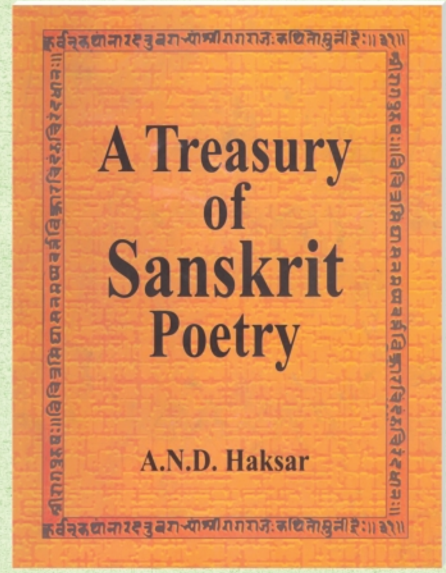

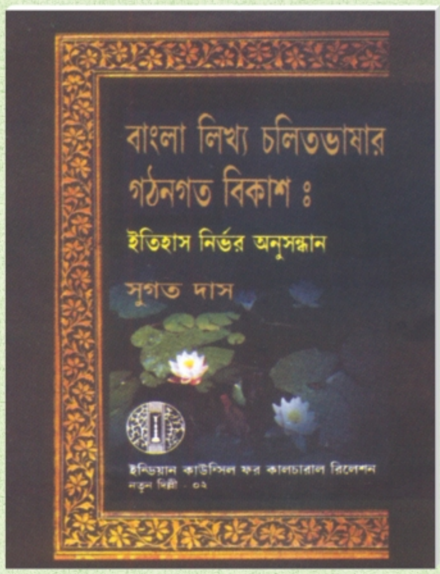

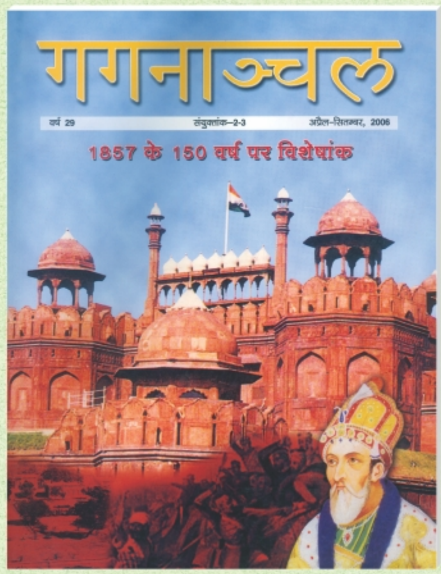

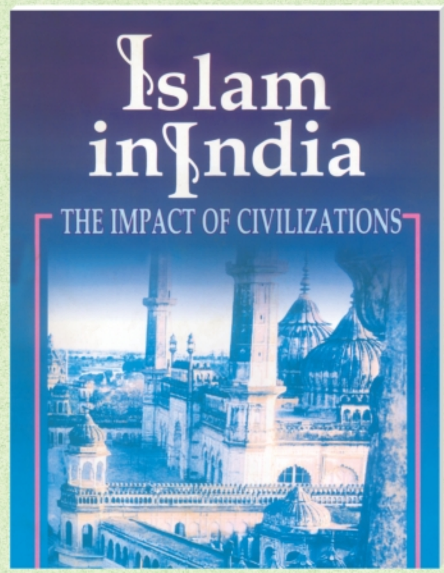

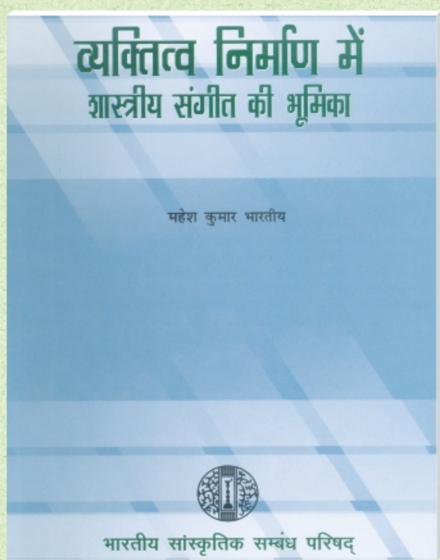

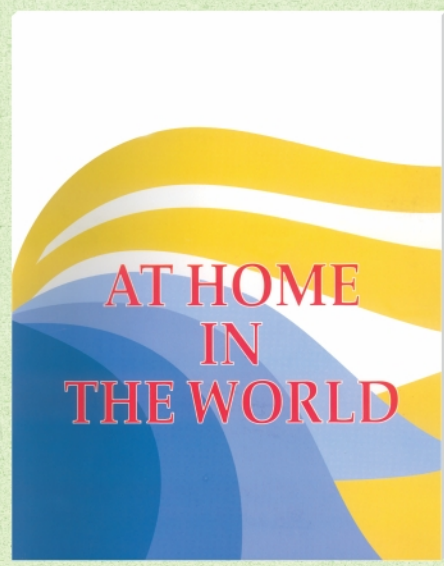

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

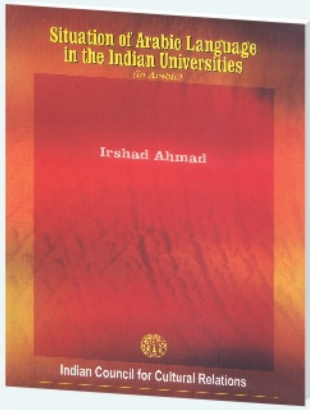

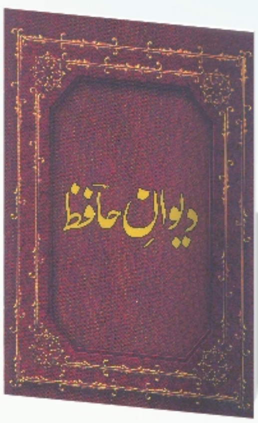

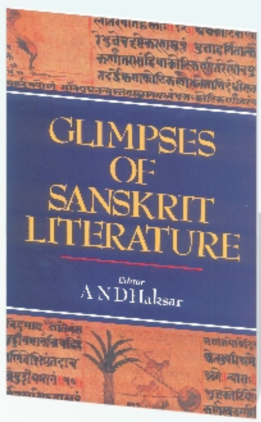

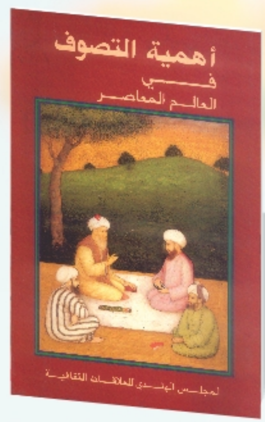

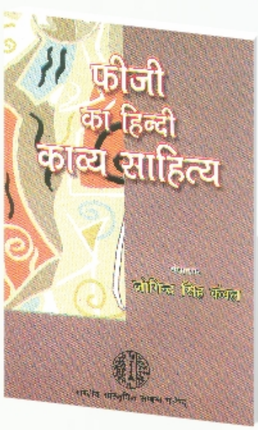

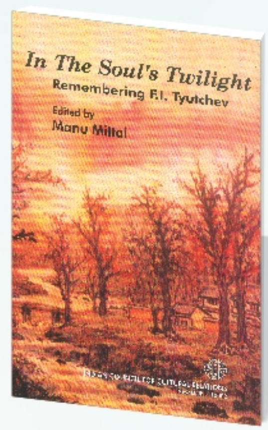

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310
फैक्स: 23378639, 23378647, 23378783
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccr.gov.in